॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

श्री तारणतरणस्वामी विरचित

त्रिभंगीसार

चौवीस ठाणा टीका

[अन्वयार्थ, भावार्थ और विशेषार्थ सहित]

अनुवादक एवं टीकाकार

जैनधर्मभूषण धर्मदिवाकर ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन अनाथालय ट्रस्ट, सागर (म० प्र०)

प्रकाशक
श्री दिगम्बर जैन अनाथालय ट्रस्ट
सागर (म० प्र०)

●

ग्रन्थ मिलने का पता
श्रीमंत सेठ प्रेमचन्द जी जैन
अध्यक्ष, दिगम्बर जैन अनाथालय ट्रस्ट
श्री तारणतरण चैत्यालय
ईतवारी हिल्स, सागर (म० प्र०)

●

द्वितीयावृत्ति
वि० सं० २०५०
प्रतियाँ ११००

●

मूल्य ५१) रुपये

मुद्रक
वर्द्धमान मुद्रणालय
जवाहरनगर कालोनी वाराणसी–१०

श्री दिगम्बर जैन अनाथालय ट्रस्ट का परिचय

इस ट्रस्टकी स्थापना स्वर्गीय मथुरा प्रसाद जी समैया एवं उनकी धर्मपत्नी स्वर्गीय श्रीमती बेनीबाई जीने अपने जीवनकालमे की थी। अपनी सम्पत्तिका दान एवं एक बगीचा अनाथालयको दान किया था, जिसे बेचकर उसकी राशि इस ट्रस्टमें जोड़ दी गई। इस ट्रस्टको वार्षिक आयसे समाज कल्याण एव धर्मकी वृद्धिके कार्य किये जाते हैं।

इस वर्ष अनाथालय ट्रस्टने भी श्री जिनतारणतरण स्वामीके दो ग्रन्थोका (त्रिभंगीसार एवं चौवीस ठाणा) पुन: प्रकाशन का निर्णय लिया जो अति आवश्यक था। श्रीजिन तारणतरण स्वामी के ९ ग्रन्थोंकी टीका श्रद्धेय ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने की थी, उनपर श्री मथुरा प्रसादजीकी असीम श्रद्धा थी। अन्तिम समयमे (बीमारीमे) श्री मथुराप्रसादजी एव श्री राधेलालजी समैया-सागर वालोने उनकी काफी सेवा की।

सन् १९६५ मे उन्होने अपनी सब सम्पत्ति श्री गुरु महाराजके प्रति श्रद्धावान् होकर समाज एव धर्मकी सेवामे अर्पित कर दी एव ट्रस्टकी स्थापना की। सन् १९६५ मे उनका स्वर्गवास हो गया। श्रीमती बेनीबाईके भाई श्री हीरालालजीने अपनी बहिनकी काफी सेवा की और उनकी मृत्युके पश्चात् सस्थाकी सेवामे लगे हैं। इसी क्रममे ट्रस्टकी ओरसे सागरमे जिला चिकित्सालयके समीप एक विशाल धर्मशालाका निर्माण कराया। जिसकी व्यवस्था श्री हीरालालजी एक ट्रस्ट कमेटीके अर्न्तगत कर रहे हैं।

श्री दिगम्बर जैन अनाथालयके ट्रस्टियोंमे श्रीमंत सेठ प्रेमचन्दजी (अध्यक्ष) सेठ राजकुमार सराफ, भायजी कपूरचन्दजी, श्री दमरूलालजी, श्री कैलाशचन्दजी वकील, श्री गोकुलचन्दजी बैशाखिया (मत्री) श्री हीरालालजी (उपाध्यक्ष) श्री सुभाषचन्द कढ़या, श्री मोतीलाल भायजी एव श्री आजाद कुमारजी (उपमत्री) हैं। सभी ट्रस्टी सर्व सम्मतिसे ट्रस्टकी आयका जन-हितमे सदुपयोग कर रहे हैं।

ट्रस्टके द्वारा छात्रवृत्ति, बीमारोको सहायता, ग्रन्थ प्रकाशन, तीर्थ स्थानो पर भवन निर्माण, नवीन चैत्यालय निर्माणमे सहयोग, अनाथालयोंको सहायता, गरीबोको सहायता, आकस्मिक-विपत्तियोमे सहायता, नगर और समाजकी कल्याणकारी योजनाओमे सहायता, वनवासी, आदिवासी कल्याणके कार्योंमे सहायता आदि अनेक प्रकारकी सामाजिक गतिविधियोमे भरपूर सहायता दी जाती है।

खामगाव (महाराष्ट्र) मे वर्ष १९९२-९३ मे समाजके व्यक्तियोंको ओला वृष्टिसे नुकसान हुआ, उन परिवारोको २५,०००) की सहायतासे आवास-निर्माण कराये। इस तरहसे समाजोपयोगी एवं जनहित कार्योंमे यह ट्रस्ट सेवारत है।

सागर
दिनांक १४-९-९३

कपूरचन्द भायजी

आपकी अपनी बात

प्रस्तुत ग्रन्थ श्री त्रिभंगीसार एवं श्री चौबीस ठाणा श्रद्धेय पूज्य श्री जिनतारणतरण स्वामी विरचित ग्रंथोमेसे है। इन ग्रन्थो का प्रकाशन द्वितीय बार हो रहा है। सर्वप्रथम प्रकाशन स्वर्गीय सेठ मन्नूलाल जी आगासौद वालो ने कराया था; जिसका दूसरी बार प्रकाशन श्री दिगम्बर जैन अनाथालय ट्रस्ट, सागर द्वारा हो रहा है, जिसकी स्थापना सागर निवासी स्वर्गीय श्री मथुराप्रसादजी समैया एव उनकी धर्मपत्नी स्वर्गीय श्रीमती बेनीबाई द्वारा हुई है।

स्वर्गीय श्री मथुराप्रसाद जीके पिताका नाम श्री मानकलाल उर्फ श्री दुर्गाप्रसाद था, जिनके पिताश्री प्रसिद्ध समाजसेवी श्री जवाहरलालजी उर्फ श्री राईसे बजाजके नामसे प्रसिद्ध थे। श्री मथुरा प्रसाद जी एव उनकी धर्मपत्नीकी धार्मिक प्रवृत्ति की थी और वे समाज सेवामे अग्रसर रहते थे। श्री तारणतरण चैत्यालय ट्रस्ट, सागरके वे बहुत वर्षों तक मन्त्री रहे। उनकी श्रीगुरु तारणतरण स्वामीके प्रति अटूट श्रद्धा एव भक्ति थी। वे पूज्य श्री क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी एव ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जीके भी भक्त थे।

सन् १९३२में श्री मथुराप्रसाद जीने ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जीका वर्षावास 'सागर'मे कराया और उन्हें अपने निवास स्थानमे ठहराया। अवसर देखकर उन्होने ब्रह्मचारी जीसे तारण-तरणस्वामीके ग्रन्थोको देखकर उनका अर्थ करनेका आग्रह किया। ब्रह्मचारी जी निष्पक्ष विद्वान् थे; उन्होने अच्छी तरहसे समझ लिया कि ये ग्रन्थ अध्यात्मके उच्चकोटिके ग्रंथ है। और इनका अर्थ करनेसे समाजका कल्याण होगा। सभी ग्रथ जैन आम्नायके अनुसार और श्रीमद् भगवत् कुदकुदाचार्यके समयसार आदिके समान सार गर्भित है।

श्री मथुराप्रसाद जीके आग्रह पर उन्होने टीका करनेकी स्वीकृति दे दी और इसी अवसर पर वर्षावासमे श्री मालाजी, श्री पडितपूजा, श्री कमल बत्तीसी एव श्री तारणतरण श्रावकाचारकी टीका, अन्वयार्थ, भावार्थ एवं विशेषार्थ सहित टीका की और समाजने उनका प्रकाशन कराया। पश्चात् ब्रह्मचारी जीने समाजमे भ्रमण किया और अन्य ग्रंथो की टीकायें की—इसप्रकार उनके द्वारा उपरोक्त चार ग्रन्थो सहित १ श्री ज्ञान समुच्चयसार, २ श्री उपदेशशुद्धसार, ३ श्री त्रिभगी-सार, ४ श्री चौबीस ठाणा, श्री ममलपाहुड कुल ९ ग्रन्थो की टीकाका कार्य सम्पन्न किया गया। यह ऐसा महान् कार्य था; जिसकी जितनी भी प्रशसा की जाय थोडी है। समाजने बादमे इन ग्रथो-का प्रकाशन कराया; जिसमे श्रीममलपाहुड ग्रंथ ३ भागो म प्रकाशित हुआ।

शेष ५ ग्रन्थो—१ श्री छद्मस्थवाणी, २ श्री नाममाला, ३. श्री शून्यस्वभाव, ४ श्री सिद्ध स्वभाव एव ५ श्री खातिका विशेषकी टीका श्री प० चपालाल जी सोहागपुर एव श्रद्धेय ब्र० श्री जयसागर महाराजने की और इन ग्रन्थोका प्रकाशन श्रीमत सेठ भगवानदास शोभालाल जी द्वारा संस्थापित पारमार्थिक ट्रस्ट, सागर द्वारा कराया गया।

श्री जिनतारण स्वामीके ३ ग्रन्थो पर पूज्यश्री कानजी स्वामीके भी प्रवचन हुये। श्री ज्ञान-

समुच्चयसार, श्री उपदेशशुद्धसार एवं श्री ममलपाहुड पर हुये प्रवचनोका प्रकाशन भी ३ पुस्तकोंमे (तीन भागों मे) श्रीमत सेठ सा० द्वारा कराया गया।

स्वर्गीय पंडित फूलचद्र जी सिद्धान्ताचार्य एवं आदरणीय पं० हुकुमचंद जी भारिल्ल आदि विद्वानोंने भी श्री जिनतारण स्वामीके ग्रन्थोका अध्ययन कर उन पर प्रवचन किये।

स्वर्गीय श्री मथुराप्रसाद जी एव उनकी धर्मपत्नी श्रीमती बेनोबाईने अपने जीवन कालमे समाजके हितमे अनेक कार्य किये। सागरमे जिला चिकित्सालयके समीप धर्मशाला निर्माण, पथरियामे चैत्यालयमे धर्मशाला निर्माण, श्री सूखानिसई जी, श्री निसई जी मल्हारगढ़ एवं श्री सेमर खेडी जीमे कमरोका निर्माण कराया और अनेको संस्थाओको भी दान दिया।

श्री मथुराप्रसाद जी अपने जीवन कालमे श्रीमती इन्द्रानी बहू, भोगाबाई, कस्तूरीबाई समैया ट्रस्ट, मोराजी विद्यालय आदि अनेक सस्थाओसे जुडे रहे और सन् १९६५मे श्रीमत सेठ भगवानदास शोभालाल जी द्वारा आयोजित श्री निसई जी (मल्हारगढ) के मेला-महोत्सवके अवसर पर उन्होने तन, मन, धनसे सेवा की। समाजसेवी व्यक्तित्व ही यशके भागी हुआ करते हैं।

सागर
दिनाक–१५-१२-९२

राजेलाल समैया

प्रकाशकीय वक्तव्य

श्री गुरुदेव तारणतरण मडलाचार्यजी महाराजने विरचित चौदह ग्रन्थोंमे जीवोके कल्याण हेतु जिनवाणीका कथन और आगमका सार आध्यात्मिक दृष्टिकोण से समकालीन भाषा शैलीमे मुमुक्षुओको प्रदत्त किया।

इन चौदह ग्रन्थोमेसे ९ ग्रन्थोकी भाषा टीका जैन समाजके प्रकाड विद्वान् मनीषो, यशस्वी लेखक एव ओजस्वी वक्ता श्रद्धेय ब्र० शीतलप्रसादजीने करीब ५० वर्ष पूर्वकी थी, शेष ५ ग्रन्थोकी टीकायें समाजके मूर्धन्य विद्वान् वाणीभूषण, समाजरत्न स्व० श्रद्धेय ब्र० जयसागरजी महाराजने अकथनीय श्रमपूर्वक करके समाजको समर्पित की। सभी ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है, जिन ग्रन्थोकी पुन: प्रकाशनकी आवश्यकता महसूस की गई उनके द्वितीय सस्करण भी प्रकाशित हुये हैं।

श्री त्रिभगीसार एव श्री चौबीस ठाणा ग्रन्थका द्वितीय संस्करण एक साथ, एक ही जिल्दमे प्रकाशित हो रहा है। इन द्वय ग्रथोका एक साथ इकट्ठा प्रकाशन श्री दिगम्बर जैन अनाथालय ट्रस्ट सागरकी ओरसे हो रहा है।

श्री त्रिभगीसार ग्रन्थमे ७१ गाथायें हैं। इस ग्रथमे श्री तारण स्वामीने जीवोके कल्याण हेतु बहुत उपयोगी विवेचन किया है। कर्मबधके कारण सूक्ष्म भावोको इतनी उत्तम रीतिसे बताया है कि जो उनपर मनन करेगा—वह अवश्य आस्रवके कारण भावोसे बचनेका उपाय करेगा।

श्री चौबीस ठाणा ग्रन्थमे श्री तारण स्वामीने आध्यात्मिक मननका रस भर दिया है। आत्माके निज शुद्ध स्वभावको, परभावोसे या कर्म द्वारा रचित अवस्थाओसे भिन्न पहचान लिया जावे। मनमे वे ही भाव आते है, जो कर्मबधनसे सम्बन्ध रखते है। चौबीस स्थान या विशेष अवस्थायें ससारी जीवोकी होती है ये सब विकल्प शुद्ध आत्माके स्वभावमे नही है।

इस प्रकाशनमे जिन महानुभावोने जो भी सहयोग प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रूपसे किया है हम उन सभी के आभारी हैं। आदरणीय पडित बाबूलालजी "फागुल्ल" वाराणसी–(उ० प्र०) विशेष रूपसे धन्यवादके पात्र है, जिन्होने इस कार्यको सुन्दर एव आकर्षक रूपमे सम्पन्न किया। आपकी मुद्रण शैली इस समय जैन समाज मे अद्वितीय है।

प्रेमचन्द जैन
अध्यक्ष
श्री दिगम्बर जैन, अनाथालय ट्रस्ट
सागर (म० प्र०)

दिनाक
६ सितम्बर, १९९३

त्रिभंगीसार की प्रथम संस्करण की भूमिका

यह ग्रन्थ त्रिभंगीसार केवल ७१ गाथाओका है। परन्तु इसमे श्री तारणतरण स्वामीने जीवोके कल्याण हेतु बहुत उपयोगी कथन किया है। कर्मबन्धके कारण सूक्ष्म भावोको इतनी उत्तम रीतिसे बताया है कि जो उनपर मनन करेगा वह अवश्य आस्रवके कारण भावोसे बचनेका उपाय करेगा। आस्रवके ३६ त्रिभंगीदल बहुत उपयोगी लिखे हैं। एक-एक दल तीन-तीन भावोका है। फिर आस्रवके निरोधक व कर्मके क्षयके कारक २० त्रिभंगीदलोको बताया है। इनमे निश्चय मोक्षमार्गका अनुभव करने योग्य सग्रह है, बहुत ही कल्याणकारी है। ग्रंथ छोटा होनेसे नमूना देनेकी आवश्यकता नही। पाठकगण थोडासा पढनेसे ही इस तत्त्वसग्रहके महत्त्वको समझ जाँयगे। श्री तारणस्वामीने प्राचीन जैन सिद्धातके अनुकूल ही सर्व कथन किया है। हमको इसका हिन्दीमे भाव लिखते हुए बहुत ही आनन्दका लाभ हुआ। हम ग्रन्थकर्ताके तत्त्वविचारकी भूरि-भूरि प्रशसा करते हैं। स्वामी अपने समयमे जैन सिद्धातके आध्यात्मीक विद्वान् व त्यागी थे। स्वामीका जन्म सवत् १५०५ मे व स्वर्गवास स० १५७२ मे हुआ था। यह ग्रन्थ जगत भरके मानवोके लिये उपकारी बनेगा। दिगम्बर व श्वेताबर सर्व जैनोंको तो मनन करना ही चाहिये।

हमको भाई मथुराप्रसादजी बजाज सागरसे तीन लिखित पुस्तकें हालकी लिखी मिली। प्राचीन प्रतियोके लिये हमने बारबार मथुराप्रसादजीको व तारण समाजके मुखिया धर्मात्मा भाई गुलाबचदजी ललितपुरको लिखा कि प्राचीन प्रति १६०० संवत्के अनुमानकी लिखित भेजें, परन्तु कोई महाशय भेज न सके, तब बहुत सम्हालकर गाथाएँ शोध कर लिखी हैं। प्राचीन प्रतिसे मिलान करने पर कही भूल हो तो दूसरी आवृत्तिमे सुधार ली जावे। तारणतरण समाजको उचित है कि श्री तारणतरण स्वामीके आध्यात्मीक साहित्यका भले प्रकार प्रचार करे।

आश्विन सुदी ६ वीर सवत् २४६३
रविवार ता० १-१०-१९३७

जिनतत्त्वप्रेमी
ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद

आध्यात्मिक चौबीस ठाणा के प्रथम संस्करण की भूमिका

श्री जिन तारणतरणस्वामी रचित यह चौबीस ठाणा ग्रंथ है। इसमे भी स्वामीने आध्यात्मीक मननका रस भर दिया है। इस ग्रंथके लिखनेका प्रयोजन यह झलकता है कि आत्माके निज शुद्ध स्वभावको पर भावोसे या कर्म द्वारा रचित अवस्थाओंसे भिन्न पहचान लिया जावे। मनमे वे ही भाव आते हैं जो कर्मसे सम्बन्ध रखते हैं। इन सबसे भेदज्ञान होनेपर अपना स्वभाव भिन्न झलकने लग जायगा, जो स्वभाव स्वसंवेदन गम्य है, मन, वचन, कायसे अगोचर है। यह भी दिखलाया है कि मुमुक्षुको व्यवहाराश्रित आत्माकी सर्व अवस्थाओको भी जानना चाहिये कि कर्मोके संयोगमे रहते हुए क्या-क्या अवस्थाएँ हो जाती हैं, जो सर्व अवस्थाएँ केवल शुद्ध स्वभावमे नही हैं। भेद विज्ञान होनेके लिये तत्त्वार्थसूत्र व श्री गोम्मटसारका ज्ञान बहुत जरूरी है। फिर समयसार ग्रंथसे आत्माको स्वभावसे शुद्ध जानकर इन कर्मजनित व कर्म सापेक्ष भावोको दूर किया जावे। चौबीस स्थान या विशेष अवस्थाएँ ससारी जीवोकी होती हैं ये सब विकल्प शुद्ध आत्माके स्वभावमे नही है। इसलिये नीचे प्रकार भावना भानी चाहिये—

१–मैं नरकादि चार गतिमे भिन्न स्वभाव मात्रका धारी शुद्धात्मा हूँ।

२–मैं पाँचों इन्द्रियोसे भिन्न अतीन्द्रिय स्वभावधारी शुद्धात्मा हूँ।

३–मैं छ: कायोसे भिन्न अकाय व अमूर्तीक शुद्धात्मा हूँ।

४–मैं १५ प्रकार भोगोकी चचलतासे शून्य समुद्रवत् निश्चल हूँ।

५–मैं तीनो वेदोके काम विकारसे परे ब्रह्मचर्यका धारी परब्रह्म स्वरूप हूँ।

६–मैं क्रोधादि पच्चीस कषायोसे रहित वीतराग शात आत्मा हूँ।

७–मै मतिज्ञानादि आठ ज्ञानके भेदोसे रहित एक अभेद शुद्ध सहज ज्ञानका धारी हूँ।

८–मैं सामायिकादि सात प्रकार सयमकी श्रेणीमे परे परम सयमी आत्मरमी हूँ।

९–मैं चार प्रकार दर्शनके भेदोंसे बाहर एक अभेद दर्शन गुणका धारी हूँ।

१०–मै कृष्णादि छहो लेश्याओसे रहित परम शुद्ध निर्मल भावका धारी हूँ।

११–मैं भव्य आप्तकी कल्पनासे शून्य एक शुद्ध जीवत्व भावका स्वामी हूँ।

१२–मैं छह प्रकार सम्यक्त्व भेदोंसे रहित सदा ही एक शुद्ध सम्यग्दृष्टी हूँ।

१३–मैं सैनी असैनीकी कल्पनासे शून्य, मनसे गोचर स्वानुभवगम्य आत्म वस्तु हूँ।

१४–मैं आहारक अनाहारकके मार्गसे परे सदा ही निरास्रव स्थिर आत्मा हूँ।

१५–मैं चौदह गुणस्थानोंकी श्रेणीसे दूरवर्ती परम कृतकृत्य शुद्ध बुद्ध परमात्मा हूँ।

१६–मैं उन्नीस जीव समासोंसे दूरवर्ती परम शुद्ध अशरीरी आत्मा हूँ।

१७–मैं आहारादि छः पर्याप्तियोसे शून्य परम निरंजन ज्ञानाकार आत्मा हूँ।

१८–मैं दस प्राणोसे रहित सुख सत्ता चैतन्य बोध प्राणोंका धारी अमर आत्मा हूँ।

१९–मैं चार प्रकार संज्ञासे रहित सदा ही तृप्त परम निस्पृह व निर्भय आत्मा हूँ।

२०–मैं बारह प्रकार उपयोगके भेदोंसे रहित शुद्ध सहज ज्ञान दर्शन उपयोगका धारी हूँ।

२१–मैं सोलह प्रकार ध्यानके प्रपंचसे दूरवर्ती सदा ही स्वानुभूति स्मरणकारी राम हूँ।

२२–मैं सत्तावन आस्रवोसे रहित सदा ही निर्बंध व स्वतत्र परमेश्वर हूँ।

२३–मैं चौरासी लाख योनियोके गमनसे रहित सदा ही अजन्मा अजर अमर परमात्मा हूँ।

२४ मैं १९७॥ लाख कुल कोडिकी सज्ञाओंसे दूरवर्ती परम चैतन्य कुलवान परम शुद्ध सहज स्वभावधारी आत्मा हूँ।

इस तरह मनन करनेसे अपना आत्मा देव अपने शरीररूपी मंदिरमे प्रगट दिखलाई पड़ेगा। शुद्ध नय या शुद्ध दृष्टिसे हर एक आत्मा निर्बंध व परम शुद्ध सिद्धके समान है। यही श्रद्धान, यही ज्ञान, यही ध्यान मोक्षमार्ग है व परमानन्दका कारण है।

इस ग्रथकी टीका लिखनेमे शुद्ध प्रतिका मिलना बड़ा कठिन था। भाई मथुराप्रसाद बजाज सागरने दो गुटके भिजवाए, जिससे ग्रथ समझमे आ सका।

१ गुटका १०० वर्षके अनुमानका लिखा होगा उसमे लिपि संवत् नही है।

दूसरा गुटका बहुत पुराना है व बहुत शुद्ध है। इसकी प्रशस्ति यह है जो पृष्ठ २६० पर ममलपाहुड ग्रंथकी समाप्तिमे दी हुई है। चौबीस ठाणा गुटकेके अंतमे है—

प्रशस्ति

संवत् १६६४ (**सोलहसौ चौसठ**) वर्षे पुस्तक आरम्भ ज्येष्ठ सुदी ७ का। समाप्त श्रावण वदो ७ का ग्रन्थ समाप्तमिति। तत् वास्तव्य स्थान **देवगढ़नगरे** तत् महाराजाध्यराजा ...... व्रतधारी पाडे **रैणचंद** तत् पट्टे शिष्य पाडे **असोले** पुस्तक लिखापित आत्म पठणार्थं। तत् चैत्यालये साहिपति साहि श्री **उद्योतकारी** श्री साहि अधिकारी तत् पुत्र सुखानन्द न्यानी श्री अधिकारी गजु पुस्तक लिखापितोयं। दत्त मनःकामना **सिद्धयर्थं** परोपकारार्थं धर्मफल प्राप्त्यर्थं। लिखितं लेखक भट्ट राघवदास स्वहस्त लिखितं।

इस ग्रन्थमे गद्य बहुत है। आत्म मननके वाक्य हैं। मूल प्रति सम्हाल करके नकल करके नम्बर देकर अर्थ लिखा है। तुच्छ बुद्धिके अनुसार समझके लिखा है। कही भूलचूक हो तो ज्ञानीजन सुधार लें व अल्पज्ञपर क्षमा करें। श्री जिन तारणतरणस्वामीका स्वर्गवास १५७२ मे हुआ। मल्हारगढ नसियामे स्मारक स्थापित है। चौबीस स्थानोके कोष्ठकोका मिलान चौबीस ठाणा चर्चा पुस्तकसे किया है जिसे वीर स० २४५६ मे जैन साहित्य प्रचारक कार्यालय हीराबाग बम्बईने प्रसिद्ध किया है।

मुलतान शहर
दासूराम सुखानन्द जैन बाग,
ता० २७-९-१९३८।

अध्यात्मरसिक
ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद

त्रिभंगीसार विषय-सूची

नंबर	विषय		गाथा	पृष्ठ
१	ग्रन्थकारका मङ्गलाचरण		१	१
२	आयुकर्मका बन्ध त्रिभागमे		२-४	१-२
३	त्रिभगी प्रवेश कथन प्रतिज्ञा		५	३
४	जीवाधिकरणके १०८ भेद		६	४
५	सम्यग्दर्शनकी भावना आस्रव निरोधक है		७	६

पहला अध्याय—त्रिभङ्गी प्रवेश भाव

६	शुभ, अशुभ, मिश्र	(१)	८	७
७	मन, वचन, काय	(२)	९	९
८	कृत, कारित, अनुमति	(३)	१०	१३
९	कुमति, कुश्रुत, कुअवधि	(४)	११-१२	१५-१६
१०	आर्त्त, रौद्र, मिश्र	(५)	१३	१९
११	मिथ्या समय, समय मिथ्या, प्रकृति मिथ्या	(६)	१४	२२
१२	मिथ्या देव, मिथ्या गुरु, मिथ्या धर्म	(७)	१५	२४
१३	मिथ्या दर्शन, मिथ्या ज्ञान, मिथ्या चारित्र	(८)	१६	२५
१४	मिथ्या सयम, मिथ्या तप, मिथ्या परिनै	(९)	१७	२७
१५	माया, मिथ्या, निदान	(१०)	१८	२९
१६	राग, द्वेष, निदान	(११)	१९	३१
१७	मद, मान, माया	(१२)	२०	३३
१८	कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र	(१३)	२१	३५
१९	कुल, अकुल, सङ्ग	(१४)	२२	३७
२०	अनृत, अचेत, परिनै	(१५)	२३	३९
२१	अशुद्ध, अभाव, मिश्र	(१६)	२४	४०
२२	आलाप, प्रपच, मिश्र	(१७)	२५	४२
२३	सग, कुसग, मिश्र	(१८)	२६	४६
२४	आशा, स्नेह लोभ	(१९)	२७	४८
२५	लाज, भय, गारव	(२०)	२८	५०
२६	गम, अगम, प्रमाण	(२१)	२९	५३
२७	अनृत, स्तेय, काम	(२२)	३०	५६
२८	अन्याय, रति, मिश्र	(२३)	३१	५८
२९	कर्मादि, असमाधि, अस्थिति	(२४)	३२	५९
३०	हास्य, रति, अरति	(२५)	३३	६१
३१	स्त्री, पुरुष, नपुसक	(२६)	३४	६४
३२	मनुष्यनी, तिर्यंचनी, देवागना	(२७)	३५	६५
३३	काष्ठ, पाषाण, लेप	(२८)	३६	६७

नंबर	विषय		गाथा	पृष्ठ
३४	रूप, अरूप, लावण्य	(२९)	३७	६८
३५	माया,मोह, प्रमाद	(३०)	३८	७०
३६	अनन्तानु, राग, मिश्र	(३१)	३९	७२
३७	कारण, कार्य, उचित	(३२)	४०	७४
३८	आलाप, लोकरजन, शोक	(३३)	४१	७५
३९	रसन, स्पर्शन, घ्राण	(३४)	४२	७७
४०	चक्षु, श्रोत्र, उत्साह	(३५)	४३	७९
४१	आहार, निद्रा, माया	(३६)	४४	८१

दूसरा अध्याय—त्रिभङ्गी आस्रवबल भाव निरोधन भाव

४२	प्रतिज्ञा		४५	८४
४३	देव, गुरु, शास्त्र	(१)	४६	८४
४४	दर्शन, ज्ञान, चारित्र सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र	(२) (३)	४७–४८	८८
४५	सम्यक् संयम, सम्यक् तप, सम्यक् परिनै	(४)	४९	९०
४६	भाव, शुद्ध, प्रमाण	(५)	५०	९१
४७	चैत्य, उत्पाद्य, साश्वत्त	(६)	५१	९३
४८	मति, श्रुत, अवधि	(७)	५२-५३-५४	९४-९५
४९	मन पर्यय, केवल, स्वरूप	(८)	५५-५६	९७
५०	आज्ञा, वेदक, उपशम सम्यक्त्व	(९)	५७	९८
	क्षायिक, शुद्ध, ध्रुव सम्यक्त्व	(१०)	५७	९८
५१	पदस्थ, पिंडस्थ, रूपस्थ रूपातीत, सुधर्म, अवकाश	(११-१२)	५८-६०	१०२
५२	द्रव्य, भाव, शुद्ध तत्त्व, निरम, प्रकाशन	(१३-१४)	६१	१०९
५३	तत्त्व, द्रव्य, काय	(१५)	६२	११२
५४	समय, शुद्ध, सार्थ समय, सार्थ, ध्रुव	(१६-१७)	६३	११६
५५	सम्यक्त्व वन्दना, स्तुति	(१८)	६४	११८
५६	पदार्थ व्यंजन, स्वरूप	(१९)	६५	१२०
५७	नद आनद, सहजानंद, शुद्ध	(२०)	६६	१२२
५८	व्यवहार, निश्चय, ध्रुव	(२१)	६७-६८-६९-७०	१२४
५९	अंतिम समाप्ति		७१	१२७
६०	५७ आस्रव त्रिभंगी गुणस्थानोपर			१२८
६१	गुणस्थानापेक्षा विभाग			१२९

●

चौबीस ठाणा विषय-सूची

पृष्ठ

प्रथम अध्याय

अरहन्त स्तुति	१३१
अरहन्तके २४ स्थान	१३४
चौबीस स्थानोंका विस्तार	१३५
चार गतियोंमें २४ स्थान	१४३
सिद्ध स्तुति	१४४
नर्कगति निरूपण	१४६

दूसरा अध्याय

एकेन्द्रिय स्थावर २४ स्थान	१७५
स्थावर काय विशेष निरूपण	१७५
अप काय निरूपण	१७८
तेज काय निरूपण	१८३
वात काय निरूपण	१९०
पृथ्वी काय निरूपण	१९६
वनस्पति काय निरूपण	२०४
नीच निगोद स्वभाव	२१२
६६३३६ क्षुद्र भव विवरण	२२५

तृतीय अध्याय

विकलत्रय २४ स्थान	२२७

चतुर्थ अध्याय

पंचेन्द्रिय २४ स्थान	२३८
खर भाग पृथ्वी निरूपण	२४३
पंक भाग पृथ्वी निरूपण	२४६
ग्रन्थ साराश	२५०

त्रिभंगीसार

[अन्वयार्थ, भावार्थ और विशेषार्थ सहित]

श्री तारणतरणस्वामी विरचित

त्रिभंगी सार

मंगलाचरण

परम शुद्ध परमातमा, परम ज्ञान बल ईश ।
परमानन्द महोदधी, सिद्ध नमूं नित शीश ॥ १ ॥

अथ श्री तारणतरणस्वामी विरचित त्रिभगी सारका भाव लिखा जाता है—

ग्रंथकारका मंगलाचरण व प्रतिज्ञा

नमस्कृत्य महावीरं, भवोद्भवविनाशनं ।
त्रिभंगीदलं प्रोक्तं, आस्रवं निरोधकारणं ॥ १ ॥

अन्वयार्थ—(भवोद्भवविनाशन) ससारके जन्मोको नाश करनेवाले (महावीरं) श्री महावीर भगवान्‌को (नमस्कृत्य) नमस्कार करके (आस्रव निरोधकारण) कर्मोंके आस्रवके निरोधके लिये (त्रिभगीदल प्रोक्त) तीन-तीन भगके समूह पदोको कहता हूं।

भावार्थ—श्री तारणस्वामीने अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान्‌को नमस्कार किया है। क्योकि उन्होने उन सर्व कर्मोंका क्षय कर डाला है, जिन कर्मोंके फलसे ससारमें पुनः-पुनः जन्म होता है। फिर स्वामीने प्रतिज्ञा की है कि भव्य-जीवोका भी कर्मोंका आस्रव निरोध हो, वे भी तत्त्वको जानकर मोक्षपथगामी बनें, इसलिए त्रिभगी सार नामके ग्रन्थको मैं कहूँगा, जिसमें तीन-तीन पदोको देकर तत्त्व-का कुछ स्वरूप समझाया जायगा।

आयु कर्मका बन्ध त्रिभागमें

त्रिभंगी दल समूहं, जिन उक्तं जिनागमे ।
आयु त्रिभागं कृत्वा, त्रिभंगी त्रिति अस्ति तं ॥ २ ॥

अन्वयार्थ—(जिनागमे) जिनवाणीमें (जिन उक्त) जिनेन्द्रका कहा गया (त्रिभगी दल समूह) तीन भंगोंके अनेक दल समूह हैं (आयु त्रिभाग कृत्वा) आयुकी स्थिति-के तीन भाग करके (त्रिभगी त्रिति अस्ति त) त्रिभंगीका तीसरा भाग कहा जाता है।

भावार्थ—जिनागम द्वादशांग वाणी बहुत विशाल है, उसमें तीन-तीन बातों-के अनेक समूह हैं। उनमेंसे प्रयोजनवश विशेष उपकारी जानकर तीन-तीन बातोंको लेकर कुछ त्रिभंगोंका कथन यहाँ किया जाता है। पहले आयुकर्मके त्रिभागोंका वर्णन करते हैं—

आयोघां जिनं उक्तं, वर्ष षष्ठानि निश्चये।
भव्यात्मा हृदये चिंते, त्रिभंगी दलमाश्रितं॥ ३॥
तस्यास्ति त्रिविधिं हृत्वा, दशा त्रितिय उच्यते।
मुहूर्तं जिनं उक्तं, तस्यास्ति समयत्रियं॥ ४॥

(नोट—तीन प्रतियोके मिलानेसे जो पाठ ठीक बैठा है वह लिखा है। पुरानी प्रति न मिलनेसे शका रह गई है। भाव जो भासा है यह लिखा जाता है।)

अन्वयार्थ—(आयोघा जिन उक्त) जिनेन्द्रने आयुकर्मका जो काल कहा है (वर्ष षष्ठानि निश्चये) यदि किसीकी आयु ६० साठ वर्षकी निश्चय की जावे (भव्यात्मा हृदये चिंते) भव्य जीव इसके सम्बन्धमें मनमें विचार करे (त्रिभंगी दल-माश्रितं) इसके तीन भाग करने चाहिये (तस्यास्ति त्रिविध हृत्वा) उसको तीनसे भाग देना चाहिये (दशा त्रितिय उच्यते) तब जो तीसरा भाग रह जायगा (मुहूर्तं जिनं उक्त) उस समय एक अन्तर्मुहूर्त आयु बन्धका समय जिनेन्द्रने कहा है (तस्यास्ति समयत्रिय) इसके भी तीन भाग करते जाना चाहिये।

भावार्थ—कर्मभूमिके मनुष्य व तिर्यंचकी आयुके बन्धकी रीति यह है कि जितनी आयु हो उनके तीसरे भाग शेष रहनेपर एक अनन्तर्मुहूर्तके लिये आगामी आयुके बन्धका काल आता है, तब जो न बांधे तो फिर शेष आयुका तीसरा भाग करनेपर फिर दूसरी बार एक अनन्तर्मुहूर्तके लिये आयुके बन्धका काल आयगा फिर भी न बंधे तो फिर तीसरे भाग शेष रहनेपर, इस तरह आठ दफे त्रिभाग करनेपर आयुके बन्धका अन्तर्मुहूर्तके लिये समय आयेगा। जैसे किसीकी आयु ६० वर्षकी है तो इसके आठ त्रिभाग इस तरह पर होंगे—

१. पहला	२० वर्ष शेष रहने पर
२. दूसरा	६ वर्ष ८ मास शेष रहनेपर
३. तीसरा	२ वर्ष २ मास २० दिन शेष रहनेपर

४. चौथा	०	८ मास २६ दिन १६ घण्टे शेष रहनेपर	
५. पाँचवां	०	२ मास २८ दिन २१ घण्टे २० मिनट शेष रहनेपर	
६. छट्ठा	०	०	२९ दिन १५ घण्टे ६ मिनट ४० सिकंड शेष रहनेपर
७. सातवां	०	०	९ दिन २१ घण्टे २ मिनट १३$\frac{1}{3}$ सिकंड शेष रहनेपर
८. आठवां	०	०	३ दिन ७ घण्टे ० ,, ४४$\frac{4}{9}$ सिकंड शेष रहनेपर

यदि आठवां विभाग १ वर्ष या २ वर्षका माने तो आठ विभाग इस प्रमाण होगे—

	आयु १३१२२ वर्ष			६५६१ वर्ष		
त्रिभाग	१	४३७४	,,	२१८७	,,	शेष रह जानेपर
	२	१४५८	,,	७२९	,,	,,
	३	४८६	,,	२४३	,,	,,
	४	१६२	,,	८१	,,	,,
	५	५४	,,	२७	,,	,,
	६	१८	,,	९	,,	,,
	७	६	,,	३	,,	,,
	८	२	,,	१	,,	,,

यदि आठों त्रिभाग कालोंमें आयु कर्म बँधे तो मरणके अन्तमुहूर्त पहले तो अवश्य बँधता है। एक त्रिभागमें आयुबन्ध हो जानेपर आगेके त्रिभागोमें आयु वही रहेगी, स्थिति कम या अधिक हो जायगी। भोगभूमिमें ९ मास पहले देव व नारकियो व ६ मास पहले, आठ त्रिभागोंसे आयु बन्धती है।

त्रिभंगी प्रवेश कथन प्रतिज्ञा

त्रिभंगी प्रवेसं कृत्वा, समयादि त्रितिय रचितं।
भव्यात्मा चिंतनं भावं, सुद्धात्मा सुद्धं परं॥ ५॥

अन्वयार्थ—(त्रिभंगी प्रवेस कृत्वा) तीन तीन भंगोंके द्वारा आस्रवके कारण (समयादि त्रितिय रचितं) तीन तीन पदार्थ रचे गये हैं (भव्यात्मा भाव चित्तनं) भव्य-

जीवको उन भावोंको विचारना चाहिये (मुद्धात्मा पर सुद्ध) सम्यग्दृष्टिको उत्कृष्ट शुद्ध परमात्माके स्वरूपका अनुभव करना चाहिये ।

भावार्थ—आस्रवोंके भावोको जानकर उनका त्याग करना चाहिये । आस्रवोसे भिन्न अपने शुद्ध स्वभावका मनन करना ही हितकर है ।

१०८ जीवाधिकरण

त्रिभंगी प्रवेस प्रोक्तं, भावं सय अठोत्तरं ।
मिथ्यात भय संपूर्णं, रागादि मल पूरितं ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ—(त्रिभगी प्रवेस) तीन भंगोको ले करके (मिथ्यात भय सपूर्णं) मिथ्यादर्शनसे पूर्ण (रागादि मल पूरित) राग द्वेषादि मलसे भरे हुए (सय अठोत्तर भाव) एक सौ आठ १०८ आस्रवके जीवाधिकरण रूप भाव (प्रोक्त) कहे गए है ।

भावार्थ—जिन जीवोके भावोके आधारसे कर्म आते हैं वे मूल भाव १०८ एक सौ आठ हैं । जैसा श्री तत्त्वार्थसूत्रमें कहा है—

आद्य सरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकश ।।अ० ६ सूत्र ८।।

१—संरम्भ, २—समारम्भ, ३—आरम्भ । इन तीनको मन, वचन, काय तीन योगोसे गुणा करनेसे नौ भाव हुए । इन नौको कृत, कारित, अनुमति इन तीनसे गुणा करने पर सत्ताईस भेद हुए । हर एक सत्ताईस भावको क्रोध, मान, माया, लोभ चार कषायोंसे गुणा करने पर १०८ भाव होते है ।

किसी कार्यको करनेका संकल्प या मन्तव्य करना संरम्भ है । उसके लिये सामग्री एकत्र करना समारभ है । उस कामको करने लगना आरम्भ है ।

अपने भावको मनमें करना मन संरम्भ है, वचनसे प्रगट करना वचन सरम्भ है, कायसे संकेत करके बताना काय संरम्भ है । इसी तरह मन, वचन, कायसे समारम्भ व आरम्भ भी होता है । इन नौ प्रकारके भावोको या तो स्वय काम करनेके लिये, या किसीसे करानेके लिये या सम्मति देनेके लिये करनेसे सत्ताईस भेद हो जाते हैं । हरएक भाव मन, वचन, कायके द्वारा चारो कषायोमेंसे किसी कषायके द्वारा होता है इसलिए १०८ भाव हो जाते हैं । जैसे हिंसा करनेके भाव क्रोधवश किसीने किए तब मन, वचन, कायसे सरम्भ, समारम्भ, आरम्भ करनेसे नौ भाव करनेके अभिप्रायसे हुए । क्रोधवश हिंसा करानेके भाव मन, वचन, कायसे सरम्भ, समारम्भ, आरम्भ करनेसे हुये, तब नौ भाव करानेके अभिप्रायसे हुए, फिर क्रोधवश

हिंसाके लिए सम्मति देनेके लिये संरम्भ, समारम्भ, आरंभको मन, वचन, कायसे करनेसे नौ भाव अनुमतिके अभिप्रायसे हुए। इसतरह कृत नौ + कारित नौ + अनुमति नौ = २७ भाव क्रोधके वश हो गए।

नौ अनुमति भावोके ९ भंग क्रोधवश नीचे प्रकारके होंगे—

१. यदि मेरे शत्रुका कोई विनाशका विचार करे तो अच्छा मन है—मन संरम्भ अनुमति।

२. यदि मेरे शत्रुका कोई विनाशका विचार करे तो अच्छा है ऐसा वचन कहना—वचन संरम्भ अनुमति।

३. यदि मेरे शत्रुका कोई विनाशका विचार करे तो अच्छा है ऐसा कायसे संकेत करना—काय संरम्भ अनुमति।

४. यदि मेरे शत्रुके मारनेके लिये शस्त्र लाया जावे तो अच्छा है—मन समारम्भ अनुमति।

५. यदि मेरे शत्रुके मारनेके लिये शस्त्र लाया जावे तो ऐसा वचन कहना वचन समारंभ अनुमति।

६. यदि मेरे शत्रुके मारनेके लिए शस्त्र लाया जावे तो ऐसा कायसे संकेत करना काय समारम्भ अनुमति।

७. यदि मेरे शत्रुको नाश कर डाले तो अच्छा है—ऐसा विचारना—मन आरम्भ अनुमति।

८. यदि मेरे शत्रुको नाश कर डाले तो अच्छा है—ऐसा वचन कहना—वचन आरंभ अनुमति।

९. यदि मेरे शत्रुको नाश कर डाले तो अच्छा है—ऐसा कायसे संकेत—काय आरंभ अनुमति। मन, वचन, कायसे संरम्भ, समारम्भके अनुमतिके ९।

१०८ प्रकारके भावोसे कर्मोंका आस्रव होता है, यह संसारवर्द्धक घोर पापका बंध करता है।

सम्यग्दृष्टोके अनन्तानुबंधी कषाय नही होती है। इससे वैसे गाढ़ भाव नहीं होते हैं। सम्यक्त्वीको क्रिया ज्ञानपूर्वक होती है। मिथ्यात्वीको क्रिया अज्ञानपूर्वक होती है। तौ भी जहांतक कषाय सम्बन्धी कुछ भी विकार मन, वचन, काय द्वारा होगा वहांतक कर्मोंका बन्ध पड़ेगा। ये आस्रव त्यागने योग्य हैं ऐसा भाव ज्ञानीको

करना योग्य है। यदि शुभ काम करनेमें प्रवृत्ति होगी तो मुख्यतासे पुण्यकर्मका आस्रव होगा।

सम्यग्दर्शनकी भावना आस्रव निरोधक है

त्रिभंगि निरोधनं कृत्वा, सम्यक्त्वे सुद्ध भावना।
भव्यात्मा चेतना रूपं, सम्यग्दर्शनमुत्तमं॥ ७॥

अन्वयार्थ—(त्रिभंगि) तीन भंग जो आस्रवोके कहेगे (निरोधन कृत्वा) उनको रोक करके (सम्यक्त्वे) सम्यग्दर्शनमें (सुद्ध भावना) शुद्ध भावना करनी चाहिये (भव्यात्मा) भव्य जीवकी आत्मामें (चेतना रूप) चेतन स्वरूपका अनुभव होना वही (उत्तम सम्यग्दर्शन) उत्तम या निश्चय सम्यग्दर्शन है।

भावार्थ—मिथ्यादर्शन सहित सर्व ही भाव संसारके कारण कर्म बन्धके कारक हैं। इसलिये मिथ्यात्व सहित सर्व भावोको निरोध करके सम्यग्दर्शनकी भावना करनी चाहिये। यद्यपि व्यवहार सम्यग्दर्शन परमार्थ आप्त, आगम, गुरुके श्रद्धानको या जीवाजीवादि सात तत्त्वोके श्रद्धानको कहते हैं तथापि निश्चय सम्यग्दर्शन आत्माका निज स्वभाव है। जहाँ निज शुद्ध आत्माका अनुभव किया जावे वहीं निश्चय या उत्तम सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शनका लाभ होना ही आस्रवोके निरोधका उपाय हाथ लग जाना है। सम्यक्त्वी परम वैरागी होता है, वह मोक्ष स्वरूप शुद्धात्माका ही प्रेमी हो जाता है, उसकी पीठ संसारकी तरफ हो जाती है। वह विषय सुखका निस्पृही किन्तु अतीन्द्रिय सुखका प्रेमी हो जाता है। कर्मोदयजन्य भोगोंको अनासक्तिसे करते हुए उसके विशेष निर्जरा होती है। उसके सामने बन्ध बहुत अल्प होता है जो शीघ्र छूट जानेवाला है। सम्यक्त्वीके मन, वचन, काय द्वारा जितने काम होते हैं वे सब कर्मकी प्रेरणावश उसकी श्रद्धासे किये करने योग्य हैं, नहीं होते हैं। इसलिए उसका अल्प बन्ध भी छूट जाने वाला है। चक्रवर्ती छः खंडका राज्य करनेवाला भी सम्यग्दृष्टी अल्प कर्म बन्ध करता है जब कि एक धनहीन मिथ्यादृष्टी तृष्णासे ग्रसित बहुत अधिक कर्म बन्ध करता है। समयसारकलशमें कहा है—

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ता सर्वे भावा भवन्ति हि। सर्वेऽप्यज्ञाननिर्वृत्ता भवन्त्यज्ञानिनस्तु ते॥ २२॥

भावार्थ—ज्ञानीके सर्व ही भाव ज्ञानसे बने हुए होते हैं। अज्ञानीके सर्व ही भाव अज्ञानसे बने हुए होते हैं। संसारका वर्द्धक अज्ञान है, संसारका छेदक सम्यग्ज्ञान या आत्मज्ञान है।

त्रिभंगी प्रवेस भाव

१. शुभ, अशुभ, मिश्र—तीन

सुहस्य भावनं कृत्वा, असुह भाव तिष्ठते।
मिश्र भाव च मिथ्यात्वं, त्रिभंगी दल संजुतं ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ—(सुहस्य भावन कृत्वा) शुभकी भावना करनेसे शुभ भाव होता है (असुह भाव तिष्ठते) अशुभ भावमें ठहरनेसे अशुभ भाव होता है (मिश्र भाव च मिथ्यात्व) मिथ्यात्व व सम्यक्त्वसे मिला हुआ मिश्रभाव होता है (त्रिभगी दल सजुत) ऐसे तीन प्रकारके भाव कर्मास्रवके कारण हैं।

भावार्थ—यहाँ आत्माके तीन भाव सूक्ष्मदृष्टिसे बताये हैं। सम्यक्त्वपूर्वक जो मन्द कषाय रूप भाव होते हैं उनको शुभ भाव कहते हैं। वे शुद्धात्माकी भावना सहित हैं। शुद्ध स्वरूपमें रुचिरूप हैं। वे भाव यद्यपि पुण्यबन्धके कारक हैं तथापि मोक्षमार्गमें बाधक न होकर साधक हैं। मिथ्यादृष्टीके भी मन्द कषाय रूप शुभ भाव होते हैं वे यद्यपि यहाँतक पुण्य बाँधते हैं कि द्रव्यलिंगी मुनि नवग्रैवेयिक तक जाकर अहमिंद्र हो जाते हैं तथापि यह पुनः साधारण मानव हो भव भ्रमणकारी भावोंमें फँस जाता है, उसका पुण्य मोक्षमार्गमें बाधक है। इसलिए वह वास्तवमें अशुभ है, पुण्य बन्धकी अपेक्षा शुभ है परन्तु मोक्षमार्ग न होनेसे वह अशुभ ही है। मिथ्यादृष्टी पापानुबन्धी पुण्यकर्म बाँधता है जो परम्परया पापके कारण हैं। सम्यग्दृष्टी पुण्यानुबन्धी पुण्यकर्म बाँधता है, परम्परया पुण्यबन्धके कारण होते हुए मोक्षमें सहकारी हैं।

श्री जयसेनाचार्य समयसारकी व्याख्यामें निर्जरा अधिकारमें गाथा २४२ से २४५ की व्याख्यामें कहते हैं—

कोऽपि जीवोऽभिनवपुण्यकर्मनिमित्तं भोगाऽकांक्षानिदानरूपेण शुभकर्मानुष्ठानं करोति सोऽपि पापानुबन्धिपुण्यराजा कालांतरे भोगान् ददाति। तेऽपि निदानबन्धेन प्राप्ता भोगा रावणादिवन्नरकादिदुःखपरपरां प्रापयन्तीति। कोऽपि सम्यग्दृष्टीर्जीवो निर्विकल्पसमाधेरभावात्, अशक्यानुष्ठानेन विषयकषायवंचनार्थं यद्यपि व्रतशीलदान-पूजादिशुभकर्मानुष्ठानं करोति तथापि भोगाकांक्षारूपनिदानबन्धेन तत्पुण्यकर्मानुष्ठानं न सेवते। तदपि पुण्यानुबन्धिपुण्यकर्म भवांतरे तीर्थङ्कर-चक्रवर्ती-बलदेवाद्यभ्युदयरूपे-

णोवयागतमपि पूर्वभवभावितभेदविज्ञानवासनाबलेन शुद्धात्मभावनाविनाशकान् विषय-सुखोत्पादकान् भोगाकांक्षानिदानरूपान् रागादिपरिणामान्न ददाति, भरतेश्वरादीना-मिव ।

भावार्थ—जो कोई जीव नवीन पुण्य कर्मके निमित्त भोगोंकी इच्छारूप निदान बन्धसे शुभ कर्म करता है वह पापानुबन्धी पुण्य कर्म बाँधता है, वह कर्मरूपी राजा भावी कालमें भोगोंको देता है, परन्तु निदानसे प्राप्त वे भोग रावणादिके समान नरकादिके दुःख परम्पराको प्राप्त करा देते हैं। जो कोई सम्यग्दृष्टी जीव होता है वह निर्विकल्प समाधिके न पानेपर असमर्थ होकर विषय कषायसे बचनेके लिए यद्यपि व्रत, शील, दान, पूजादि शुभ कर्म करता है तथापि भोगाकांक्षारूप निदान बन्धसे उस पुण्य कर्मको नहीं करता है। इससे वह पुण्यानुबन्धी पुण्यकर्म बाँधता है। वह पुण्यकर्म आगामी भवमें तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, बलदेव आदिका ऐश्वर्य देता हुआ उदय होता है। तौ भी पूर्वजन्ममें भाषित भेदविज्ञानको वासनाके बलसे विषयसुख बढ़ानेवाले भोगाकाक्षारूप निदान रूपके रागादि भावोको नही पैदा करता है। श्री भरतेश्वर आदिके समान।

मिथ्यात्व कर्मके उदय सहित जितने भाव हैं वे सब वास्तवमे अशुभ हैं। मन्द कषायरूप शुभ भावोसे यद्यपि असाता वेदनीयादि पाप प्रकृतियोका बन्ध न होकर साता वेदनीयादि पुण्य प्रकृतियोका बध होता है तथापि मिथ्यात्वका बन्ध अवश्य होता है। अतएव विष मिले सुन्दर भोजनके समान ये शुभ भाव भी वास्तव में अशुभ हैं। मिथ्यात्वीकी सर्व शुभ व अशुभ क्रिया मोक्षमार्गसे विपरीत है। इस लिए वह अशुभ कही गई है।

सराग सम्यग्दृष्टीके भी नीची श्रेणीमें कभी अशुभ लेश्यासे पाप कर्मका बंध होता है अशुभोपयोग हो जाता है। परंतु सम्यक्त्वके साथ होनेसे वह बाधक नहीं होता है। तीव्र कषायकी अपेक्षा अशुभ है, परन्तु सम्यक्त्व सहित होनेसे शुभ है।

तीसरा मिश्र भाव—मिश्र गुणस्थानमें होता है जहाँ सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, मिश्र मोहनीय कर्मका उदय होता है। यह भाव दधि गुड़के मिले स्वादके समान सत्य-असत्य श्रद्धानसे मिले हुए केवली गम्य भाव है, जो अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं ठहरता है। फिर वह जीव इन भावोसे या तो मिथ्यात्वमें आता है या फिर सम्यक्त्वमें चला जाता है। इससे यह तीसरे ही प्रकारके मिश्रभाव हैं। उनके होनेपर जो आस्रव

होता है वह मिश्रभाव कृत आस्रव है। यहाँ जिस अपेक्षासे गाथामें कहा है उसका भाव यह है कि मिथ्यात्व व सासादन गुणस्थानके सर्व भाव मिथ्यात्व व अनन्तानुबन्धी कषायके उदय सहित होनेसे अशुभ भाव है। तीसरे मिश्र गुणस्थानके भाव मिश्र है, चौथे अविरतसम्यक्त्वसे लेकर दशवें सूक्ष्मलोभ तक शुभ भावोंका सहयोग है जिनसे कर्मोंका आस्रव व बंध होता है। ग्यारह, बारह, तेरह गुणस्थानोंमें कषाय नहीं है, सांपरायिक आस्रव नहीं है। केवल ईर्यापथ आस्रव है। इससे एक समयकी स्थितिवाला कर्म बन्धता है। सातावेदनीयके आस्रव व बन्धकी अपेक्षा इसको भी शुद्ध भावसे ले सकते हैं। अतएव यह सिद्ध है कि आस्रवके कारण तीन ही प्रकारके भाव हैं—शुभ भाव, अशुभ भाव, मिश्रभाव। शुभ भावसे कर्मास्रव नहीं होता है। कर्मोंके आस्रव व बन्धमें योग व मोह कारण हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, रत्नत्रयधर्म आस्रव व बन्धका कारण नहीं है। ये भाव तो संवर निर्जराके ही कारण हैं। अतएव रत्नत्रय धर्मका भाव बढ़ाना चाहिये व रागद्वेष मोहका त्याग करना चाहिये, यह गाथाका तात्पर्य है।

पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें श्री अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं—

रत्नत्रयमिह हेतुर्निर्वाणास्यैव भवति नान्यस्य। आस्रवति यत्तु पुण्यं शुभोपयोगोऽयमपराध.॥ २२०॥

भावार्थ—रत्नत्रय तो निर्वाणका ही कारण है बन्धका कारण नहीं है, रत्नत्रयको साधते हुए जो पुण्य कर्मोंका आस्रव होता है वह शुभोपयोगका अपराध है।

---

२. मन, वचन, काय—तीन भाव

मनस्य चिंतनं कृत्वा, वचनं विपरीत उच्यते।
क्रमनं कृत मिथ्यात्वं, त्रिभंगी दल स्मृतं॥ ६॥

अन्वयार्थ—(मनस्य चिंतनं कृत्वा) मनमें विपरीत चिंतवन करना (वचन विपरीत उच्यते) विपरीत वचन बोलना (क्रमन कृत मिथ्यात्व) मिथ्यात्व सम्बन्धी आचरण कायसे करना (त्रिभगी दल स्मृत) ये मन, वचन, काय तीन आस्रवके बाधक कहे गये हैं।

भावार्थ—कर्म वर्गणाओंके आस्रव या बन्धके सन्मुख होनेका मूल कारण योग है। योगके दो भेद हैं—भावयोग और द्रव्ययोग। आत्माकी एक स्वाभाविक

शक्ति जो कर्म व नोकर्म पुद्गल वर्गणाओंको आकर्षण करती है उसको भावयोग कहते हैं। यह भावयोग वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशम या क्षयसे व शरीर नामकर्मके उदयसे काम करता है। जब चौदहवें अयोग गुणस्थानमें शरीर नामकर्मका उदय नहीं होता है तब यह भावयोग काम नहीं करता है। तब कोई भी पुद्गल वर्गणाएँ खिंचकर नहीं आती हैं। आत्माके प्रदेशोंका परिस्पंदन या हिलना सो द्रव्ययोग है। मन, वचन व कायका हलन-चलन आत्माके प्रदेश परिस्पन्दका निमित्त कारण है। जिस समय मन, वचन या कायसे कुछ भी काम होता है उसी समय आत्माके प्रदेश हिलते हैं व उसी समय भावयोग पुद्गलोंको खींच लेता है व बन्ध हो जाता है।

यदि कषाय भाव होता है तब सांपरायिक आस्रव होता है व स्थिति व अनुभाग पड़ता है। कषाय रहित उपशांतमोह, क्षीणमोह, सयोगकेवलीके केवल योगके कारण ईर्यापथ आस्रव सातावेदनीयका एक समयकी स्थिति सहित व बहु अनुभाग शक्ति सहित होता है, दूसरे समय उनकी निर्जरा हो जाती है। सत्तामें कर्म वास नहीं करता है। कषाय सहित योगको ही लेश्या कहते हैं। लेश्यासे पुण्य व पाप कर्मका बन्ध होता है। कषाय रहितके योग होनेसे शुक्ललेश्या मात्र कही जाती है। एक साथ मन, वचन, काय तीनो का काम नहीं होता है। एक योग एक समयमें काम करता है। योगोका पलटना शीघ्र हो जाता है। इन तीन योगोंके पन्द्रह भेद हैं—चार मनोयोग, चार वचनयोग, सात काययोग।

सत्य, असत्य, उभय, अनुभय चार मनोयोग हैं। सत्य, असत्य, उभय, अनुभय चार वचनयोग हैं। सत्यको मनसे विचारना व सत्य ही सहना सत्य मन व वचन है। असत्य ही विचारना व असत्य ही कहना असत्य मन व वचन हैं। सत्य व असत्य मिश्रितको विचारना व कहना उभय मन व वचन है। जिस किसी बातको सत्य या असत्य कुछ नही कह सकते वह विचार या वचन अनुभव है, जैसे उसने क्या कहा था।

औदारिक काय, औदारिक मिश्रकाय, वैक्रियिक काय, वैक्रियिक मिश्रकाय, आहारक काय, आहारक मिश्रकाय और कार्मण ये सात काय योग हैं। मनुष्य व तिर्यंचके पर्याप्त दशा में औदारिक व अपर्याप्त दशामें औदारिक मिश्र काययोग होता है। कार्मण व औदारिकके मिश्रको औदारिक मिश्र कहते हैं। देव व नारकीके पर्याप्त दशामें वैक्रियिक व अपर्याप्त दशामें वैक्रियिक मिश्र काययोग होता है। आहारक

समुद्घातके समय छठे गुणस्थानवर्ती मुनिके आहारक शरीर जब बनता है तब पर्याप्त दशामें आहारक काययोग व अपर्याप्त दशामें आहारक मिश्र भावयोग होता है। औदारिकके साथ आहारक मिश्र होता है। विग्रहगतिमें व केवली समुद्घातमें प्रतर द्वय व लोक पूर्णमें कार्मण योग होता है। जबतक यह जीव चौदहवें गुण-स्थानमें न पहुँचे अर्थात् सिद्धगतिके निकट न पहुँचे तबतक हर एक जागृत व सुप्त दशामें कोई न कोई योग होता ही है। कर्म या नोकर्मका आस्रव हुआ करता है। विग्रहगतिमें केवल कार्मण व तैजस वर्गणाओंका हो ग्रहण होता है। एकेन्द्रियके केवल काययोग होता है, द्वीन्द्रियसे असैनी पंचेन्द्रिय तक काय और वचन योग होता है, सैनी पंचेन्द्रियोंके काय, वचन, मन तीनो योग होते हैं। जन्म लेनेपर एक अन्त-र्मुहूर्त तक जीव अपर्याप्त रहता है, शरीर पर्याप्ति पूर्ण करनेपर पर्याप्त हो जाता है। हमें यह निश्चय करना चाहिये कि मन, वचन, कायका हलन-चलन कर्मोंके आस्रव व बन्धका मूल कारण है। जब मंद कषाय सहित मन, वचन, कायका परि-णमन होता है तब उसको शुभयोग कहते हैं। जब तीव्र कषाय सहित मन, वचन, कायका परिणमन होता है तब उसे अशुभयोग कहते हैं। शुभयोगसे सातावेदनीय, उच्चगोत्र, शुभ नाम व शुभ आयुका आस्रव होगा। अशुभयोगसे असातावेदनीय, अशुभ नाम, नीच गोत्र व अशुभ आयुका आस्रव होगा। यद्यपि चार घातीय कर्म अशुभ हैं तथापि उनका आस्रव कषाय सहित शुभ या अशुभयोग दोनोसे होगा। जब मंद कषायरूप शुभयोग होगा तब चार घातीय कर्ममें स्थिति व अनुभाग कम पड़ेगा, अशुभयोगमें स्थिति व अनुभाग अधिक पड़ेगा।

कर्म सिद्धांतकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टिको भी शुभ योग होकर पुण्यका बन्ध होता है। मोक्षमार्गकी अपेक्षा जिसको सम्यग्दर्शन नहीं है उसका सर्व ही मन, वचन, कायका परिणमन मोक्षमार्गमें बाधक होनेसे अशुभ ही है। यहाँ गाथामें मिथ्यात्व सहित मन, वचन, कायके वर्तनको त्रिभंगी दलमें लिया है। क्योंकि मिथ्यादृष्टिके ही ससारका कारणीभूत बन्ध होता है। तथा मिथ्यादृष्टीका सर्व ही मन, वचन, कायका वर्तन अज्ञानपूर्वक होता है। जब कि सम्यक्त्वीका सर्व ही मन, वचन, कायका वर्तन ज्ञानपूर्वक होता है। सम्यक्त्वी मोक्षमार्ग पर आरूढ़ है। उसकी गाढ़ रुचि स्वाधी-नताके लाभकी ओर है या अनन्त सुखकी प्राप्ति पर है। सम्यक्त्वी कर्मोंके उदयवश मन, वचन, कायका वर्तन करता है। सम्यक्त्वी भीतरसे यही चाहता है कि मैं

निरन्तर स्वानुभव में ही मगन रहूँ। मन, वचन, कायसे कोई काम न करूँ। इसलिये जलमें कमलके समान अलिप्तका मन, वचन, काय विपरीत नहीं होता है, किसी योग्य व न्यायोचित प्रयोजनवश होता है। इसलिये उसका वर्तन विशेष निर्जराका कारण है व अल्पबन्धका कारण है। समयसारकलश में कहा है—

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ता सर्वे भावा भवन्ति हि। सर्वेऽप्यज्ञाननिर्वृत्ता भवन्त्यज्ञानिनस्तु ते ॥ २२-३ ॥

भावार्थ—ज्ञानी सर्व ही भाव ज्ञानसे रचे हुए होते हैं जब कि अज्ञानीके सर्व ही भाव अज्ञानसे बने हुए होते हैं।

अशुभ मन होनेपर परकी हानिको विचारता है, ईर्षाभाव रखता है, क्रोधकी तीव्रता, मानकी तीव्रता, मायाकी तीव्रता व लोभकी तीव्रतासे जुआ, मांस, मदिरा, चोरी, शिकार, वेश्यागमन, परस्त्रीगमन, असत्य भाषण, कुदेव, कुगुरु, कुधर्म सेवनका विचार करता है। इन्द्रियोंके विषयोंकी लोलुपतावश इष्टमें रागभाव व अनिष्टमें द्वेषभावका विचार करता है। अशुभ वचनसे असत्य, कठोर, मर्म-छेदी, पाप प्रचारक विषयोंमें रंजायमान व लीन करनेवाला व अहंकारका व परनिंदाका वचन बोलता है। परकी हानि हो ऐसी बातें बनाता है। परको ठगनेका जाल रचता है।

अशुभ कायसे वध बन्धन करता है, चोरी करता है, परस्त्रीसेवन करता है, अशुभ कार्योंमें कायको लगाता है।

शुभ मन, वचन, कायके द्वारा ऊपरसे विरोधी शुभ भावना करता है, परका उपकार करता है, सत्य व मिष्टवचन बोलता है, दया धर्म पालता है, जप-तप करता है, धर्मके पाठ पढ़ता है। तीर्थयात्रा करता है, परके हितमें शक्ति लगाता है। मिथ्यादर्शन सहित मुनिव्रत भी पालता है। मिथ्यात्व सहित मन, वचन, कायकी सर्व शुभ व अशुभ क्रियाएँ विपरीत हैं, संसारवर्द्धक हैं। सम्यक्त्व सहित सर्व मन, वचन, कायकी क्रियाएँ भी यदि अशुभ हो तो पाप व शुभ हो तो पुण्य बन्ध कारक हैं तथापि अनन्तानुबन्धी कषायके अभावसे संसारवर्द्धक नहीं है। प्रयोजन यह है कि मिथ्यात्वको उगल कर फेंक देना चाहिये। सम्यक्त्वपूर्वक भी मन, वचन, कायका वर्तन जहाँतक होगा कर्मका आस्रव होगा। अतएव इनका निरोध करके तीन गुप्ति पाल कर अपने शुद्धात्माकी गुफामें बैठकर स्वानुभव करना योग्य है। वीतरागता जितनी अधिक होगी उतना आस्रव कम रहेगा। तत्त्वार्थसारमें श्री अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं—

कायवाङ्मनसा कर्म स्मृतो योगः स आस्रव । शुभ पुण्यस्य विज्ञेयो विपरीतश्च पाप्मनः ॥ २-४ ॥
सरसः सलिलावाहिद्वारमत्र जनैर्यथा । तदास्रवणहेतुत्वादास्रवो व्यपदिश्यते ॥ ३-४ ॥
आत्मनोऽपि तथैवैषा जिनैर्योगप्रणालिका । कर्मास्रवस्य हेतुत्वादास्रवो व्यपदिश्यते ॥ ४-४ ॥

भावार्थ—मन, वचन, कायका वर्तना योग है वही आस्रव है। शुभ योग पुण्यका व अशुभ योग पापका आस्रव करता है। जैसे सरोवरमें पानीके आनेके द्वारसे पानी आता है वैसे मन, वचन, कायके कार्यसे कर्मोंका आस्रव होता है। आत्माको जो योगोंके चञ्चल होनेकी मोरी है उसीसे कर्मोंका आस्रव होता है इसी योगको आस्रव कहते हैं। समयसारकलशमें श्री अमृतचन्द्रसूरि कहते हैं—

अध्यास्य शुद्धनयमुद्धतबोधचिह्नमैकाग्र्यमेव कलयंति सदैव ये ते।
रागादिमुक्तमनसः स ततं भवन्तः पश्यंति बन्धविधुरं समयस्य सारम् ॥ ८-४ ॥

भावार्थ—जो मन, वचन, कायको रोककर आत्मज्ञानको देनेवाले शुद्ध निश्चयनयका आलम्बन लेकर स्वरूपमें एकाग्र हो जाते हैं वे निरंतर रागादि भावोंसे रहित होते हुए बन्ध रहित शुद्ध समयसार या शुद्धात्माका अनुभव करते हैं।

---

३. कृत, कारित, अनुमति—ये तीन भाव

कृतं असुद्ध कर्मस्य, कारितं तस्य उच्यते।
अनुमतिं तस्य उत्पाद्यन्ते, त्रिभंगी दल उच्यते ॥ १० ॥

अन्वयार्थ—(असुद्ध कर्मस्य कृत) **शुद्धोपयोगसे विरुद्ध अशुद्ध कामको स्वयं करना कृत है** (तस्य कारित उच्यते) **अशुद्ध कामको दूसरेसे कराना कारित है** (अनुमतिं तस्य उत्पाद्यन्ते) **अशुद्ध काममें सम्मति देना या सराहना करनी अनुमोदना है** (त्रिभंगी दल उच्यते) **इसको आस्रवका त्रिभंगी समूह कहा जाता है।**

भावार्थ—शुद्धोपयोगमें रमण करना ही आत्माका स्वहित है—संवरका कारण है, इससे छूटकर अशुद्धोपयोग हो जाता है, चाहे शुभ हो या अशुभ हो। क्रोध, मान, माया, लोभके वशीभूत होकर यह प्राणी बहुतसे कामोंको स्वयं करता है, बहुतसे कामोंको दूसरोंसे कराता है, बहुतसे कामोंमें सम्मति देता है व दूसरोंके द्वारा किये गये कामोंकी प्रशंसा करता है। तीनों ही तरहसे कर्मोंका आस्रव होता है यह न समझना चाहिये कि स्वयं करनेसे अधिक होगा, कराने व अनुमोदनासे कम होगा। ऐसा कोई नियम नहीं है, जिस किसी, कृत, कारित व अनुमतिमें कषायभाव अधिक

होगा वहाँ अधिक आस्रव होगा। कषायभाव कम होगा वहाँ कम आस्रव होगा। कषायकी तीव्र व मदता पर अधिक व कम आस्रव निर्भर है।

एक राजा घरमें बैठा है। स्वयं युद्ध नहीं करता है, परंतु वह युद्ध कराता है, उसकी आज्ञासे ही युद्ध होता है। उसको ही युद्धका बड़ा उत्साह है। इसलिये वह करनेवालोसे अधिक पापका बन्ध करेगा। युद्ध करनेवाले यदि यह भाव रखते हैं कि हमारी स्वयं इच्छा इस युद्ध करनेकी न थी, परंतु राजाज्ञाको पालना पड़ता है तो करनेवाले योद्धाओंको राजाओकी अपेक्षा कम बन्ध पड़ेगा। तीसरा एक मानव है, जो केवल युद्धकी बात सुनता है। सुनकर बड़ा ही रंजायमान होता है। युद्ध करानेवाले राजासे अधिक कषाय यदि अनुमोदना करनेवालोमें होगी तो वह अनुमतिके कारण राजासे भी अधिक पापबध करेगा। हिंसा करनेवाला, करानेवाला व सम्मति देनेवाला तीनो हिंसक हैं। यदि कषाय समान होगी तो समान बन्ध होगा, कम व अधिक होगी तो कम व अधिक बन्ध होगा। अशुभ कार्योंको न तो करना चाहिये, न कराना चाहिये, न उनकी सम्मति देनी चाहिये, न सराहना करनी चाहिये। हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील व परिग्रहका संग्रह ये पाँच पाप अशुभ हैं। इनको न करना चाहिये, न कराना चाहिये, न इनकी अनुमोदना करनी चाहिये।

शुभ कार्योंको—दया, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग इन पाँच व्रतोंको करना, कराना व अनुमोदना करनेसे पुण्यका आस्रव होगा। व्यवहारमें सदा ही शुभ कार्योंको ही करना चाहिये व कराना चाहिये व उनमें ही सम्मति देनी चाहिये। शुभ कार्योंका होना सुनकर हर्ष मानना चाहिये। इससे पुण्यका बन्ध होगा। एक सामायिक करता है, दूसरा सामायिक कराता है, तीसरा केवल सराहना करता है, तीनो धर्मात्मा है। हमें निरन्तर शुभ भावना रखनी चाहिये। शुभ सम्मति देनी चाहिये। शुभ कार्योंकी अनुमोदना करनी चाहिये।

एक मुनिको दान देता है, एक देनेवालेकी प्रशंसा करता है, दोनों समान पुण्यबन्ध कर सकते हैं, वे असमान भी कर सकते हैं। यदि दातारकी अपेक्षा प्रशंसाकारकके भावोमें दानसे गाढ़ प्रीति है, दातारसे अधिक रुचि व श्रद्धा है तो दातारसे अधिक पुण्य प्रशसकको होगा।

कृत, कारित, अनुमति तीनो ही शुभ व अशुभ कार्यास्रवके कारण हैं, ऐसा

जानकर अशुभसे बचकर शुभमें वर्तना ठीक है। हमें निरन्तर यह भावना रखनी चाहिये—

"शास्त्राभ्यासो जिनपदरुचि संगति सर्वदार्यै., सद्वृत्ताना गुणगणकथादोषवादे च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे, संपद्यता मम भवभवे यावदेतेऽपवर्ग"॥

भावार्थ—जबतक मोक्षका लाभ न हो तबतक हमको नीचे लिखी सात बातें भव भवमें प्राप्त हो—(१) शास्त्रोंका अभ्यास, (२) जिनपद भक्ति, (३) सदा सत्पुरुषोंकी संगति, (४) सुचारित्रवानोके गुणोकी कथा करना, (५) दोषोके कहनेमें मौन रखना, (६) सबसे प्यारे हितकारी वचन कहना, (७) आत्मतत्वमें भावना रखनी। चार भावनाएँ भी सदा भाना चाहिये :—

सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदम्, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभाव विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव॥

भावार्थ—हे देव! मेरी आत्मामें सर्व प्राणियोंकी तरफ मैत्रीभाव रहे, गुणवानोंकी तरफ प्रमोदभाव या आनन्दभाव रहे, दुःखो जीवोंपर करुणाभाव रहे, विपरीत स्वभाववालो पर माध्यस्थभाव या उदासीनभाव रहे।

अहिंसातत्त्वकी भूमिकापर चलकर शुभ कार्योंको करना, कराना व उनकी अनुमोदना करनी चाहिये।

जहाँ कृत, कारित व अनुमतिका कोई विकल्प नहीं है, केवल निर्विकल्प स्वानुभव है वहाँ आस्रवका अभाव है या गुणस्थानापेक्षा अल्प बन्ध है। ज्ञानीकी भावनाका वर्णन समयसारकलशमें कहा है—

कृतकारितानुमननैस्त्रिकालविषय मनोवच कायै ।परिहृत्य कर्म सर्वं परम नैष्कर्म्यमवलम्बे॥३२-१०॥

भावार्थ—मैं कृत, कारित, अनुमोदनासे मन, वचन, कायके द्वारा सम्पादित भूत, भविष्यत, वर्तमान सम्बन्धी सर्व कर्मोंको त्याग कर अर्थात् सर्वसे नाता तोड़कर एक कर्म करनेके विकल्पसे रहित परम शुद्ध चैतन्यभावका आलम्बन लेता हूँ। यही ज्ञानीका कर्तव्य है।

---

४. कुमति, कुश्रुत, कुअवधि—ये तीन भाव

कुन्यानं त्रिविधिं प्रोक्तं, जिह्वा अग्रेन तिष्ठते।
छाया त्रि उवंकारं, मिथ्यादृष्टि तत्परं॥ ११॥

कुमतिं कृत्वा मिथ्यात्वं, कुश्रुतं तस्य पस्यते।
कुअवधि तस्य दिष्टन्ते, मिथ्या माया विमोहितं ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ—(कुन्यान त्रिविध प्रोक्त) **कुज्ञान तीन प्रकारका कहा गया है** (मिथ्यादृष्टि तत्पर) **मिथ्यादर्शन सहित ज्ञानको कुज्ञान कहते हैं** (छाया त्रि) **तीन कुज्ञानकी छाया सहित** (ऊवकार) **ॐ मन्त्रका जाप** (जिह्वा अग्रेन तिष्ठते) **जबानके ऊपर रहता है, भाव भासना भीतरमें नहीं होती है** (मिथ्यात्व कृत्वा कुमतिं) **पहला कुज्ञान मिथ्यादर्शन सहित कुमतिज्ञान है** (तस्य कुस्रुतं पस्यते) **इसी मिथ्यादृष्टिके शास्त्र-ज्ञान कुश्रुत देखा जाता है** (तस्य कुअवधि दिष्टन्ते) **मिथ्यादृष्टीके ही कुअवधिज्ञान देखा जाता है** (मिथ्या माया विमोहित) **ये तीनों ज्ञान मिथ्यात्वभावसे तथा मायाचारसे मोहित हैं, विपरीत हैं।**

भावार्थ—पाँच इंद्रिय तथा मनसे होनेवाले सीधे ज्ञानको मतिज्ञान कहते हैं। जैसे हाथसे छूकर ठंडा, गरम, रूखा, चिकना, हलका, भारी, नर्म, कठोर पदार्थको जानना। जिह्वासे चखकर खट्टा, मीठा, चर्परा, कड़वा, कषायला पदार्थ जानना। नाकसे सूँघकर सुगन्ध, दुर्गन्धमई पदार्थको जानना। आँखोंसे देखकर सफेद, लाल, पीले, काले, नीले पदार्थको जानना। कानोंसे सुनकर अनेक प्रकारके शब्दोंको जानना। मन द्वारा किसी नूतन विचारका ग्रहण करना। यह सब मतिज्ञान है। मतिज्ञान द्वारा जाने हुए पदार्थके द्वारा दूसरे पदार्थको जानना श्रुतज्ञान है। जैसे चिकने पदार्थ-को जानकर यह घी दूधसे बनता है, दूध गाय भैंसोका होता है, गाय, भैंस चारा खाकर दूध देती हैं। जिह्वासे मिष्ट पदार्थको जानकर यह मिठाई अमुक-अमुक पदार्थसे बनी है, अमुकसे बनाई जाती है, चार पहरके भीतरकी है। कानसे बालकका शब्द सुनकर बालवयधारी पुरुषका ज्ञान करना श्रुतज्ञान है। मतिपूर्वक श्रुतज्ञान होता है। यह श्रुतज्ञान अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक दो प्रकारका होता है। किसी भी इन्द्रियसे किसी पदार्थको जानकर इसके पीछे दूसरा भाव होना सो अनक्षरात्मक है। जैसे चींटीको सुगन्धका ज्ञान मतिज्ञानसे हुआ, फिर वह उस पदार्थको ग्रहण करनेका विकल्प करती है यह श्रुतज्ञान है। पुष्पको मतिज्ञानसे जानकर उससे मधु लेकर छत्तेमें जमा करनेका ज्ञान श्रुतज्ञान है। वृक्षको तोड़ते हुए कठोर स्पर्शका ज्ञान मतिज्ञान है। फिर दुःखका अनुभव होना श्रुतज्ञान है। कानोंसे अक्षर सुनकर व आँखोंसे देखकर मन द्वारा उसके अर्थ या भावका जानना सो अक्षरात्मक

श्रुतज्ञान है। यह मनधारी सैनी पंचेन्द्रियको ही होता है। मति व श्रुतसे ज्ञान सर्व ही संसारी जीवोंको साधारण रूपसे होते हैं। असैनी पंचेन्द्रिय तकको ये दोनों ज्ञान कुमति व कुश्रुत ही होते हैं। क्योंकि उनको सम्यक्त्व होनेकी व आत्मा व अनात्मा-को पहचाननेकी योग्यता नहीं है। उनके अज्ञान मिथ्यादर्शन सहित मति व श्रुतज्ञान होते हैं। सैनी पंचेन्द्रियके जब मिथ्यादर्शनका उदय होता है तबसे कुज्ञान कहलाते हैं। सम्यग्दर्शनके साथमें सुज्ञान कहलाते हैं। मिथ्यात्वकी दशामें प्रगट पदार्थको ठीक जानते हुए जैसे कपड़ेको कपड़ा जानते हुए भी उस कपड़ेके सम्बन्धमें तीन विप-र्यय भाव होते हैं–(१) कारण विपर्यय जैसे—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुके परमाणु भिन्न-भिन्न हैं। एक पुद्गल जातिकी पर्याय नहीं है या यह सब जगत ब्रह्ममय है। ब्रह्म ही उपादान कारण है। (२) भेदाभेद विपर्यय—कारणसे कार्यको सर्वथा भिन्न ही मानना या सर्वथा अभिन्न ही मानना। जैसे गेहूँसे रोटी बनी। तब पर्यायकी अपेक्षासे रोटी गेहूँसे भिन्न है परन्तु द्रव्यकी अपेक्षा वही है ऐसा न मानकर एक ही बात मानना। एक मनुष्य जीव मरकर देव हुआ वहाँ पर्याय अपेक्षा वह भिन्न है, जीवकी अपेक्षा वही है, ऐसा न मानकर सर्वथा एक ही मानना या भिन्न ही मानना। (३) स्वरूप विपर्यय—रूपादिक विज्ञान मात्र है, किसी पुद्गल जड़ पदार्थका गुण नहीं है। जीव पृथक् नहीं है, ब्रह्मका ही अंश है।

मिथ्यादृष्टीका भीतरी अभिप्राय संसार वासना है। उसके भीतरमें आत्मा-नन्द रसका स्वाद नहीं है। वह संसारमें लिप्त है, अतएव मतिज्ञानसे पदार्थोंको जानकर इष्ट पदार्थोंमें राग व अनिष्टमें द्वेष करके मोही हो जाता है। स्त्री-पुत्रादि धन-धान्यमें तन्मय हो जाता है। इष्ट पदार्थोंके लाभके लिये न्याय-अन्यायको नहीं गिनता है। पर पदार्थोंमें अहंकार ममकार रखता है, जब कि सम्यग्दृष्टीकी अहंबुद्धि अपने शुद्ध आत्माके स्वरूपमें ही होती है। वह किसी भी पर पदार्थको अपना नहीं मानता है। भीतरसे सच्चा वैरागी होता है। आत्मानुभवकी शक्ति मिथ्यादृष्टीको नहीं होती है, इसलिये उसका सर्व मति व श्रुतज्ञान कुमति व कुश्रुतज्ञान कहलाता है।

यदि वह ॐ का जाप भी करता है व ध्यान भी करता है तो भी वह उसके भावोंको नहीं पहुँचता है। उसका यह सम्यग्ज्ञान नहीं होता है कि मन्त्र अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधुका वाचक है। तथा वे पाँचों परमेष्ठी आत्मानन्द-

के कारण व आत्मानुभवके कारण पूज्यनीय हैं। इनके आत्माका सच्चा स्वरूप ज्ञान नहीं पाता हुआ ॐ के ध्यानसे आत्मध्यानका लाभ नहीं करता है। मन्त्र व जपसे केवल पुण्य बांध लेता है। इसलिये कुज्ञानीका ध्यान संसारका ही कारण है। अनेक शास्त्रोंका ज्ञान भी मिथ्यात्वीके मान, माया, लोभ बढ़ानेका कारण हो जाता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी मर्यादापूर्वक कम या अधिक रूपी पुद्गल या ससारी जीवोंकी बातोको जिस ज्ञानसे प्रत्यक्ष आत्मासे बिना मनकी व इन्द्रियकी सहायतासे जाना जावे वह अवधिज्ञान है। स्थूल व सूक्ष्म द्रव्यको जानना, कितनी दूर तककी जानना, कितने काल तककी जानना, कितना गुण जानना सो कम व अधिक मर्यादारूप ज्ञान अवधिज्ञानधारीको होता है। यह ज्ञान कम व अधिक अनेक प्रकारका होता है। नारकियोंको व देवोंको जन्मसे होता है। तिर्यंच या मनुष्योको किसी किसीको तप आदिके द्वारा हो जाता है। अवधिज्ञानसे अपने व दूसरोंके पिछले व अगले जन्मकी बातोका ज्ञान हो सकता है। इसके तीन भेद हैं—देशावधि, परमावधि, सर्वावधि। देशावधि ज्ञान सर्वको हो सकता है। शेष दो ज्ञान तद्भव मोक्षगामी साधुओंके ही होते हैं। मिथ्यादृष्टीके कुअवधि ज्ञान कहलाता है। वही ज्ञान सम्यग्दृष्टीके सुअवधि कहलाता है। कारण यही है कि मिथ्यादृष्टी ज्ञानका फल विपरीत लेता है। वह इष्ट विषयोकी प्राप्तिसे राग व अनिष्ट विषयोसे द्वेषभाव रखता है। इसलिये सम्यग्दृष्टीके समान ठीक जानते हुए भी उसके ज्ञानको कुअवधिज्ञान कहते हैं। इन तीन कुज्ञानोंको होते हुए मिथ्यात्व व अनन्तानुबन्धी कषायोंके उदयके कारण इस जीवको कर्मोंका आस्रव विशेष होता है। क्योकि ज्ञानके मिथ्यात्वका मिश्रण उसी तरह है जैसे निर्मल जलके साथ विष मिला दिया जावे। ज्ञान तो आत्माके गुणका विकास है, इससे ज्ञान बन्धका कारण नहीं है किन्तु ज्ञानके साथ मोहका जितना उदय है वही केवल बन्धका कारण है।

श्री समन्तभद्राचार्यने आप्तमीमांसामें कहा है—

अज्ञानान्मोहनो बन्धो नाऽज्ञानाद्वीतमोहत: । ज्ञानस्तोकाच्च मोक्ष: स्यादमोहान्मोहिनोऽन्यथा ॥९८॥

भावार्थ—अज्ञानसे बन्ध मोहके कारणसे कहा है। यदि मोहका उदय अज्ञानके साथ न हो तो बन्ध नहीं होता है। जैसे क्षीणमोह गुणस्थानमें केवलज्ञान न होनेसे अज्ञान है तथापि मोह नहीं है इनसे सांपरायिक आस्रव नहीं है। मोह रहित यदि हो तो थोड़े श्रुतज्ञानसे ही केवलज्ञान हो जाता है। यदि बहुत भी ज्ञान हो और

मोही हो तो केवलज्ञान नहीं होता है । अतएव तीनों कुज्ञानोको सुज्ञानोंमें बदलनेके लिये मिथ्यात्वरूपी विषको वमन करना चाहिये । मिथ्यात्वके दमनका उपाय जिनवाणीके द्वारा तत्त्वोंका मनन है । समयसारकलशमें कहा है—

उभयनयविरोधध्वसिनि स्यात्पदाङ्के । जिनवचसि रमन्ते ये स्वय वान्तमोहाः ॥
सपदि समयसार ते पर ज्योतिरुच्चैरनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव ॥ ४-१ ॥

भावार्थ—निश्चय व व्यवहार नयके विरोधको मेटनेवाली स्याद्वादसे चिह्नित जिनवाणीमें जो रमण करते हैं उनका मोह मिथ्यात्व स्वयं वमन हो जाता है, तब वे शीघ्र शुद्धात्माका अनुभव कर लेते है जो आत्मा परम ज्ञानमयी ज्योतिस्वरूप है व सदासे है व किसी युक्तिसे इसका निषेध नही किया जा सकता है ।

---

५. आर्त्त, रौद्र, मिश्र—ये तीन भाव

आर्त्तध्यानरतो भावं, रौद्रध्यानसमाजुतं ।
मिस्रस्य रागमय मिथ्या, त्रिभंगी नरयं पतं ॥ १३ ॥

अन्वयार्थ— (आर्त्तध्यानरतो भाव) आर्त्तध्यानमें लीन भाव (रौद्रध्यानसमाजुतं) रौद्रध्यान सहित भाव (मिस्रस्य रागमय मिथ्या) आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान दोनोंका मिश्रित रागभाव मिथ्यादर्शन सहित होना मिश्रभाव है (त्रिभंगी नरय पत) ये तीनों नरकमें गिरानेवाले हैं ।

भावार्थ—यहाँ भी मिथ्यादृष्टीकी अपेक्षा तीन भाव आस्रवके कारण बताये हैं । प्रथम आर्त्तध्यान—जहाँ दुखित, आकुलित, क्षोभित, शोकार्त परिणाम हो उसको आर्त्तध्यान कहते है । बहुत देरतक एक विषयकी चिंता करना ही ध्यान है । यह आर्त्तध्यान चार कारणसे होता है, इसलिये इसके चार भेद हैं—

(१) अनिष्ट संयोगज—मनको अप्रिय स्थान, वस्त्र, भोजन, स्त्री, पुत्र, नौकर, आभूषण, शत्रु आदिका संयोग होनेपर उससे छुटकारा पानेकी चिंतामें दुःखित होना । (२) इष्टवियोगज—मनको प्रिय स्त्री, पुत्र, मित्र, भोजन, वस्त्र आदिका वियोग हो जानेपर उनके सयोगकी कामना करके चिंता करते हुए दुःखित होना । (३) वेदना जनित—रोगोंके होनेपर पीड़ाके कारण चिंतातुर होना । (४) निदानज—आगामी भोगोंके मिलनेकी तृष्णासे आकुल भाव रखना ।

ये चारों आर्त्तध्यान मिथ्यादृष्टीके भीतर बहुत गाढ़ होते हैं, तीव्र होते हैं ।

उससे मिथ्यात्वी जीव कभी नरक आयु बाँधकर नारकी हो जाता है। यदि तीव्रता कम होती है तो तिर्यंच आयु बाँधकर तिर्यंच हो जाता है। इष्टवियोग आर्त्तध्यान-के कारण दूसरे स्वर्गके देव एकेन्द्रिय तिर्यंच व बारहवें स्वर्ग तकके देव पचेन्द्रिय तिर्यंच हो जाते हैं। लक्ष्मण रामचन्द्रजीका मरण सुनकर तीव्र आर्त्तध्यानसे नरकायु बाँधकर नर्क चले जाते हैं। ज्ञानीको वस्तुस्वरूप विचार कर, कर्मोंके उदयको समझ-कर सन्तोष रखना चाहिये। विषय भोगोंकी लालसा ज्ञानीको होती है, इसलिये वह निदान नहीं करता है। यद्यपि वह आर्त्तध्यान मिथ्यादृष्टीको ही मुख्यतासे होता है तथापि गृहस्थके अविरत सम्यक्त्व व देशविरत गुणस्थानमें भी कदाचित् हो जाता है। मुनिराजके छठे गुणस्थानमें भी निदानके सिवाय तीन आर्त्तध्यान शिष्यके वियोग-पर व अनिष्ट स्थानादिके लाभपर या रागादिके कारण हो जाते हैं।

रुद्र, क्रूर, दुष्ट आशयसे जहाँ चिन्ता किसी एक दुष्ट अभिप्रायमें प्रवर्ते उसको रौद्रध्यान कहते हैं। यह ध्यान चार कारणोंकी अपेक्षासे होता है, इसलिये इनके भी चार भेद हैं—

(१) हिंसानन्दी—हिंसा करने, करानेमें व सम्मति देनेमें आनन्दित होना। मिथ्यादृष्टी जीव स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है इसलिये तीन कृष्ण लेश्यासे परकी हानि करनेका दुष्ट विचार करता रहता है। (२) मृषानन्दी—असत्य बोलकर, बुलवाकर व सम्मति देकर प्रसन्न होना। मिथ्यादृष्टी मन, वचन, कायकी कुटिलता-से वर्तकर अपना स्वार्थ साध्य करके झूठका जाल बिछाकर पर प्राणियोको फाँस लेता है। वह अपनी इस चतुराईसे बड़ा प्रसन्न होता है। (३) चौर्यानन्द—चोरी करके, कराके व सम्मति देके आनन्द मानना। मिथ्यादृष्टी धनका लोलुपी विश्वास-घात करता है, जिसतरह बने परकी सम्पत्तिको हर लेनेमें सन्तोष मानता है। (४) परिग्रहानन्दी—परिग्रह बढ़ानेमें, बढ़वानेमें व बढ़ती हुई देखकर आनन्द मानना। मिथ्यादृष्टी धनादिका तीव्र मूर्च्छावान होता है अतएव धनसंग्रहमें व धनकी रक्षामें इतना मगन होता है कि धर्म, परोपकार, दानादि कर्मको भूलकर केवल धनकी बढ़तीमें ही उन्मत्त रहता है।

इसतरह चार प्रकारका रौद्रध्यानका करनेवाला मिथ्यादृष्टी तीव्र अशुभ भावोसे नर्क आयु बाँधकर नारकी जन्मता है। मिथ्यात्वके चले जानेपर भी यह ध्यान चौथे, पांचवें गुणस्थानमें भी कभी हो जाता है। जब कभी न्यायकी रक्षार्थ

गृहस्थको अन्यायी व दुष्टको व शत्रुको दमन करना पड़ता है तब वहाँ हिंसा, असत्य व चोरीका उपयोग करना पड़ता है। तथा इन प्रयोगोंसे यदि शत्रुका दमन हो जाता है तो परिणामोंमें कुछ कालके लिये हर्ष आ जाता है अथवा धनादिको न्यायपूर्वक कमाते हुए व रक्षा करते हुए कभी-कभी प्रफुल्लित भाव हो जाता है। साधुओंके परिग्रह नहीं है, न आरम्भी हिंसाका कोई काम है। इसलिये छठे प्रमत्त गुणस्थानमें रौद्रध्यान बिलकुल सम्भव नहीं है। यहाँपर मिथ्यात्वकी अपेक्षा हीसे कथन है।

आर्त्त-रौद्रका मिश्र ध्यान भी नीचे लिखे दृष्टान्तोंमें सम्भव है जैसे कोई किसीकी हिंसा करना चाहता है, हिंसा करनेका प्रयत्न करते वह बच गया, अपनी हिंसा हो गई तब हिंसानन्द रौद्रध्यानके साथ अनिष्ट संयोगज आर्त्तध्यान हो जाता है। इसी तरह मृषा बोलकर कार्य सम्पन्न करना चाहता था व चोरी करके धन लेना चाहता था व परिग्रह बढ़ाना चाहता था परन्तु असफलता होनेपर शोक करता है, यह रौद्रध्यान मिश्रित आर्त्तध्यान है। परिग्रह बढ़ानेके लिए आगामी सम्पत्तिकी तीव्र अभिलाषामें ही दोनों ध्यान मिश्रित हैं।

इस तरह यह रौद्रध्यान, आर्त्तध्यान व मिश्रध्यान ये तीनों कुध्यान संसारके भीतर भ्रमण करानेवाले हैं, तीव्र आस्रवके कारण भाव हैं, हिंसाके मूल हैं, परको दुःखकारी व आपको दुःखकारी हैं। जहाँ दुःखकारी भाव होते हैं वहाँ तीव्र असाता-वेदनीय कर्मका भी बन्ध होता है। अतएव जो प्राणी संसारके भीतर रहते हुए दुःखोंसे बचना चाहते हैं उन्हें इन खोटे ध्यानोंसे बचना चाहिये। व सर्व जनहित भाव धारण करके परहितमें दयाभावसे वर्तना चाहिये। सारसमुच्चयमें कुलभद्राचार्य कहते हैं—

मानस्तंभ दृढं भक्त्वा लोभाद्रिं च विदार्य वै। मायावल्लीं समुत्पाट्य क्रोधशत्रुं निहत्य च ॥ १९४ ॥
यथाख्यातं हितं प्राप्य चारित्रं ध्यानतत्परः। कर्मणां प्रक्षयं कृत्वा प्राप्नोति परमं पदम् ॥ १९५ ॥

भावार्थ—जो ज्ञानी हैं वे मानके दृढ़ खम्भेको तोड़कर, लोभके पर्वतको चूर्णकर, मायाकी बेलको उखाड़कर, क्रोध-शत्रुको मारकर, हितकारी यथाख्यात-चारित्रको प्राप्त करके ध्यानमें लीन होकर कर्मोंको क्षय करके परमपदको पाते हैं। चारों कषायोंको जीतनेसे आर्त्त-रौद्रध्यान नहीं होते हैं।

---

६. मिथ्या समय, समय मिथ्या, प्रकृति मिथ्या—ये तीन भाव

मिथ्या समयं च सम्पूर्णं, समय मिथ्या प्रकासए।
अनृतं ऋतं जानाति, प्रकृति मिथ्या निगोद ये ॥ १४॥

अन्वयार्थ—(मिथ्या समय च सम्पूर्णं) मिथ्या अगमसे पूर्ण मिथ्या समय है (समय मिथ्या प्रकासए) जो मिथ्या आगम मिथ्या पदार्थको प्रकाश करता है वह पदार्थ समय मिथ्या है (अनृत ऋत जानाति) तब असत्यको सत्य जानकर मिथ्यात्व प्रकृतिवाला हो जाता है या मिथ्यात्व प्रकृतिको बांध लेता है (प्रकृति मिथ्या निगोद ये) मिथ्यात्वकी प्रकृतिके उदयवश निगोदमें जाकर साधारण वनस्पति एकेन्द्रिय हो जाता है ।

भावार्थ—मिथ्या आगम, मिथ्या पदार्थ, मिथ्या ज्ञान—ये तीनों त्यागने योग्य हैं । इनकी सगतिसे मिथ्यात्व प्रकृतिका बन्ध हो जाता है व एकेन्द्रिय साधारण नामकर्मका बन्ध पड़ता है इससे एक पंचेन्द्रिय मानव मरकर एकेन्द्रिय निगोद पर्यायमें जन्म प्राप्त कर लेता है ।

(१) मिथ्या समय—जिस शास्त्रका वक्ता रागी, द्वेषी व अल्पज्ञ होगा व एकान्तदृष्टि रखनेवाला होगा वह शास्त्र मिथ्याशास्त्र है। जहाँ हिंसामें धर्म बताया हो, पशुबलिकी पुष्टि हो, विषयभोगमें धर्म समझाया हो व देव मूढ़ता, गुरु मूढ़ता, लोक मूढ़ताको पुष्ट किया हो, वृक्ष, जल, अग्नि, सूर्यकी पूजा बताई हो, पाखण्डी गुरुकी भक्ति दरशायी हो, सतीका अग्निमें जलना बताया हो, आत्माकी सत्ताका निषेध किया गया हो, आत्माका स्वरूप अल्पज्ञ बताया हो, पदार्थोंको सर्वथा नित्य या सर्वथा अनित्य कहा हो, आत्माको सर्वथा अशुद्ध कहा हो, वह सर्व शास्त्र मिथ्या आगम है। जहाँ शिकार खेलना धर्म बताया हो, वह सब मिथ्या आगम है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील व परिग्रह ये ही जगमें बड़े पाप हैं । इनकी प्रवृत्तिमें धर्म बतानेवाला शास्त्र प्रगट मिथ्या शास्त्र है। रागी, द्वेषी नाना प्रकार कुदेवोकी भक्ति कराकर भय दिखाकर गृहस्थोको मिथ्या पूजा, अर्चामें लगाया गया हो वह सब मिथ्या आगम है। जहाँ अनेकान्तनयसे अनेक धर्मरूप पदार्थको बताया हो व जो सर्व प्राणी मात्रकी रक्षाका उपदेश देवे व वीतराग भावकी पुष्टिको, विषय कषायको हटावे वही सच्चा आगम है, इसके विरुद्ध सब मिथ्या आगम हैं ।

श्री पद्मनन्दि मुनि धम्मरसायणमें कहते हैं—

जत्थ वयो जीवाण भासिज्जइ जत्थ अलियवयण च । जत्थ परदव्वहरणं सेविज्जइ जत्थ परयाणं ॥१५॥
बहुआरम्भपरिग्गहगहण सन्तोसवज्जिय जत्थ । पचुम्बरमहुमास भक्खिज्जइ जत्थ धम्मम्मि ॥१६॥

भावार्थ—जिस धर्मके आगममें जीवोका वध बताया हो, असत्य भाषण धर्म हो, परद्रव्यका हरण व परस्त्रीका सेवन धर्म हो, जहाँ बहुत आरम्भ व परिग्रहका संग्रह धर्म हो, जहाँ सन्तोषका नाश हो, कीट वर्द्धित पाँच उदम्बर फलोंका व मधु या मांसका भक्षण धर्म बताया हो सो आगम मिथ्या है, जगमें हिंसामय धर्मकी प्रवृत्ति हिंसामयी आगम द्वारा ही है। नदी स्नानमें धर्म मानना, रात्रिमें खानेमें धर्म मानना ये सब मिथ्या आगमका ही प्रताप है ।

(१) समय मिथ्या—मिथ्या आगममें कहे हुए पदार्थोंका स्वरूप भी मिथ्या ही होता है । आत्माका स्वरूप अनेक गुण पर्यायमय है । यह अपनी सत्ता भिन्न-भिन्न रखता है, ऐसा न कहकर आत्माको परमात्माका ही अंश मानना या परमात्माको जगतका कर्ता-हर्ता मानना, अकर्ता कृतकृत्य, समभावी न मानना। जगतको सर्वथा क्षणिक मानना या सर्वथा नित्य मानना। सुख दुःखका दाता किसी ईश्वरको मानना, एक चेतन द्रव्यसे अचेतनकी उत्पत्ति मानना या अचेतनसे चेतनकी उत्पत्ति मानना। द्रव्य पर्यायकी अपेक्षा अनित्य व द्रव्यकी अपेक्षा नित्य है। अनेक गुणोंका अभेद समूह है इससे एक रूप है । प्रत्येक गुण द्रव्यमें सर्व स्थानमें व्यापक है इससे अनेक रूप है, इत्यादिक जैसी वस्तु है उसका और रूप वर्णन पदार्थ मिथ्या है ।

(२) प्रकृति मिथ्यात्व—मिथ्या आगमसे मिथ्या पदार्थोंको जानकर मिथ्याका श्रद्धान स्वभावमें पड़ जाना मिथ्या प्रकृति है । मिथ्यात्वके श्रद्धानसे यह प्राणी मिथ्यात्वी होकर मिथ्या क्रिया करके मैंने धर्म पाला ऐसा मिथ्या श्रद्धान कर लेता है। वीतराग विज्ञानमयी धर्मको न पाकर राग, द्वेष वर्द्धक धर्मकी क्रियाको करके मैंने धर्म पाला ऐसा मान लेता है । इस मिथ्यात्वमय भावसे यह प्राणी मिथ्यात्व कर्म बाँध कर निगोद चला जाता है । अतएव जो कर्मोंके आस्रवसे बचना चाहें उनको उचित है कि मिथ्या आगमको त्याग करें। यथार्थ आगमसे यथार्थ तत्त्वोंको जानकर सच्चा श्रद्धान पाकर सच्चा धर्म पालें ।

७. मिथ्या देव, मिथ्या गुरु, मिथ्या धर्म—ये तीन भाव

मिथ्यादेवं गुरुं धर्मं, अनृतं ऋत उच्यते।
असत्यं असास्वतं प्रोक्तं, त्रिभंगी निगोयं दलं॥१५॥

अन्वयार्थ—(मिथ्यादेव गुरु धर्मं) मिथ्यादेव गुरु धर्म (अनृत ऋत उच्यते) जो असत्य हैं उनको सत्य देव गुरु धर्म कहता है (असत्य असास्वत प्रोक्तं) वे असत्य हैं व अनित्य हैं (त्रिभगी निगोय दल) इन तीनोंको माननेवाला निगोदका पात्र है।

भावार्थ—मिथ्या देव, गुरु, धर्म उनको कहना चाहिये जिनमें देवपना, गुरुपना व धर्मपना किसी भी तरह नहीं हो सकता है। जैसे—जल, वायु, अग्नि, समुद्र, पर्वत, नदी, वृक्ष, गौ आदि जो तिर्यञ्च गतिमें हैं उनको देव मान लेना। ऐसे मिथ्या देवोंको पुजवानेवाले व उपदेश देनेवाले मिथ्या गुरु हैं व ऐसे मिथ्या देवोंको मानना व पूजना मिथ्या धर्म है। जगतमें अज्ञान ऐसा है कि जलको पूजेंगे तो जल वर्षा होगी, आगको पूजेंगे तो भला होगा, वृक्षको पूजेंगे तो सौभाग्य रहेगा, पुत्र प्राप्त होगा। संसारी प्राणीको सांसारिक सुखकी कामना होती है व रोग वियोगादि दुःखोंसे बचना चाहते हैं। मिथ्या गुरु अपने स्वार्थ साधनके लिये द्रव्यादिके लोभसे भक्तोंको उपदेश देते हैं कि यदि इनको पूजेंगे तो दुःखोंसे छूट जाओगे व सुख मिलाप, धनका व पुत्रका लाभ होगा। भयभीत प्राणी उनके उपदेशोंको मानकर ऐसे मिथ्या देवोकी आराधना करके अपनी शक्ति व धनका दुरुपयोग किया करता है। मिथ्या धर्मका सेवन किया करता है। इन मिथ्या देव, गुरु, धर्मके भीतर श्रद्धा रखनेसे उसको वीतराग सर्वज्ञ सच्चे देव, वीतरागी निर्ग्रन्थ गुरु व वीतराग विज्ञानमय धर्मका श्रद्धान नहीं हो पाता है। वह न तो आत्माको पहचानता है न पुण्य-पापको समझता है कि जिनके उदयसे सुख-दुःख होता है, न मोक्षको जानता है कि मोक्ष परमात्मा अवस्था अनन्त सुखमयी है। वह संसारासक्त रहता हुआ अपना बड़ा अनर्थ करता है। मिथ्या धर्म लोक मूढ़तामें गर्भित है। रत्नकरण्डश्रावकाचारमें कहा है—

आपगासागरस्नानमुच्चय: सिकताश्मनाम्। गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते॥ २२॥

भावार्थ—नदीको देवी व समुद्रको देव मानकर उसमें स्नान करनेसे आत्माकी शुद्धि मानना, बालू व पाषाणका ढेर करनेमें, पर्वतके गिरनेमें व आगमें जलकर मरनेमें धर्म मानना सब लोक मूढ़ता कही जाती है।

---

८. मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र—ये तीन भाव

मिथ्या दर्सनं न्यानं, चरनं मिथ्या दिष्टते ।
अलहन्तो जिन उत्तं, निगोयं दल उच्यते ॥ १६ ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्या दर्सनं न्यानं) **मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान** (चरन मिथ्या दिष्टते) **व मिथ्यादर्शन ज्ञान सहित चारित्र मिथ्या देखा जाता है। इन तीनों मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्रमें फँसा हुआ प्राणी** (जिन उत्तं अलहन्तो) **जिनेन्द्र कथित सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रमयी रत्नत्रय मार्गको न पाकर अज्ञानसे** (निगोय दल उच्यते) **वह प्राणी निगोदका पात्र होता है। ऐसा कहा गया है।**

भावार्थ—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जब मोक्षमार्ग है, आत्माको कर्मबन्धसे छुड़ानेवाला है तब मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र संसार भ्रमणका कारण है। इस मिथ्यामार्गके भी दो भेद हैं–निश्चय मिथ्यामार्ग, व्यवहार मिथ्यामार्ग। अपने आत्माको यथार्थ न समझ कर किन्तु औरका और समझ कर श्रद्धान करना व जानना व उसका ध्यान करना निश्चय मिथ्यामार्ग है। जैसे आत्माको अल्पज्ञ समझना, रागसे मुक्त न जानना, या इस आत्माको ऐसे ब्रह्मका अंश मानना जो जगतका कर्ता व फलदाता माना जाता है या आत्माको सर्वव्यापक मानना कि उसके प्रदेश शरीर-प्रमाण न होकर जगतव्यापी हैं व आत्माको एकान्तसे नित्य ही मानना या अनित्य ही मानना। आत्मा द्रव्य स्वतन्त्र अखण्ड अमूर्तीक पूर्ण ज्ञान दर्शन वीर्य आनन्दमयी अविनाशी अपने ही गुणोका पिंड व पर्यायोंका समुदाय है। जिनेन्द्रके जैनागममें अनेकांत रूप आत्माका स्वरूप बताया है कि यह आत्मा स्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा सत्‌रूप है पर द्रव्योंके द्रव्यादिकी अपेक्षा असत्‌रूप है। हरएक आत्मा अपनी सत्ता भिन्न रखता है तब अनंतानंत आत्माएँ अपनी सत्ता अलग रखते हैं। पुद्‌गलादि अजीव द्रव्योंकी सत्ता भिन्न है। तथा आत्मा स्वभावको कभी न छोड़नेसे नित्य है उसी समय परिणमनशील होनेसे पर्यायकी अपेक्षा अनित्य है। अखण्ड होनेसे एक है। अनेक गुणधारी होनेसे अनेक है। यह असंख्यातप्रदेशी है तथापि संकोच विस्तारकी शक्ति रखनेसे शरीरप्रमाण रहता है। न यह जगत स्वरूप है। यह जगतको जान सकता है पर जगतरूप नहीं होता है, ज्ञानसे पर ज्ञेय भिन्न रहता है। अज्ञानावस्थामें आप ही अज्ञान व राग, द्वेष, मोह रूप परिणमन करता है। आप ही अशुद्ध भावोंसे पुण्य पाप बाँधता है व आप ही उनका फल भोगता है। आप ही

अपने विभावोंसे संसारमें भ्रमण करता है व आप ही अपने स्वभावमें रमण करनेसे शुद्ध हो जाता है, मुक्त हो जाता है। मुक्त दशामें अपनी सत्ताको खोता नहीं, किसी परमात्मामें मिलकर आप सत्ता रहित नहीं हो जाता है। ऐसा अपनी आत्माका स्वभाव है, सो सत्य है।

श्री जिनेन्द्रने द्रव्यानुयोगके ग्रन्थोंमें—प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय, समयसार, नियमसार, परमात्मप्रकाश आदिमें दिखलाया है उसको न मानकर अन्य प्रकारसे आत्माका कल्पना कर लेना यथार्थ ज्ञान नहीं कहलाएगा। उस ज्ञान सहित श्रद्धान भी यथार्थ नहीं व उस ज्ञान श्रद्धान सहित ध्यान, जप, तप, पूजा पाठ भी यथार्थ चारित्र नहीं कहलाएगा। कभी-कभी जैन शास्त्रोंका ज्ञाता भी यथार्थ न समझकर मिथ्या मार्गसे रहित नहीं होता है। जिसको स्वानुभव नहीं मिल सकता है उसको आत्माके आनन्दकी जातिका पता नहीं चलता है। मिथ्यादर्शन कर्मके उदयसे जिनवाणीको जानते हुए भी वह यथार्थमें आत्माका परमात्माका श्रद्धान नही कर पाता है। अनन्त सुखको भी इन्द्रियजन्य सुखकी जाति मान लेता है। अथवा विषयकी तृष्णाकी वासना न छूटनेसे मोक्षमें भी इसी जातिका अनन्त सुख मान लेता है। ऐसा बाहरी जिन मुनिका भेष रख करके भी ग्यारह अंगका पाठी होकर भी मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्रवान कहलाता है। क्योंकि शुद्धात्मानुभवरूपी सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रका लाभ इसको कर्मोदयसे नहीं प्राप्त होता है, वह नौग्रैवेयक तक जाकर भी संसारमें भ्रमण करता है। स्वानुभव रहित आत्माका ध्यान निश्चय मिथ्या मार्ग है। आत्माका यथार्थ श्रद्धान व ज्ञान होनेके लिये जैनागमको भले प्रकार देखना चाहिये। यह आत्मा, न ब्रह्मका अंश है, न यह जड़से उत्पन्न है, न यह केवल अपरिणामी कूटस्थ नित्य है, इसका न आदि है, न अन्त है। यह स्वभावसे शुद्ध द्रव्य है। कर्मके संयोगमें अशुद्ध कहलाता है ज्ञान इसका स्वरूप है, ज्ञानसे कभी भिन्न नहीं था। यह अज्ञान दशामें परका कर्ता भोक्ता बन जाता है, ज्ञान दशामें स्वभावका कर्ता भोक्ता है। परिणमनशील होनेसे संसार—परिणतिको त्याग कर मोक्ष परिणामको प्राप्त करता है। व्यवहार सम्यक्त्व धर्म सात तत्त्वोंका श्रद्धान व सच्चे देव, शास्त्र, गुरुका श्रद्धान है। इस जिनेन्द्र कथित मार्गको न समझ कर एक तत्त्व मानना या औरका और मानना या किसी ईश्वरके आधीन आत्माको मानना या रागी, द्वेषी देवोंको देव, परिग्रह धारी गुरुको गुरु व सराग भावको या हिंसाको धर्म या

उसके कहनेवालेको शास्त्र मानना यह सब व्यवहार मिथ्या धर्म है। व्यवहार तथा निश्चय मिथ्या श्रद्धान ज्ञान सहित जप, तप, पूजा, पाठ ज्ञानावरणका तीव्र बन्ध कराकर कदाचित् एकेन्द्रिय साधारण वनस्पतिरूप निगोद दशामें पटक देता है। घोर कर्मके आस्रवके कारण ये तीन मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चरित्र हैं। योगसारमें श्री योगेन्द्रदेव कहते हैं—

मिच्छादंसणमोहियउ परु अप्पा ण मुणेइ। सो बहिरप्पा जिणभणिउ पुण ससारु भमेइ॥ ७॥
देहादिउ ज पर कहियो ते अप्पाण मुणइ। सो बहिरप्पा जिणभणिउ पुण ससार भमेइ॥ १०॥

भावार्थ—मिथ्यादर्शनसे मोहित जीव परमात्माको नहीं पहचानते है, वे बहिरात्मा संसारमें भ्रमण करते हैं। जो शरीरादि व राग-द्वेषादि जो आत्माके स्वभावसे भिन्न हैं उनको आत्मा मानेगा सो बहिरात्मा है। वह भवमें भ्रमेगा ऐसा जिनेन्द्रने कहा। सारसमुच्चयमें कुलभद्राचार्य कहते हैं—

मिथ्यात्व परम बीज ससारस्य दुरात्मन। तस्मात्तदेव मोक्तव्य मोक्षसौख्य जिघृक्षुणा॥ ५२॥
आत्मतत्त्व न जानन्ति मिथ्यामोहेन मोहिता.। मनुजा येन मानस्था विप्रलुब्धा कुशासनै:॥ ९३॥

भावार्थ—इस दुष्ट स्वरूप संसारका मूल कारण मिथ्यादर्शन है। जो कोई मोक्षके सुखको चाहता है उसे मिथ्यात्वका त्याग करना ही चाहिये। जो मिथ्या शास्त्रोके बहकाए हुए व मिथ्याज्ञानके अहंकार रखनेवाले मानव हैं वे मिथ्या मूढ़-भावसे मोहित होकर आत्माके सच्चे स्वरूपको नहीं जानते हैं।

---

९. मिथ्या संयम, मिथ्या तप, मिथ्या परिनै—ये तीन भाव

मिथ्या संजमं कृत्वा, तव मिथ्या परिनै युतं।
सुद्धं तत्तु न पस्यंते, मिथ्यादल निगोदयं॥ १७॥

अन्वयार्थ—(मिथ्या सजम कृत्वा) मिथ्यात्व सहित संयम पाल करके (मिथ्या तव परिनै युत) तथा मिथ्यात्व सहित तप करके व मिथ्या परिणमन करके (सुद्धं तत्तु न पस्यन्ते) शुद्ध आत्मतत्त्वका जो अनुभव नहीं करते हैं (मिथ्यादल निगोदय) तब यह मिथ्या संयम, तप व परिणमन निगोद कायमें प्राणीको पटक देता है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन सहित संयम, तप व परिणमन या चारित्र मोक्षमार्ग है। शुद्धात्म तत्त्वका जहां अनुभव है वहीं सच्चा सम्यग्दर्शन है, वहीं सच्चा संयम है, वहीं सच्चा तप है, वहीं सच्चा आत्मामें परिणमनरूप चारित्र है। मिथ्यादर्शन

सहित संयम, तप, चारित्र सब मिथ्या है। संसारका ही कारण है। क्योंकि मिथ्यादृष्टिको शुद्ध आत्मीक तत्त्वकी पहचान नहीं है न उसको मोक्ष तत्त्वकी पहचान है। मिथ्यादृष्टिके भीतर कोई-न-कोई कषायकी वासना रहती है, जो बाहर दृष्टिगोचर नहीं होती है या तो उसके भीतर मान प्रतिष्ठाकी वासना है या आगामी विषय-सुख प्राप्त होनेकी भावना है या कोई मायाचार भी हो सकता है या किसीको हानि पहुँचानेके लिए क्रोधकी वासना भी हो सकती है। जैन सिद्धान्तानुसार जो बाहरी संयम, तप, चारित्र ठीक-ठीक पालते हैं, परन्तु अन्तरगमें आत्मीक तत्त्वका अनुभव नहीं है, वे सांसारिक सुखकी वासना ही से तपादि करते हैं। मोक्षमें भी जो अनन्त-सुख होगा, ऐसा उसने शास्त्रोंसे जाना है उस सुखकी जातिको नहीं पहचाना है। इन्द्रिय सुखके समान ही होगा ऐसा इसके भीतर मिथ्या भ्रम है। स्वानुभवके बिना द्रव्यलिंगीका संयम साधन है वह संसारका ही कारण होता है। समयसारमें श्री कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं—

परमट्ठम्मिय अठिदो जो कुणदि तव वद च धारयदि। त सव्वं बालतव बालवद विंति सव्वह्णु ॥१५९॥
परमट्ठबाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छन्ति। ससारगमणहेदु वि मोक्खहेदु अजाणन्ता ॥ १६१ ॥

भावार्थ—परमार्थभूत आत्मज्ञानसे शून्य जो कोई तप व व्रत धारण करता है उस सर्वको सर्वज्ञदेवने अज्ञान तप व अज्ञान व्रत कहा है। परमार्थ ज्ञानसे बाहर जो हैं वे अज्ञानसे संसारके भ्रमणका कारण जो पुण्य है उसीकी इच्छा करते हैं, वे मोक्षके साधनको नहीं जानते हैं।

वहीं और भी कहा है—

वदसमिदोगुत्तीओ सीलतव जिणवरेहि पण्णत्त। कुव्वतोवि अभविओ अण्णाणी मिच्छदिट्ठीय ॥२९१॥
सद्दहदि य पत्तयदि य रोचेदि य तह पुणोवि फासेदि।
धम्म भोगणिमित्त णहु सो कम्मक्खयणिमित्त ॥२९३॥

भावार्थ—व्रत, समिति, गुप्ति, शील, तप जैसा जिनेन्द्रोंने कहा है वैसा करते हुए भी अभव्यजीव निश्चय सम्यक्त्वरूप आत्माके श्रद्धानके बिना अज्ञानी तथा मिथ्यादृष्टी है। वह धर्मको श्रद्धानमें रखता है, जानता है व साधन करता है, उसमें उसका हेतु अन्तरंगमें विषयभोग है, कर्मोंका क्षय हेतु नहीं है। मैं शुद्धात्मा अतीन्द्रिय सुखका धनी हो जाऊँ ऐसी श्रद्धा नहीं है।

जो जीव जैनधर्मके व्यवहार चारित्रको नहीं पालते हैं वह बाहरसे भी मिथ्या संयम, तप व चारित्रको रखते हैं। कोई साधु संन्यासी होकर भी अनछना

पानी पीते हैं, अनछना पानीसे स्नान करते हैं, रात्रिको भोजन करते हैं, वनमें कंद-मूल फलादि खाते हैं, गद्दी तकिया सिंहासन पर बैठ कर शिष्योंको आज्ञा करते हैं, रुपया पैसा भूमि रखते हैं, खेती कराते हैं, लेन-देन करते हैं, मकान बनाते हैं, सवारी पर चढ़ते हैं, पैर पुजवाते हैं, द्रव्यको लेकर नाना प्रकार विषयभोग करते हैं और अपनेको साधु-संयमी व गृहत्यागी मानते हैं। यह सब मिथ्या संयम है, कोई लकड़ी जला कर तप करते हैं, जटा बढ़ाते हैं, नाखून बढ़ाते हैं, एक हाथ फैलाये हुए तप करते हैं, कायक्लेश करते हैं, जीवदयाका विचार नहीं सो मिथ्या तप है। कोई पुण्य प्राप्तिका व परलोकमें इन्द्रपद प्राप्तिका व राजा-महाराजा होनेकी अभिलाषा रख-कर चारित्र पालते हैं। दिनमें भूखे रहकर रात्रिको खाते हैं। ऐसे बाहरी हिंसाकारी व रागवर्द्धक कामोंको करते हुए अपनेको संयमी, तपस्वी व चारित्रवान मान लेता है व भोले भाइयोंसे व बहिनोंसे अपनेको पुजवाता है, सो महान् पाप बन्धकारक है, नीच गोत्र एकेन्द्रिय जाति तिर्यञ्चगति बाँधकर ऐसे मानव निगोदमें साधारण वन-स्पतिमें जन्मते हैं।

जहाँ वीतरागता व विवेक सहित शुद्धात्माका अनुभव करते हुए सहायता-रूपमें व्यवहार संयम, तप, चारित्र पाला जावे, वही सम्यक्त्व संयम, तप, चारित्र है।

---

१०. माया, मिथ्या, निदान—ये तीन भाव

माया अनृतं रागं, मिथ्यात्वमय समं जुतं।
असत्यं निदान बन्धं, त्रिभंगी नरयं पतं ॥ १८ ॥

अन्वयार्थ—(अनृत राग माया) मिथ्या क्रियासे रागभाव मायाचार है (मिथ्यात्वमय सम जुत) मिथ्यात्वके श्रद्धान सहित क्रियाका भाव मिथ्या है (असत्य निदान बन्ध) असत्य पदार्थकी तृष्णा निदान है (त्रिभगी नरय पतं) ये तीनो भाव नरक-में पतन करानेवाले हैं।

भावार्थ—मायाचार अपने व परको बहुत दुःखदायी है। लोभके वशीभूत होकर दूसरोंको ठगनेके लिए मिथ्या भावोंको विचारता है, मिथ्या वचन कहता है, मिथ्या व्यवहार करता है, कुटिलायीसे मन, वचन, कायको वर्तन करते हुए अपने परिणामोंको महान् हिंसक बना लेता है। दूसरोंको धोखा देकर ठग लेनेसे उनको

अपनी हानि मालूम होने पर बड़ा भारी कष्ट होता है। मायाचार हिंसा, झूठ, चोरी, आदि पापोंका मूल है। परधन व परस्त्रीकी कामनासे व पाँचो इन्द्रियोंकी लोलुपतासे इच्छित विषय प्राप्त करनेके लिए प्राणी मायाचार करता है। रावणने मायाचारसे सीताको हरा था। यह उसका कार्य महान् आपत्तिका कारण हुआ। उसका राज्य भ्रष्ट हुआ व रावण मर कर नरक गया। रुद्रदत्त चोरने मायाचारसे श्रावक व्रत पाले, मन्दिरकी सम्पत्ति चुराई उस जन्ममें कोढी हो गया, फिर मर कर सातवें नरक गया। मायाचारी महान् विश्वासघाती होता है, विश्वास दिला कर ठग लेता है वह परिग्रह व मूर्च्छावान होनेसे नरकायु बाँध लेता है।

मिथ्यात्व सहित धर्मकी क्रिया विपरीत होती है। जैसे—यज्ञमें पशुओंका होम करना लाभदायक होगा, ऐसा मानकर अजमेध, गौमेध, अश्वमेध, नरमेध करके बकरे, गाय, घोडे व मानवको होम कर देना। देवी-देवता रुधिरके प्यासे हैं, ऐसा मानकर पशुओको काट कर चढ़ाना, ईश्वरके नाम पर पशुवध करेंगे तो वह प्रसन्न होकर हमारा भला करेगा, ऐसा मानकर पशुओका वध करना। क्षत्रियोंका धर्म शिकार खेलना है, ऐसा मान कर निरपराध मृगोको मार कर धर्म मानना, वैश्योका धर्म दीवालीमें जुआ खेलना है, ऐसा मानकर जुआ व्यसन सेवन करना। होलीके दिनोमें भाँग पीना, भाण्ड वचन बकना। होलीका रूप बना कर होली जलाना धर्म है, ऐसा मानकर मिथ्या क्रिया करना। विधवा अपने पतिके साथ जल जावे उसको सती मान कर पूजना। दिनमें भूखे रह कर रात्रिको चन्द्रमा व तारे देखकर खानेमें धर्म मानना। किसी देवके सामने धर्म समझ कर वेश्या नृत्य कराना। रागवर्द्धक नाटक व खेल करना। जिन-जिन कार्योंसे इन्द्रियोके विषय पुष्ट हों व कषायोकी वृद्धि हो, वे सब अधर्म हैं। उन सब कार्योंको धर्म मान लेना मिथ्या भाव है। इन मिथ्या भावोसे घोर हिंसादि पाप होते है तब हिंसानदी भाव नरकायुको बाँध देता है।

निदान भावके कारण प्राणी आगामी भोग सामग्रीकी गाढ तृष्णा रखता है। मैं नारायण पद पाऊँ, चक्रवर्ती हो जाऊँ, इन्द्र हो जाऊँ, बड़ा धनिक हो जाऊँ, पाँचो इन्द्रियोंके खूब भोग भोगूँ। ऐसी गाढ तृष्णाका काँटा भीतर रखकर तप, जप, व्रत, उपवास करता है, कदाचित् जैनधर्मानुसार श्रावक व साधुके व्रत पालता है। निदानभावसे यदि हिंसाकारी तप व धर्मक्रिया करता है तो रौद्रध्यानसे नरकायु बाँध लेता है। जिस धर्मसे आत्मीक आनन्द मिल सकता था उस धर्मको निदान-

भावसे सेवन करके परिणामोंमें आतुरता रखता है कि मैं पुण्यबन्ध करके व शीघ्र ही मरके इच्छित भोग पाऊँ ।

ये तीनों भाव माया, मिथ्या, निदान महान् कर्मोंके आस्रवके कारण हैं क्योंकि तीनोंमें तीव्र लोभकी भूमिका है । लोभके वश हो मायाचार करता है मिथ्यात्व-का सेवन करता है व निदान भाव करता है । सारसमुच्चयमें कुलभद्राचार्य कहते हैं—

भोगार्थी य: करोत्यज्ञो निदानं मोहसगतः। चूर्णीकरोत्यसौ रत्न अनर्थसूत्रहेतुना ॥ १२६ ॥

भावार्थ—जो भोगोका अर्थी, अज्ञानी मोही होकर निदान भाव करके धर्म-का साधन करता है वह केवल सूतके लिये रत्नोंको चूर्ण कर डालता है । श्री चन्द्रकृत मणिमालामें कहा है—

मुच मुच विषयाऽमिषभोग लुंप लु प निजतृष्णारोग ।
रु ध रु ध मानसमातग धर धर जीव विमलतरयोग ॥ ६९ ॥

भावार्थ—हे भाई ! तू अपने भीतरसे तृष्णारूपी रोगको निकालकर फेंक दे, विषयरूपी मांसका भोग छोड़ दे, मन हस्तीको रोककर निर्मल आत्मध्यानका अभ्यास कर । माया, मिथ्या, निदान तीन महान् दोष दूर करके निर्मल भावोसे आत्महित करना योग्य है ।

---

११. राग, द्वेष, निदान—ये तीन भाव

रागादि भावनं कृत्वा, द्वेष निदान वर्धते ।
अनृतं उत्सहं भावं, त्रिभंगी थावर दलं ॥ १६ ॥

अन्वयार्थ—(रागादि भावन कृत्वा) विषयोमें राग व ग्रहण की भावना करके (द्वेष निदान वर्धते) बाधक कारणोंसे द्वेष तथा साधक कारणोंका निदान बढ़ता है (अनृत उत्सह भाव) असत्य विषयोंके भोगका उत्साह भावोंमें घर कर लेता है (त्रिभगी थावर दल) ये तीन भाव स्थावर कायोके भीतर ले जानेवाले हैं ।

भावार्थ—पाँचों इन्द्रियोंके भोगोका रागभाव संसारका मूल कारण है । इसीसे द्वेषभाव व निदान भाव बढ़ता है । ये भोग मिथ्या हैं, असार हैं, अतृप्तिकारी हैं उन्हींका तीव्र उत्साह परिणामोमें रहता है । तब बाधक कारणोसे द्वेष होता है व साधक कारणोंके आनेकी तीव्र अभिलाषा होती है, अर्थात् निदान भाव होता है । मिथ्यादृष्टी संसारी प्राणी इन ही भावोंमें पड़कर पापकर्मका बन्ध करते हैं । देवोका

दृष्टान्त लिया जावे तो भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी व कल्पवासी दूसरे स्वर्ग तकके मिथ्यात्वी देव विषयोंके अत्यन्त रागी होते हैं। जब माला मुरझा जाती है तब बड़ा भारी शोकभाव पैदा हो जाता है, वियोग होनेवाला है उसमें द्वेष पैदा हो जाता है। साथमें निदान भी होता है। यहाँसे मरनेके बाद फिर भी खूब भोग मिले। उस समयके आर्त्त परिणामोंसे यह जीव तिर्यञ्च आयु स्थावर नामकर्म बाँध लेता है और देव मर करके वृक्षादि स्थावर पैदा हो जाता है। सूक्ष्मदृष्टिसे विचार किया जावे तो सर्व मिथ्यादृष्टी इन तीन भावोंमें रात-दिन ग्रसित रहते हैं।

एकेन्द्रियके आहार व मैथुन व परिग्रह संज्ञा या तीनों बातोंकी इच्छा होती है। वह स्पर्शनेन्द्रियसे इष्ट पदार्थोंका राग करता है। भय सज्ञा होती है इससे भयकारी साधनोंसे द्वेष होता है। तृष्णावश आगामी इच्छित भोग चाहता है। मन न होनेसे कषाय जनित अबुद्धिपूर्वक उनके रागद्वेष व निदान भाव होते हैं। इसी तरह द्वीन्द्रिय जीवोंके स्पर्शन व रसना इंद्रियकी घोर लालसा होती है। रसके लोभी हो विषयको ढूंढा करते हैं, भयभीत रहते हुए अपने शत्रुओसे डरते हैं, द्वेषभाव करते व आगामीमें रस मिले ऐसा अबुद्धिपूर्वक निदान होता है। त्रीन्द्रियके स्पर्शन, रसना व घ्राणका; चौन्द्रियके स्पर्शन, रसना, घ्राण व चक्षुके विषयोका; पाँच इन्द्रियोके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु व कर्ण इन्द्रियोका तीव्र राग भाव रहता है। बाधकोंसे द्वेष होता है, आगामीकी चाह होती है। इन्हीं मिथ्या विषयोंके लोभमें फँसकर हाथी स्पर्श इन्द्रिय वश पकड़ा जाता है। मछली रसना इन्द्रिय वश काँटेमें फँस करके तड़पतडफ कर जान देती है। भ्रमर नाकके वश कमलके भीतर बन्द होकर प्राण गमाता है। पतग चक्षु इन्द्रिय वश दीपकमें जल जाता है। मृग कर्ण इन्द्रिय वश शिकारीसे पकडा जाता है। मानव इन पाँचों इन्द्रियोके रागमें फँसा हुआ क्षणभंगुर विषयभोगोका तीव्र उत्साह रखता है। स्त्रीका सम्बन्ध मिलाता है, रसीले भोजन एकत्र करता है, सुगन्ध द्रव्य लाता है, मनोहर खेल तमाशे चित्र देखता है, सुरीले गान सुनता है। इन कार्योंमें जो बाधक होते हैं उनसे द्वेषभाव करके उनका निवारण करता है। यदि अपना सगा भाई भी विषयोंके भोगमें बाधक होता है तो उसका मरण तक चाहता है। नए-नए सुन्दर विषयभोग मिलते चले जावें ऐसा निदान भाव रखता है, मर करके भी बढ़िया भोग पाऊँ ऐसा भाव करता है। इस लोभके वश होकर कदाचित् धर्म भी सेवन कर लेता है। विषयोका राग ही रागद्वेष निदान भावका कारण है। सम्यग्-

दर्शनके लाभ बिना यह विषयसुखकी श्रद्धा मिट नहीं सकती है। जिसको आत्मीक सुखका स्वाद आवे वह विषयसुखको तुच्छ व झूठा जाने। मिथ्यादृष्टीको इसी विषय-सुखकी ही रुचि रहती है। इसलिये रागद्वेष व निदान भावोंमें तन्मयी होकर तिर्यंच एकेन्द्रिय जातिका बन्ध कर लेता है। इन्द्रिय विषयोंका राग महान् अनर्थकी परम्परा-का कारण है। इस लोक व परलोकमें दुःखोंका बीज है।

श्रीकुन्दकुन्दाचार्य प्रवचनसारमें कहते हैं—

जेसिं विसयेसु रदी तेसिं दुक्ख वियाण सब्भाव। जदि तं ण हि सब्भाव वावारो णत्थि विसयत्थ ॥६४॥
ते पुण उदिण्णतण्हा, दुहिदा तण्हाहि विसयसोक्खाणि। इच्छंति अणुहवंति य आमरणं दुक्खसतत्ता ॥७५

भावार्थ—जिन प्राणियोंकी रति इन्द्रियोंके भोगोंमें है उनको स्वभावसे ही दुःख है। यदि स्वभावसे उनको पीड़ा न हो तो वे जीव इन्द्रियोंके विषयोंमें व्यापार न करें। सर्व ही प्राणी एकेन्द्रियादिके विषयोंका व्यापार विषय रागसे ही है। संसारी प्राणी तृष्णाकी दाहसे पीड़ित होते हैं। उसी कष्टको न सह सकनेके कारण बार-बार विषय सुखको चाहते हैं और भोगते हैं। मरणपर्यन्त ऐसा करते रहते हैं तथापि दुःखोंके सन्तापसे मुक्त नहीं होते हैं। शिवकोटि आचार्य भगवती आराधनामें कहते हैं—

एगम्मि चेव देहे करज्जदुक्ख णवकरिज्जअरी। भोगा ये पुण दुक्ख करंति भवकोडिकोडिसु ॥१२७४॥

भावार्थ—बैरी एक ही देहमें दुःख करे या न करे, परन्तु ये विषयभोग तो इस जीवको करोड़ों जन्मोंमें दुःखी करते हैं। ज्ञानीको विषय राग त्यागना ही चाहिये जिससे संसारका कष्ट न हो।

---

१२. मद, मान, माया—ये तीन भाव

मदष्टं मान सम्बन्धं, माया अनृतं कृतं।
भावं असुद्ध सम्पूर्णं, त्रिभंगी थावरं दलं ॥ २० ॥

अन्वयार्थ—(मदष्ट मान सम्बन्ध) आठ प्रकार भेदके सम्बन्धसे मान या अहं-कार हो जाता है (माया अनृतं कृत) मानके लिये असत्य वर्तन करके मायाचार करता है (सम्पूर्णं असुद्ध भाव) ये तीनों ही सर्वथा प्रकार अशुद्ध भाव हैं (त्रिभगी थावरं दल) इस त्रिभंगीका धारक स्थावर योनिका पात्र हो जाता है।

भावार्थ—कारण कार्यकी अपेक्षा मद, मान, माया त्रिभगी बतायी है। जगत्-

में पुण्यके उदयसे मानवोंको आठ प्रकार शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। उत्तम जाति (मामाका पक्ष), उत्तम कुल (पिताका पक्ष), धन, रूप, शरीरबल, अधिकार, विद्या व तपबल। इन आठोंकी प्रचुरता देखकर दूसरोंकी अपेक्षा अपनेमें अधिक देखकर अज्ञानी मिथ्यादृष्टी मद कर लेता है, उसको एक प्रकारका नशा या मद चढ़ जाता है। मदिरा पीनेसे नशा चढ जाता है तब वह धनादिके नशेमें चूर होकर अभिमानी बन जाता है। अपनेको बड़ा देखता है। दूसरोको नीचा देखता है। अपनी मान प्रतिष्ठा बनाये रखनेको सदा प्रयत्नशील होता है। दूसरोके ऐश्वर्य व यशको सहन नहीं कर सकता। तब रातदिन अपना यश बढानेमें व दूसरोंका यश घटानेमें व लक्ष्मीका लाभ दूसरोको न हो, मुझे हो जावे, इस प्रयत्नमें अनेक प्रकार मायाचार करता है। कपटसे दूसरेका अपमान कराता है, धनादिकी हानि कराता है। अपना बड़प्पन प्रगट करनेकी मान बडाईसे लिये धन खर्च देता है, धर्म भी अभिमान पुष्टिके लिये करता है, उस मदवान व्यक्तिका सारा जीवन मानकी मरम्मतमें बीतता है वह उन्मत्तकी तरह अविनयी बन जाता है। गरीबोका तिरस्कार करता है, उनको दुर्वचन कहता है। दुःखियोको दुःखी देखकर उसके मनमें कठोर भाव होनेसे दया नहीं होती है। उसका एक ध्येय अभिमान पोषण हो जाता है। जैसे मदिरा पीनेवालेकी आदत मदिराकी पड जाती है वैसे ही इसको अभिमानकी आदत पड जाती है। जरासा कोई अपमान करे तो यह शत्रु बन जाता है, व उसका हर तरह नाश करनेका उद्यम करता है।

ज्ञानी जीव लौकिक सम्पत्तिको पुण्यका फल जानकर नाशवन्त मानते हैं, पुण्यका उदय न रहनेसे सब सम्पत्ति अधिकार आदि चला जाता है, शरीर रातदिन जलनशील है इससे इसके बल व रूपका वह ज्ञानी मद नही करता है। ज्ञानी शक्ति–सम्पन्न होकर अधिक नम्र बन जाता है, अपने बलको परोपकारमें खर्च करता है। जैसे–फल सहित वृक्ष नम्रोभूत होकर सबको तोडनेका अधिकार देते है।

मिथ्यादृष्टी जीव इस मदके कारण तीव्र कृष्णलेश्यामें अशुभ आयु बाँध लेता है। तिर्यंच आयु व नीच गोत्र बाँधकर एकेन्द्रिय स्थावर जन्मता है। नीच गोत्रके बन्धका कारण मान करना है।

श्रीमदमृतचन्द्रसूरिने तत्त्वार्थसार में कहा है—

असद्गुणानामाख्यान सद्गुणाच्छादन तथा। स्वप्रशसान्यनिन्दा च नीचैर्गोत्रस्य हेतव ॥ ५३–४ ॥

भावार्थ—अपने न होते गुणोंको कहना, दूसरेके होते हुए गुणोंको ढक देना, अपनी प्रशंसा करना, परकी निन्दा करना, नीच गोत्रके आस्रवके भाव हैं। ज्ञानी सम्पत्ति होनेपर इनकी अथिरताका विचार करता है। जैसा श्री बृहत सामायिक-पाठमें श्री अमितगति आचार्य कहते हैं—

सकललोकमनोहरणक्षमा· करणयौवनजीवितसम्पद ।
कमलपत्रपयोलचञ्चला किमपि न स्थिरमस्ति जगत्त्रये ॥ १०९ ॥

भावार्थ—सर्व लोगोंके मनको हरण करनेवाली इन्द्रियां हों, जवानी हो, जीवन व सम्पत्ति हो तो भी ऐसी चञ्चल है या नाशवान है, जैसे कमलके पत्तेपर पड़ी हुई पानीकी बूंद झटसे गिर जाती है। वास्तवमें तीन जगतमें कोई भी पर्याय पदार्थकी स्थिर नहीं है।

---

१३. कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र—ये तीन भाव

कुदेवं कुगुरुं वन्दे, कुशास्त्रं चिंतनं सदा।
विकहा अनृत सद्भावं त्रिभंगी नरयं दलं ॥ २१ ॥

अन्वयार्थ—(कुदेव कुगुरु वदे) मिथ्यादृष्टी कुदेव व कुगुरुको नमस्कार करता है (कुशास्त्र चिंतन सदा) मिथ्या शास्त्रोंका सदा चिन्तवन किया करता है (विकहा अनृत सद्भाव) खोटी कथा व मिथ्या चर्चामें लगा रहता है (त्रिभङ्गी नरय दल) इन तीनों-के आराधनसे नरक गतिका पात्र हो जाता है।

भावार्थ—रागद्वेष मोह ससार है। जो देव इन रागद्वेष मोहके वशीभूत हैं व स्वयं अज्ञानी हैं, पूर्ण ज्ञानी नहीं हैं, वे सर्व कुदेव हैं। सुदेव वे ही हैं जो सर्वज्ञ व वीतराग हों। अज्ञानी जीव धनादि पुत्रादि सांसारिक प्रयोजनका लोभी होकर कुगुरु द्वारा बताये हुए रागीद्वेषी देवोंकी आराधना किया करता है। उन देवोंको प्रसन्न करनेके लिये पशुबलि तक चढ़ा देता है। उन देवोंसे सदा भयभीत रहता है। उनकी मान्यतामें कमी होनेसे अपना नाश मानता है। देवगति धारी इन्द्र, धरणेन्द्र, देवी, चक्रेश्वरी, पद्मावती, कालिका, दुर्गा, राक्षस, भूत, पिशाच, किन्नर, किम्पुरुष, सूर्य, चन्द्रमा, बृहस्पति, कुबेर आदि सब संसारी हैं, रागी-द्वेषी हैं, अविरत भावधारी हैं। इनमें कोई सम्यक्त्वी हैं, कोई मिथ्यात्वी हैं, इनकी आराधना केवल रागभाव-

को बढ़ानेवाली है, मोक्षमार्गसे हटानेवाली है, वीतराग सर्वज्ञकी आराधना मोक्ष-मार्गमें सहायक है। परिग्रहधारी आरम्भासक्त कुदेवोंको पुजानेवाले धनके लोभी अनेक प्रकारके कुगुरु हैं। उनके उपदेशसे ही कुदेवोंकी भक्ति जगतमें चल पड़ी है। कुशास्त्र वे ही हैं जिनमें मिथ्या धर्मका उपदेश हो, एकान्त कथन हो, हिंसामें धर्म बताया हो, पापबन्धके कारणोंको पुण्यबन्धकारक दिखाया हो। स्त्रीकथा, भोजन-कथा, देशकथा, राजकथामें उलझा कर रागद्वेष बढ़ानेवाली कथाएँ भी कुशास्त्र हैं। स्वार्थी प्राणी लोभके वशीभूत होकर कुधर्मपोषक मिथ्याशास्त्रोंको मानता है, पढ़ता-पढ़ाता है व उपन्यास, कहानी पढ़कर मनको रागी व कामी बनाता है। तीव्र सांसा-रिक ममत्वके कारण ऐसा कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्रका भक्त नरकायु बांधकर नरक-गतिमें चला जाता है, देवमूढ़ता पाखण्ड मूढ़तामें फँसा रहता है।

श्री समन्तभद्राचार्यने रत्नकरण्डश्रावकाचारमें इन मूढ़ताओंका स्वरूप लिखा है—

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसः। देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥ २३ ॥
सग्रन्थारम्भहिंसानां संसारावर्तवर्तिनाम्। पाखण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाखण्डिमोहनम् ॥ २४ ॥

भावार्थ—किसी फलकी इच्छा करके आशावान होकर रागद्वेषसे मलीन देवताओंकी भक्ति सो देवमूढ़ता है। परिग्रह आरम्भ व हिंसादि कर्ममें लीन, संसार-की वासनाओंसे वासित गुरुओंकी भक्ति गुरुमूढ़ता है। धम्मरसायणमें कहा है—

छुह तण्हा भय दोसो राओ मोहो य चिंतण वाही।
जर मरण जन्म णिद्दा खेदो सेदो विसादो य ॥ ११८ ॥
रइ जिंभओ य दप्पो एए दोसा तिलोयमत्ताण। सव्वेसिं सामण्णा संसारे परिभमन्ताण ॥ ११९ ॥
एए सव्वे दोसा जस्स ण विज्जन्ति छुहतिसाईया। सो होइ परमदेओ णिस्सन्देहेण घेतव्वो ॥ १२० ॥
जइ इच्छय परमपय अव्वावाहं अणोवमं सोक्खं। तिहुवणवंदियचलणं णमहं जिणंद पयत्तेण ॥ १२१ ॥

भावार्थ—१. क्षुधा, २. तृषा, ३. भय, ४. द्वेष, ५. राग, ६. मोह, ७. चिन्ता, ८. रोग, ९ जरा, १०. मरण, ११. जन्म, १२. निद्रा, १३. खेद, १४. स्वेद, (पसीना) १५. विषाद, १६. रति, १७. तृष्णा, १८. मद ये सब दोष तीन लोकके प्राणियोंमें सामान्य रीतिसे पाये जाते हैं। ये सब दोष जिनमें न हो, वे ही परम देव है, उन्हीं वीतराग देवको मानना चाहिये। यदि परमपदकी व बाधा रहित अनुपम सुखकी वांछा है तो त्रिभुवनसे पूज्य श्री अरहन्त जिनेन्द्रकी प्रयत्नपूर्वक भक्ति करो।

---

१४. कुल, अकुल, संग—ये तीन भाव

कुल भावं सदा स्तुत्य, अकुलं कुसंग संगते।
अभावं तत्र अन्यानी, त्रिभंगी दल संजुतं ॥ २२ ॥

अन्वयार्थ—(कुल भाव सदा स्तुत्य) अपने कुलकी जो सदा बड़ाई किया करता है, कुलका गर्व रखता है (अकुल कुसग सगते) तथा नीच कुलवालोकी व कुसंगकी सेवा किया करता है (तत्र अन्यानी अभावं) उस संगतिसे अज्ञानी होकर कुभावमें मगन हो जाता है (त्रिभगी दल संजुत) ये तीन भेद आस्रवके कारण हैं।

भावार्थ—यहाँ कुलका गर्व, नीच कुल सेवा, कुसंगति सेवा, ये तीन कारण अज्ञानी होनेके व राग द्वेष, मोह विभावोंमें फँसनेके कारण बताए हैं। कुलका गर्व ऐसा होता है कि हम उच्च कुलके हैं, ऐसा मानकर गरीब दुःखी नीच कुलवालोका तिरस्कार करता है, उनको सताता है, उनसे बहुत काम लेकर कम मजदूरी देता है। हम ब्राह्मण हैं, हमको पाप क्षम्य है, ऐसा मानकर हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील व परिग्रहका संग्रह करता है, निर्बल होकर इन्द्रियोंके विषय सेवन करता है, पाप करनेमें शंका नहीं करता है। कोई-कोई ऐसा मान लेते हैं कि हम उच्च कुलके हैं, हम होको उच्च धर्म पालनेका अधिकार है, दूसरा कोई पाल नहीं सकता। कुलके गर्वसे उन्मत्त हो कठोर परिणाम रखके अपनी प्रशंसा व दूसरोकी निन्दा करता है। उच्च कुलके गर्वमें विनयसहित शास्त्रोका अध्ययन नहीं करता है। सच्चे साधुओका सग नहीं करता है। तत्वज्ञानको, आत्मज्ञानको न पाकर अज्ञानी बहिरात्मा रागी-द्वेषी बना रहता है। धनवश लोभी व मानी हो जाता है, धर्मकार्यसे विरोध रखता है, पापमें लक्ष्मी खर्च करता है।

नीच कुलवाले उन्हीको कहा जाता है जो लोकनिंद्य काम सदा करते हैं। जैसे मदिरा पीते है, भक्ष्य अभक्ष्यका, स्नान-शौचका, वाक्य-कुवाक्यका, कृत-अकृत्यका विवेक नहीं रखते हैं। ऐसे नीच कुलवालोकी संगतिसे अविवेक बढ़ता है। आप भी निंद्य आचरणी हो जाता है। राग, द्वेष, मोहको बढा लेता है। कुसग सेवा प्राणीको महापापी बना देती है। जुआ खेलना, मासभक्षण, मदिरापन, चोरी, शिकार, वेश्यासेवन, परस्त्रीसेवन ये सातों ही व्यसन कुसंगतिसे ही सीखनेमें आते हैं। भाँग पीना, तम्बाकू पीना, चौपट, शतरज-ताश खेलना, बकवाद करना, पर-

निन्दा, आत्म प्रशंसा करना, विकथाएं करना, सब कुसंगतिसे आ जाती हैं। इसलिये उपदेश है कि कर्मोंके आस्रवके दोषसे बचनेके लिये अपने कुलका व ऊँचपनेका घमण्ड न करके शास्त्र ज्ञान प्राप्त करे, नीच व कुसगकी संगति टाले। सज्जनोंकी, विद्वानोंकी, धर्मात्माओंकी, गुणवानोंकी सगति सदा रक्खे। सत्संगतिसे गुणोंकी वृद्धि होती है, कुसंतिसे औगुणोंकी वृद्धि होती है। नीम वृक्षकी छायामें लाभ होता है, बबूलको छायामें दोष होता है। मानवको उचित है कि या तो एकान्त सेवन करे, सच्चे शास्त्रोंकी संगति करे या धर्मात्मा सज्जनोंकी, सुचारित्रवालोंकी संगति करे। मधुकी मक्षिकाके समान गुणोंका सग्रह करना उचित है। जोंकके समान औगुण संग्रह ठीक नहीं। मिथ्यात्व, अन्याय व अभक्ष्य ये तीन महान् दोष हैं, जो कुसंगतिसे ही प्राप्त होते हैं। बालक व बालिकाओंको कुसंगतिसे बचाकर धर्मशास्त्रोंका ज्ञान देना चाहिये। सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके कारणभूत जो विशुद्धिलब्धि है। उसकी प्राप्ति सत्संगति व सुशिक्षासे ही होती है।

सारसमुच्चयमें कुलभद्राचार्य कहते हैं—

कुसंग सदा त्याज्यो दोषाणां प्रविधायक। स गुणोऽपि जनस्तेन लघुता याति तत्क्षणात् ॥ २६९ ॥
सत्सगो हि बुधै कार्यं सर्वकालसुखप्रद। तेनैव गुरुता याति गुणहीनोऽपि मानव ॥ २७० ॥
सद्गुणै गुरुता याति कुलहीनोऽपि मानव। निर्गुण सकुलाढ्योऽपि लघुता याति तत्क्षणात् ॥ २७४ ॥

भावार्थ—दोषोंको बढानेवाला या देनेवाला कुसग है। कुसंगतिका त्याग सदा ही करना चाहिये। कुसंगतिसे गुणवान मानव भी क्षणभरमें लघुताको पा लेता है। सर्व काल सुखदायी सत्सग बुद्धिवानोंको सदा कर्तव्य है जिससे गुणहीन भी मानव बड़ेपनेको या गुणपनेको प्राप्त हो जाता है। कुलहीन भी मानव सत्संगतिसे सच्चे गुणोंको पाकर महान्पनेको प्राप्त हो जाता है। यदि गुणहीन हो तो ऊँचे कुलका मानव भी क्षणमात्रमें लघुताको पा जाता है। जगत्मे गुण ही पूज्य है। यमपाल चाण्डालकी महिमा शास्त्रोंमें इसीलिये की है कि उसने अहिंसाव्रतको प्राण जाने तक भी पाला था। परस्त्री हरणके कारण त्रिखण्डी रावण ऐसे महान् पुरुषकी निन्दा की गई है। धर्मात्मा चारुदत्त सेठ वेश्याकी सगतिसे भ्रष्ट हो गया। विद्युच्चर चोर जम्बूस्वामीकी सगतिसे साधु हो गया। एक सत्यवादी व सम्यग्दृष्टी चाण्डालसे असत्यवादी व मिथ्यादृष्टी ब्राह्मण, क्षत्री या वैश्य कभी ऊँचा नहीं माना जा सकता है।

---

१५. अनृत, अचेत, परिनै—ये तीन भाव

अनृत अचेत दिष्टं तं, परिणामं यत्र तिष्टते।
अन्यानी मूढ दिष्टी च, मिथ्या त्रिभंगी दलं॥ २३॥

अन्वयार्थ—(अनृत अचेत दिष्ट त) मिथ्यात्वी व अज्ञानी देखे जाते हैं (यत्र परिणाम तिष्ठते) मिथ्यात्व व अज्ञानमें ही उनका परिणाम या वर्तन हो जाता है (अन्यानी मूढ दिष्टी च) ऐसे अज्ञानी मूढ़ श्रद्धावाले तथा वैसे आचरण करनेवाले (मिथ्या त्रिभंगी दलं) मिथ्यामार्गी हैं, ये तीनों ही पापास्रवके पात्र है।

भावार्थ—निसर्ग या स्वभावसे होनेवाला मिथ्यात्वभाव सर्व संसारी जीवोंके अनादिकालसे है। एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय पर्यन्त सर्व जीव जिस शरीरको प्राप्त करते हैं, उसी शरीरमें आपापना मान लेते हैं, शरीरसे भिन्न कोई अमूर्तिक ज्ञानमयी आत्मा है ऐसी प्रतीति उनको नहीं होती है। ऐसे मिथ्यात्वी अधिक ज्ञानी होते हुए, मिथ्याभावमें ही रमण किया करते हैं। जितनी इन्द्रियाँ जिस शरीरमें होती हैं उतनी इन्द्रियोंकी इच्छाएँ उनके उपजती हैं व उनकी पूर्ति करनेमें ही निरन्तर उद्यम रहता है। यदि इच्छित विषय मिल जाते हैं तब सुख मान लेते है। यदि नहीं मिलते हैं व बाधा हो जाती हैं तब दुःख भोगते हैं। असैनी पंचेन्द्रिय पर्यन्त विचार करनेकी शक्ति नही होती है। अज्ञान व मिथ्यात्व सहित चारित्र बना रहता है। सैनी पंचेन्द्रियके विचार करनेकी शक्ति होती है। तिर्यञ्चोंमें क्वचित् कदाचित् किसीको पूर्व-जन्म संस्कारसे समझनेकी शक्ति होती है। सैनी पंचेन्द्रिय मानव भले प्रकार समझ सकते है, उन मानवोंमें भी धर्म समझने लायक देश, कुल, बुद्धि व साताकी प्राप्ति होना दुर्लभ होता है। बड़े भाग्यसे उत्तम संयोग मिलते हैं। तो भी मिथ्यात्वके मद-में चूर मानव शरीर व विषयोंमें लीन रहते हुए धर्मकी कुछ भी चिन्ता नहीं करते हैं। ऐसे मानव भी पशुतुल्य विषयभोगको ही ध्येय बनाकर जीवन बिताते हैं। ऐसे मानवोंका मानव-जन्म वृथा ही चला जाता है। वे पापास्रव करते हुए नरक व तिर्यञ्चगति बाँध लेते हैं। आत्मज्ञानका लाभ जिस मानवको नहीं प्राप्त हुआ वह मूढ़बुद्धि मिथ्या आचरण करके जन्मको धर्म बिना निरर्थक खोता है। मिथ्यात्व व अज्ञानके समान कोई हमारा शत्रु नहीं है। ऐसे अज्ञानी मानव विषयोंके दास बने रहते हैं व धनकी प्राप्तिके लिए दूसरोंको ठगनेमें जरा भी ग्लानि नहीं मालूम करते हैं। अचेतपना व मिथ्यापना एक अन्धकार है, जहाँ अपना निजपद जो अपने ही

पास है व परमानन्दमय है वह बिलकुल नहीं दिखता है। वे अतीन्द्रिय आनन्दको जो अपने आत्माके ही पास है आत्माका ही स्वभाव है, उसे न पहचानते हुए पशुके समान विषयान्ध हो जीवन बिताते है। सारसमुच्चयमें कहा है—

ससारे पर्यटन् जन्तुर्बहुयोनिसमाकुले। शारीर मानस दुःख प्राप्नोति बत दारुण ॥ २ ॥
आर्त्तध्यानरतो मूढो न करोत्यात्मनो हित। तेनासौ सुमहत्क्लेश परत्रेह च गच्छति ॥ ३ ॥
स्वर्गमोक्षोचित नृत्व मूढैर्विषयलालसै। कृत स्वल्पसुखस्यार्थं तिर्यङ्नरकभाजनम् ॥३१८॥
सामग्री प्राप्य सम्पूर्णा यो विजेतु निरुद्यम। विषयारिमहासैन्य तस्य जन्म निरर्थकम् ॥३१९॥

भावार्थ—खेदकी बात है कि यह प्राणी नाना योनियोंमें जन्म लेकर संसारमें शारीरिक व मानसिक दुःख भोगा करता है। इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, पीड़ा, चिन्तवन व निदान इन चार प्रकारके आर्त्तध्यानमें लीन होकर मूढ़ प्राणी अपने आत्माका हित नही करता है। इसलिये इस जन्ममें व परलोकमें महान् कष्टको पाता है। जिस मानव जन्मको पाकर स्वर्ग व मोक्षकी प्राप्ति की जा सकती थी उस मनुष्य जन्मको जो मूढ़ पुरुष विषयोकी लालसामें तुच्छ सांसारिक सुखके लिये खो देते हैं वे मरकर तिर्यञ्च व नरकगतिमें चले जाते हैं। जिस मानवने आत्म-कल्याण करने योग्य सर्व सामग्री पाई है, फिर भी जो इन्द्रिय विषयरूपी शत्रुकी महा-सेनाको जीतनेका उद्यम नही करता है, उस मानवका जन्म वृथा चला जाता है।

---

१६. अशुद्ध, अभाव, मिश्र—ये तीन भाव

असुद्ध अभाव संजुत्तं, मिस्र भाव सदा रता।
संसारं भ्रमनं बीजं, त्रिभंगी असुह उच्यते ॥ २४ ॥

अन्वयार्थ—(असुद्ध अभाव सजुत्त, मिस्र भाव) अशुद्धभाव व नास्तिकभाव तथा मिश्रभाव इन तीन भावोमें (सदा रता) सदा लवलीन होनेवाले जीव (ससार भ्रमन बीज) ससारके भ्रमणके बीज हैं (त्रिभगी असुह उच्यते) ये तीन भाव अशुभ कहे जाते हैं।

भावार्थ—यहाँ इन तीन भावोका अभिप्राय ऐसा समझमें आता है कि जो व्यवहार सम्यग्दर्शनके धारक हैं, परन्तु निश्चय सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त हुए हैं उनके सर्व भाव मिथ्यात्व सहित होनेसे अशुद्ध कहे जाते हैं। मन्द कषायसे होनेवाले शुभ भाव तथा तीव्र कषायसे होनेवाले अशुभ भाव सब अशुद्ध भाव हैं। इस प्रकारके भावोमें सर्व ही जैन तत्त्वके ज्ञाता मिथ्यादृष्टि गर्भित हैं चाहे वे गृहस्थ हों या साधु

हों। वास्तवमें शुद्धात्मानुभव ही एक शुद्धभाव है, वही सम्यग्दर्शन है, वही सम्यग्ज्ञान है, वही सम्यक्चारित्र है। निश्चय रत्नत्रयका लाभ इनको नहीं है, व्यवहार रत्नत्रय तो है। निश्चयके बिना सम्यक् व्यवहार भी वह नहीं है। तथापि नास्तिक्य भाव नहीं कहा जायेगा। क्योंकि उनको जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश तथा काल इन छः द्रव्योंकी श्रद्धा है। यद्यपि अनुभव पूर्ण नहीं है तथापि वह जैनागमके अनुसार यथार्थ जानता है, उसका चारित्र भी यथार्थ है। परन्तु शुद्ध भावको यह ग्यारह अंग तक पढ़कर भी नहीं प्राप्त कर सकता है। इसके जितने भी भाव हैं, वे मिथ्यात्व मिश्रित होनेसे अशुद्ध हैं। ऐसा भावधारी भी संसार भ्रमण करेगा।

दूसरा अभाव रूप भाव नास्तिक्यभाव है। ऐसा प्राणी आत्माके अस्तित्वमें श्रद्धान नहीं रखता है। केवल जड पदार्थ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुको ही मानता है, इन्हींके संयोगसे ज्ञानका होना मानता है। यह चार्वाक मतका धारी है या कोई शून्यवादी भी इसमें गर्भित है जो कुछ भी वस्तुकी सत्ता नहीं मानता है। इस अभावमें वे सब भी गर्भित हैं जो बिलकुल अज्ञानी हैं, धर्मकी आवश्यकता भी नहीं समझते हैं, इनका ध्येय केवल इस जीवनको जिस तरह हो बिताना होता है। वे लोक-लाजसे बुराईसे बचते व अच्छा काम करते हैं। सामाजिक निन्दाका भय जहाँ नही होता है ऐसे धर्मविहीन लोग तीव्र विषय भोगोंमें फँस जाते हैं। पाँच इन्द्रियोंके भोग रच-पचकर करते हैं, अन्यायसे भी धन कमा लेते हैं। चतुराईसे परका धन छीन लेते है। हिंसादि पाँचों पापोंमें स्वच्छन्द हो फँसे रहते हैं। मांसाहारसे ग्लानि नहीं करते हैं। शिकार खेलनेमें आनन्द मानते हैं। नास्तिकभावधारीको धर्मकी बात ढकोसला दीखती है। नर्क-स्वर्ग पर, ईश्वर पर उसका विश्वास नहीं होता है।

मिश्रभाव वह है जहाँ आस्तिक व नास्तिक दोनोंका मिश्रित भाव है। उनको भी शुद्ध आत्माका अनुभव रूप शुद्धभावका लाभ नही है। इस मिश्रभावमें अनेक भाव गर्भित हो जाते हैं जो आत्माकी सत्ता तो मानते हैं परन्तु उसकी भिन्न सत्ता नहीं मानते हैं। ब्रह्मकी परछाईं मात्र मानते हैं, परलोक मान करके भी मुक्तिमें उसका अभाव हो जाता है। जो जीव कहलाता था वह ब्रह्मका अंश था उसीमें समा जाता है या इसमें वे मतधारी भी गर्भित हैं जो आत्माको नित्य मानते हैं, परलोक मानते हैं परन्तु उसे अल्पज्ञ ही मानते हैं। वह कभी सर्वज्ञ परमात्मा नहीं हो

सकता है ऐसा मानते हैं। इसमें ऐसे मतिधारी भी हैं जो परमात्माको तो मानते और आत्माको भी मानते हैं परन्तु परमात्माको कर्ता व फलदाता एक शासक मान हैं। उसकी इच्छा बिना आत्माका कुछ काम नहीं मानते हैं। शुद्ध होनेपर भी व परमात्माके बराबर नहीं होगा। कोई मतधारी आत्माको मान करके भी ज्ञानसे भि मानके दोनोंका समवाय सम्बन्ध मानते हैं। आत्माको स्वाभाविक ज्ञानमय नि नहीं मानते हैं। मिश्रभावमें ये सब दर्शन गर्भित हैं जो श्री सर्वज्ञ वीतराग श्रीजिनेन् के आगमके अनुकूल तत्त्वोका स्वरूप न कहकर अन्य प्रकारसे कहते हैं, परन्तु प लोकको मानते हैं, इससे सर्वथा नास्तिक नहीं हैं। जैनागमके अनुसार आत्म स्वभावसे परमात्मा स्वरूप है।

हर एककी सत्ता अनादि व अनन्त बनी रहती है। जगत् अकृत्रिम ं अनादि, अनन्त है, शुद्धात्मा व परमात्मा निर्विकार कृतकृत्य परका कर्ता भोक्ता न है। आत्मा कर्म पुद्गलोंसे पाप-पुण्यका बन्ध करते हुए भवमें भ्रमण करता है बन्धसे छूटनेपर मुक्त परमात्माके समान हो जाता है। कर्मबन्ध सहित आत्म अशुद्ध है। तो भी निश्चयनयसे अपने स्वभावमें होनेसे शुद्ध है। आप ही यह आत्म अपना संसार बनाता है, आप ही मुक्त होता है। मोक्षका मार्ग निश्चय रत्नत्रयरू एक शुद्धात्मानुभव है। सम्यग्दर्शनसे रहित सर्व ही ससारी जीव अशुद्ध भावधा है या नास्तिक भावधारी है या मिश्रित भावधारी है। ये तीनों ही प्रकारके भा कर्मास्रवके द्वार हैं। श्रीपद्मनन्दिमुनि एकत्वसप्ततिमें कहते हैं—

अजमेक परं शान्तं सर्वोपाधिविवर्जितम्। आत्मानमात्मना ज्ञात्वा तिष्ठेदात्मनि य स्थिर ॥ १८
स एवामृतमार्गस्य स एवामृतमश्नुते। स एवार्हन् जगन्नाथ स एव प्रभुरीश्वर ॥ १९

भावार्थ—जो कोई निश्चयसे अपने आत्माको अजन्मा, एक अकेला, ज्ञान स्वरूप, रागादि उपाधिसे रहित आत्मा हो द्वारा जानकर आत्मामें तिष्ठता है वह मोक्षमार्गमें चलनेवाला है, वही आनन्दरूपी अमृतको भोगता है, वही पूज्यनीय, वह जगतका नाथ है, वही प्रभु, वही ईश्वर है। जैन सिद्धान्तमें आत्मा हो के ध्यान आत्मा शुद्ध होता है, ऐसा बताया है।

---

१७. आलाप, प्रपंच, मिश्र—ये तीन भाव

आलाप परपंच कृत्वा, विनास दृष्टी रतो सदा।
सुद्ध दृष्टि न हृदये चिंते, त्रिभंगी थावरं पतं ॥ २५ ॥

अन्वयार्थ— (आलाप परपच कृत्वा) **बकवाद करके, कपट करके या कपट और बकवाद दोनों करके** (विनास दृष्टि रती सदा) **मिथ्यादृष्टि सदा दूसरेके व अपने विनाश के विचारमें लगा रहता है** (हृदये सुद्ध दृष्टि न चिंते) **अपने मनमें कभी शुद्ध सम्यग्-दर्शनका विचार नहीं करता है** (त्रिभगी थावरं पत) **इन तीन भावोंसे स्थावर योनि-का पात्र हो जाता है ।**

भावार्थ—आलाप बहुत वार्तालापको कहते हैं । प्रयोजनवश कहना मानवका कर्तव्य है । प्रयोजनसे अधिक किसी बातको बहुत बढ़ाकर कहना अपने जीवनके समयको नाश करना है व दूसरोको सुनाकर उनके जीवनके समयको बरबाद करना है । बहुतसे मानवोको वृथा बकवाद करनेमें ही आनन्द आता है । वे गोष्ठीमें बैठ-कर प्रयोजन बिना गप्पें कहा करते हैं । धर्म व परोपकारकी चर्चाको नहीं करके अधर्मभावको बढानेवाली कथाएं किया करते हैं । इन कथाओंसे अपना व दूसरोका मन रंजायमान करके राग, द्वेष, मोहको बढ़ा लेते हैं । सांसारिक आलाप अनेक प्रकारके होते हैं । चार विकथाएं प्रसिद्ध हैं—

(१) स्त्रीकथा—स्त्रियोंके शृंगार, हावभाव, आभूषण, वस्त्र, भोग विलास-की चर्चा करके वेश्याओंमें व परस्त्रियोमें अपना व दूसरोंका भाव रमा देना सो स्त्रीकथा है ।

(२) भोजनकथा—स्वादिष्ट भोजनोंकी चर्चा करके मनको प्रसन्न करना । अनेक प्रकारके रसीले पदार्थोंके बनानेकी व खानपानकी ऐसी चर्चा करनी जिससे रसीले पदार्थोंकी तरफ अपनी व दूसरोकी लोलुपता बढ़ जावे सो भोजनकथा है ।

(३) देशकथा—नगर, ग्राम, उपवन, वन, द्वीप, नदी, समुद्र आदि स्थानोंमें क्या-क्या सुन्दरता है व क्या-क्या व्यापार वा लेनदेनमें किसने क्या-क्या कपट या चतुराई की है व कौन माल कहाँसे आता है, कहाँ बिकता है व देशमें कहाँ डाका पड़ा व कहाँ किसने मारा पीटा आदि देशमें गढ़ी हुई घटनाओको इस तरह रंजायमान होके कहना जिससे अपने व दूसरोंमें राग-द्वेष उत्पन्न हो जावे, आरम्भ परिग्रहके चिन्ता बढ जावे, दूसरोंको ठगनेके भाव पैदा हो जावें सो सब देशकथा है । जहाँ परोपकार व निःस्वार्थ सेवाके भावसे देशकी दशापर व स्वदेश व परदेशकी व्यवस्था-पर विचार किया जावे वह देशकथा आलाप नहीं है, वह हितचिन्तन रूप है, वह नाशकारी कथा नहीं है ।

(४) राजाकथा—राजाओंके ऐश्वर्य, वस्त्राभूषण, वाहन, सेना, रानी, बाग, महल, रूप व उनके द्वारा किये गये विषयभोगोकी चर्चा इस तरह करना कि अपना व दूसरोका मन भोगोके लिये व पाँचो इन्द्रियोंके विषयोके सेवनके लिये उत्सुक हो जावे, सो राजाकथा है। युद्धकी मनरजक कथा करके हिंसामें आनन्द मानना। राजाओमें वैर विरोध कैसे हो ऐसी चर्चा करके परस्पर युद्ध करानेका मंतव्य बनाना। यह सब स्वपर विनाशकारी आलाप है।

जिस वार्तालापसे धर्म व परोपकार तो कुछ न हो केवल राग-द्वेष मोह बढ़े, शृगार रसकी पुष्टि हो, वह सब आलाप स्वपर दुःखदायी है। कामभाववर्द्धक नाटक, खेल, तमाशे बनाना, देखना, दिखाना व ऐसे उपन्यास, नाटक पढ़ना-पढाना सब मिथ्या आलाप हैं—जीवनको धर्ममार्गसे हटानेवाला है। अनेक मानव मित्रोकी गोष्ठी रखते हैं तब ऐसी वार्तालापमें समय व शक्तिका नाश करके जीवन नष्ट करते हैं। धर्मकी बात सुननेके लिये व कहनेके लिए समय न होनेका बहाना करते है, ऐसे आलापके करनेवालोंके मनमे विषय कषायकी भावनाएँ सदा घूमा करती हैं, उनको कभी मनमें यह चिन्ता नहीं उठती है कि मै कौन हूँ, कैसे जन्मा हूँ, मरण क्या वस्तु है, सुख-दुख क्या है, क्रोधादि क्या वस्तु है, जाननेवाला कौन है, शुद्धात्माका कभी विचार नहीं उठाता है।

(२) प्रपंच—दूसरा समय, शक्तिका घातक व अपना व दूसरोका नाशक कपट जाल है। कपटीकी भावना अपने विषयोके लोभवश दूसरोको विश्वास दिलाकर उनके ठगनेकी रहती है। परका धन कैसे आवे, परस्त्री कैसे वश हो, परका देश कैसे अपने आधीन हो जावे, इस तरह अन्यायपूर्वक स्वार्थसाधनके लिये कपटजालका विचारना, व कपटरूप वचन कहना व कपटभरी क्रिया करना प्रपंच है। झूठा कागज लिखना, झूठा हिसाब बनाना, धरोहरको झूठा कहकर ले लेना, चोरी करना-कराना, वध करनेके लिये कपट रचना, कपटसे शिकार खेलना, जुआ रमना, निरंतर विचार करना कि किस तरह दूसरोको अपने विश्वासमें फँसाकर अपना स्वार्थ साधूँ, परकी हानिका विनाशका कुछ भी दर्द न रखना, अनाथ विधवाओका, भोले भाइयोका धन कैसे हरना, परस्पर भाइयोमें द्वेष कराकर—पिता पुत्रमें अनमेल कराकर, स्वामी सेवकमें द्विधा भाव कराकर, अदालतमें मुकद्दमें चलवा देना, कपटसे धन कमाना यह मायाचार यहाँ भी परिणामोको कुटिल रखता है व तिर्यञ्च आयुका

बन्ध कर देता है, प्रायः स्थावर एकेन्द्रिय हो जाता है, जहाँ असमर्थ होकर शारीरिक कष्ट सहना पड़ता है।

(३) प्रपञ्च और आलापका मिश्रभाव—जहाँ केवल मनका रंजायमान करना है, ठगनेका भाव नहीं है वह तो आलाप भाव है। जहाँ परको जालमें फँसानेके लिये नाना प्रकार बकवाद व मीठी-मीठी बातें बनाई जावें, सदा ही स्वार्थ साधनके भावोंसे कपटपूर्ण घातक वार्तालाप की जावे वह प्रपञ्च सहित आलाप है। प्रपञ्च सामान्य है, प्रपञ्च सहित आलाप विशेष है। कोई-कोई मानव कथाओंको बनाकर कहनेकी ऐसी चतुराई रखते है जिससे बड़े-बड़े प्रवीणोंको भी वे जालके मोहमें फँसा लेते हैं, उनको ठगकर बड़ा भारी हर्ष किया जाता है। झूठा मुकद्दमा बनाकर, झूठी वार्तालाप व वाद-विवादसे झूठको सच प्रमाणित कर देना प्रपचालाप है। कहीं-कहीं मिथ्या धर्मको फैलानेके लिये कपटपूर्ण कथाएँ रची जाती हैं, पढ़ी व सुनाई जाती हैं। ऐसी कथाओ व शास्त्रोसे ही पशुबलिमें धर्मकी वासना फैल गई है। रागवर्द्धक कृत्योंको धर्मकृत्य मान लिया जाता है। यह प्रपञ्चालाप मिथ्यादर्शनको प्राप्त कराता है। इन भावोमें जो रात-दिन फँसे रहते हैं वे कभी भी अपने आत्माके स्वभावकी चिन्ता नहीं कर पाते हैं। इन तीनों प्रकारके भावोसे घोर पापका बन्ध करते हैं। अधिकतर स्थावर योनिमें जाकर निगोद साधारण वनस्पतिकाय हो जाते हैं। जहाँसे फिर दीर्घकालमें निकलना भी कठिन हो जाता है।

श्री ज्ञानभूषण भट्टारक तत्त्वज्ञानतरंगिणीमें कहते हैं—

दृश्यते गन्धनादावनुजसुतसुताभीरुपित्रादिकासु,
ग्रामे गेहे खभोगे नगनगरखगे वाहने राजकार्ये।
आहार्येऽङ्गे वनादौ व्यसनकृषिमुखे कूपवापीतडागे,
रक्ताश्च प्रेषणादौ यशसि पशुगणे सिद्धचिद्रूपके न ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस संसारमें कोई मनुष्य तो सुगन्धित पदार्थोंमे रागी हैं। बहुतसे छोटा भाई, पुत्र, पुत्री, स्त्री, पिता, माता, घर, इन्द्रियभोग, पर्वत, नगर, पक्षी, वाहन, राजकार्य, भक्ष्य पदार्थ, शरीर, वन, सात व्यसन, खेती, कुआँ, बावड़ी, सरोवर आदिसे राग करनेवाले हैं। बहुतसे मनुष्य वस्तुओंको इधर-उधर भेजनेमें, यश-लाभमें तथा पशु पालनमें मोह करनेवाले है। संसार प्रपञ्चमें फँसे हैं यही आलाप है, परन्तु शुद्ध आत्माके स्वरूपके प्रेमी कोई नही।

१८. संग, कुसंग, मिश्र—ये तीन भाव

संगं मूढ मयं दिष्टाः, कुसंगं मिश्र पस्यते।
अलहंतो न्यान रूपेन, मिथ्यात रति तत्पराः॥ २६ ॥

अन्वयार्थ—(मूढ मय सग दिष्टा) मूढ़ताकी बुद्धिसे परिग्रहमें मोहित होनेवाले (कुसगे मिश्र पस्यते) या अन्याय रूप परिग्रहमें रति करनेवाले तथा न्याय रूप व अन्याय रूप परिग्रहमें मोहित होनेवाले (न्यान रूपेन अलहतो) सम्यग्ज्ञानको न पाते हुए (मिथ्यात रति तत्परा) मिथ्यादर्शनकी प्रीतिमें तत्पर रहते हैं और पापास्रव करते हैं।

भावार्थ—जहाँ तक सम्यग्दर्शन नहीं है वहाँ तक मूढ़ बुद्धि है। मिथ्यात्वभावसे भी तीन प्रकार परिग्रहका ग्रहण होता है—न्याय पूर्वक, अन्याय पूर्वक, दानो रूपसे। सम्यक्त्वके भी गृहस्थावस्थामें परिग्रहका न्यायपूर्वक ग्रहण है। सर्व हो परिग्रह बन्धमें निमित्त कारण हैं। परिग्रह २४ प्रकार को है—१० प्रकारकी बाहरी व १४ प्रकारकी अन्तरंग। यद्यपि परिग्रहका लक्षण मूर्च्छा है या ममत्वभाव है, बाहरी परिग्रह मूर्च्छा होनेमें निमित्त है इससे परिग्रह कहलाती है।

श्री पुरुषार्थसिद्धयुपायमें श्री अमृतचन्द्रसूरि कहते हैं—

मूर्च्छालक्षणकरणात्सुघटा व्याप्तिः परिग्रहत्वस्य।
सग्रन्थो मूर्च्छावान् विनापि किल शेषसगेभ्य ॥ ११२ ॥
यद्येव भवति तदा परिग्रहो न खलु कोऽपि बहिरङ्ग।
भवति नितरा यतोऽसौ धत्ते मूर्च्छानिमित्तत्वम् ॥ ११२ ॥

भावार्थ—परिग्रहका लक्षण मूर्च्छाभाव करना यथार्थ है। बाहरी परिग्रहके बिना भी जिसके परिणामोंमें ममत्व भाव है वह परिग्रहवान है। इससे ऐसा न समझना कि बाहरी परिग्रह ही नही है। बाहरी परिग्रह अन्तरंगमें मूर्च्छा पैदा करनेमें निमित्त कारण है। इसलिये बाहरी परिग्रह भी प्रसिद्ध है। बाहरी परिग्रह १० प्रकार ये हैं—क्षेत्र (खुली भूमि), वास्तु (घर), हिरण्य (चाँदी), सुवर्ण (सोना जवाहर), धन (गौ भैंस), धान्य, दासी, दास, वस्त्र, भांड (बर्तन) चौदह प्रकार अन्तरग परिग्रह हैं—मिथ्यादर्शन, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद।

परिग्रहका लेश मात्र भी संसर्ग बन्धका कारण है, इसलिये दशवें सूक्ष्मसां-

पराय गुणस्थान पर्यन्त कर्मोंका सांपरायिक बन्ध होता है। न्यायपूर्वक धनादि परिग्रह-का संग्रह, स्वपरको कम हानिकारक है। अन्यायसे धनादिका संग्रह करना व पर-वंचकपनेके भाव रखना, बहुत ममताभाव रखके पुत्रादि कुटुम्बके लिये अनुचित काम कर लेना व धर्मकार्योंमें हानि पहुँचा देना, दूसरे प्राणियोंको घोर कष्ट पहुँचाना, अन्यायका धन संग्रह तीव्र पाप बन्धका कारण है। कोई प्राणी न्यायसे भी धन कमाते हैं व अन्यायसे भी धनादि संग्रह करते हैं। व्यापारमें लेनदेनमें तो न्यायसे वर्तते हैं परन्तु अवसर पाकर विधवाओंका धन अन्यायसे छीन लेते हैं व झगड़ा करके अपने हकसे अधिक धन दूसरोंसे लेते हैं, हिसाब-किताबमें चोरी करते हैं, राज्य महसूल नहीं देते हैं, खरीमें खोटी वस्तु मिलाकर खरी कहकर बेचते हैं, भोले ग्राहकको ठग लेते हैं, चतुरको ठीक-ठीक माल देते हैं। कभी न्यायसे कभी अन्यायसे धन संग्रह करते हैं, मिश्रभावमें रत है। जिनको सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञानका लाभ नहीं है वे परिग्रहके भीतर मोही होते हैं। प्राप्त परिग्रहकी रक्षामें व अप्राप्तके लाभमें बहुत ही ममता रखते हैं। परिग्रह बढ़ता हुआ देखकर बड़े राजी होते हैं। परिग्रहानन्दी रौद्रध्यान करते रहते हैं, भोगोंकी अति लालसाके कारण भोग सामग्रीमें व उसके उत्पादक धनमें तीव्र लालसा रखते हैं। वे अधिक धनी होनेमें ही अपना उच्चपना मानते है। अपनेसे अधिक धनवानोंमें ईर्षाभाव रखते हैं, धनकी तृष्णा कभी कम नहीं कर पाते हैं। जैसे-जैसे धनका लाभ होता है, तृष्णा अधिक धन पानेकी बढ़ जाती है। परिग्रहकी चिन्तामें रात-दिन लगे रहनेसे वे धर्मकी कथनी सुनते ही नहीं हैं। यदि सुनते हैं तो ध्यान नहीं लगाते हैं। धर्मकी तरफ बिलकुल भी लक्ष्य नहीं देते हैं। कितने ही धनका संग्रह करनेमें ही लगे रहते हैं—न धनको खरचते हैं न दानमें लगाते हैं। केवल एकत्र करनेमें, रक्षा करनेमें लगे रहते हैं, बहुत मूर्च्छासे नरकायुको बाँध लेते है। सम्यग्दृष्टी गृहस्थ परिग्रह रखते हुए भी आसक्त नहीं होता है, पुण्यका फल समझकर उसके द्वारा दान, धर्म व परोपकार करता है। परिग्रहके ममत्वमें पड़कर धर्मकार्यका नाश नहीं करता है, सन्तोषी रहता है। धनादि-के वियोगमें पुण्य क्षय मानकर आर्त्तध्यान नहीं करता है। जब पूर्ण वैराग्य होता है तब जीर्ण तृणके समान परिग्रहका त्याग कर देता है। परिग्रह रहितता ही पूर्ण वीतराग होनेके लिये आवश्यक है।

सारसमुच्चयमें कहा है—

संगात्संजायते गृद्धिर्गृद्धौ वाञ्छति संचयम्। सञ्चयाद्वर्धते लोभो लोभाद्दुःखपरंपरा ॥ २३२ ॥

अर्थो मूलमनर्थानामर्थो निवृत्तिनाशनम् । कषायोत्पादकश्चार्थो दुःखाना च विधायकः ॥ २३६ ॥
तृष्णान्धा नैव पश्यन्ति हित वा यदि वाहितम् । सन्तोषाञ्जनमासाद्य पश्यन्ति सुधियो जनाः ॥२३९॥
तृष्णानलप्रदीप्ताना सुसौख्य तु कुतो नृणाम् । दुःखमेव सदा तेषा ये रता धनसंचये ॥ २४१ ॥

भावार्थ—परिग्रहके होनेसे लोलुपता होती है, लोलुपता होनेसे अति परिग्रहका सचय चाहता है, परिग्रहके अधिक संचयसे लोभ बढता है, लोभसे परम्परा दुःख होता है। धन सर्व अनर्थोंका मूल है, धन मोक्षका बाधक है, धन कषायोको पैदा करनेवाला है, दुःखोको जन्म देनेवाला है, धनकी तृष्णामें जो अन्धे हैं वे स्वपर हित या अहितको नही देखते हैं तब बुद्धिमान जन सन्तोषरूपी अंजन लगाकर हित-अहितका विचार रखते हैं। जो मानव तृष्णाकी आगमें जलते हैं उनको सुख कहाँसे हो सकता है ? जो धनके संचयमें रत हैं उनको सदा ही दुःख है। जो आस्रवसे बचना चाहे उनको परिग्रहका सग त्यागना चाहिये। जबतक न छूट सके तबतक न्यायसे धनादि ग्रहण करना चाहिये, अन्यायका धन कभी नहीं लेना चाहिये। धन होनेपर उदारभाव रखकर दान व परोपकारमें लगाना चाहिये। कम व अधिक पुण्यके उदयसे जो मिले उसमें सन्तोष रखना चाहिये।

---

१९. आशा, स्नेह, लोभ—ये तीन भाव

आशा स्नेह आरक्तं, लोभं संसार बंधनं।
अलहन्तो न्यानरूपेन, मिथ्या माया विमोहितं ॥ २७ ॥

अन्वयार्थ—(आशा स्नेह आरक्तं) जो आशा तृष्णामें व संसारके प्रेममें लवलीन रहते हैं (लोभ ससार बन्धन) संसारका बन्धन करनेवाले लोभमें पड़ जाते हैं (अलहन्तो न्यायरूपेन) आत्मज्ञानको नहीं पाकर (मिथ्या माया विमोहित) मिथ्यादर्शन तथा मायाचारसे मूढ़ बने रहते हैं।

भावार्थ—यहाँ आशा, स्नेह, लोभ इन तीन भावोंको कारण—कार्यकी अपेक्षासे बताया है। तीनो ही लोभ कषाय की ही पर्याय हैं। इन्द्रियोंके भोगोंकी तृष्णाको आशा कहते हैं। यह भीतर छिपी हुई रहती है। हरएक प्राणी तीन लोककी सम्पदाको पावे तो भी न अघावे इतनी अधिक तृष्णा है।

श्री आत्मानुशासनमें गुणभद्राचार्य कहते हैं—

आशागर्त्त प्रतिप्राणि यस्मिन् विश्वमणूपमम् । कस्य किं कियदायाति वृथा नो विषयैषिता ॥ ३६ ॥
अन्धादय महानन्धो विषयान्धीकृतेक्षण. । चक्षुषान्धो न जानाति विषयान्धा न केनचित् ॥ ३५ ॥

भावार्थ—प्रत्येक प्राणीमें आशारूपी गड्ढा इतना गहरा है कि सर्व जगतकी सम्पदा उसके लिये एक परमाणुके बराबर है तब किसके पास कितनी आ सकती है। इससे तेरा विषयोंकी आशा करना वृथा ही है। आँखोंके होते हुए भी जो विषयोंमें अन्धा है वह आँख रहित अन्धेसे भी महान् अन्धा है। आँखसे अन्धा तो केवल जानता ही नहीं है। विषयोंके मोहमें जो अन्धा है वह तो बिलकुल नहीं समझता है। आशाकी दाहसे पीड़ित होकर इन्द्रियोंके विषयोंकी प्राप्तिके लिये आकुलित होता है। सांसारिक पदार्थोंमें धनादिमें तीव्र मोह रखता है। जिनसे कुछ भी स्वार्थ सधता जानता है उनसे स्नेह करता है। जैसे-जैसे सम्पदा मिलती है व इच्छित पदार्थ प्राप्त होते हैं, वैसे-वैसे लोभ कषाय बढ़ जाती है। तब धनादि पदार्थोंका वियोग असह्य हो जाता है। धनको व्यय करते हुए बड़ी बाधा मानता है। मिथ्यादृष्टी विषयोंकी आशासे जगतके सुन्दर भोगोंसे बहुत स्नेह रखता है। स्वर्गादिकी सम्पत्ति चाहता है। तीव्र लोभके वशीभूत हो, न्याय-अन्यायका विचार छोड़ बैठता है। लोभाधीन होकर जप, तप आदि भी साधन करता है कि मैं मर कर चक्री, नारायण, प्रतिनारायण, राजा, महाराजा हो जाऊँ। लोभ ही संसारका बन्धन है। चारों कषायोंमें गाढ़ कषाय लोभ है, लोभ सबके पीछे नाश होता है, लोभके कारण मायाचार करता है, कोई हानि पहुँचाता है, तब क्रोध करता है। धनादि होनेपर मान कर लेता है, लोभके वशीभूत होकर सर्व पापोंके करनेमें प्रवृत्त हो जाता है। अहंकार व ममकारमें फँसा रहता है। कुटुम्ब परिवारका तीव्र मोही हो जाता है। विषयांध होकर रातदिन मोहके कामोंमें लगा रहता है। अपने आत्माकी ओर कुछ भी विचार नहीं करता है। जिनवाणीको न पढ़ता है, न सुनता है। तत्त्वज्ञानको पाए बिना सम्यग्दर्शनको नहीं पैदा कर सकता है। तृष्णामें ही बिना पूरी किये हुए मरता है, दुर्गतिमें चला जाता है। ऐसा मोही बहुत सम्पत्तिवान होनेपर भी दुःखी रहता है। सन्तोषी परम सुखी है। खेद है कि वह अज्ञानी सन्तोषको नहीं पाता है। तृष्णानदीका पार वे ही पाते हैं जो सम्यग्ज्ञानी हैं व आत्मीक सुखके लाभ करनेवाले हैं। जैसा स्वयंभूस्तोत्रमें समन्तभद्राचार्य कहते हैं—

आयत्या च तदात्वे च दुःखयोर्दुस्तरा। तृष्णा नदी त्वयोत्तीर्णा विद्यानावा विविक्तया ॥ ९२ ॥

भावार्थ—तृष्णा नदी इस जन्ममें भी दुःखोंको पैदा करनेवाली है व परलोकमें भी दुःख देनेवाली है इसको पार करना बड़ा ही कठिन है। परन्तु हे भगवान् अर-

नाथ ! आपके वैराग्यपूर्ण आत्मज्ञानसे इसका पार पा लिया है। आपने तृष्णाको जीत लिया है। ज्ञानार्णवमें शुभचन्द्राचार्य कहते हैं—

अतृप्तिजनकं मोहदाववह्नेर्महेन्धनम्। असातसन्ततेर्बीजमक्षसौख्यं जगुर्जिनाः ॥ १३ ॥
वर्द्धते गृद्धिराश्रान्तं सन्तोषश्चापसर्पति। विवेको विलयं याति विषयैर्वंचितात्मनाम् ॥ १८ ॥

भावार्थ—यह इन्द्रियोंका सुख तृप्तिको नहीं देता है, मोहरूपी दावानलको बढ़ानेके लिये महान् इंधन है। असाताकी परिपाटीका बीज है, ऐसा जिनेन्द्रोंने कहा है। जिनका आत्मा विषयोंसे ठगाया गया है उनकी विषयलोलुपता निरन्तर बढ़ती जाती है, सन्तोष चला जाता है तथा विवेक भी भाग जाता है। अतएव आशा, स्नेह व लोभ त्यागने योग्य हैं। वे महान् आस्रवके कारण हैं। सम्यक्त्वी आशाको पार कर लेता है। यह विषयसुखको तुच्छ जानता है। आत्मीक सुख ही को उपादेय मानता है। वह सदा सन्तोषी रहता है। अधिक भोग सम्पदा मिले तो उन्मत्त नहीं होता है। कम मिले तो आकुलित नहीं होता है।

---

२०. लाज, भय, गारव—ये तीन भाव

लाज भयं हृदयं चिंते, गारव राग मोहितं।
सम्यक्त सुद्ध तिक्तंति, मिथ्या माया त्रिभंगयं ॥ २८ ॥

अन्वयार्थ—(हृदय लाज भय चिंत) जो मिथ्यादृष्टी अज्ञानी मनमे लोकलाजकी या किसी प्रकारके भयकी चिन्ता करते हैं (गारव राग मोहित) तथा अपने गौरव या अभिमानके रागसे मोहित हैं (सम्यक्त सुद्ध तिक्तति) वे कभी शुद्ध स्वभावको नही पाते हैं (मिथ्या माया त्रिभगयं) वे मिथ्यादर्शन मायाचारमें मगन होकर इन तीन भावो ग्रसित रहते हैं।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टीके कर्मके आस्रवके कारण ये तीन भाव भी होते है—लाज, भय, गारव। सम्यग्दृष्टी केवल धर्म व न्यायकी दृष्टिसे मन, वचन, कायका वर्तन करता है। उसको आत्मानुभव या वैराग्य प्रिय है। सम्यक्त्वके भीतर प्रशम (शांत भाव), संवेग (ससारसे वैराग्य व धर्मानुराग), अनुकम्पा (प्राणी मात्र पर दया) तथा आस्तिक्य (परलोकमें श्रद्धा) ये चार भाव नियमसे होते हैं। इन भावोके आधारपर वह धार्मिक व लौकिक काम करता है। धर्मकी व परोपकारकी

भावनाके सामने वह लोकलाज, भय व गारवको महत्त्व नहीं देता है। मिथ्यादृष्टी संसारासक्त है, लौकिक जनोंमें प्रतिष्ठा चाहता है अतएव बहुतसे काम लोकलाजसे शक्ति न होनेपर भी कर लेता है, पीछे कष्ट उठाता है। जैसे किसी लड़केका विवाह करना है, वह विचारता है मैं बड़ा कुलवान कहलाता हूँ, अच्छी तरह द्रव्य खरच कर यदि विवाह नही करूंगा तो मुझे लाज आयगी, दश भाइयोंमें मैं क्या मुँह दिखाऊँगा, इस कारण शक्तिके न होनेपर भी कर्ज लेकर खर्च कर डालता है, पीछे कर्जका दुःख भुगतता है। लोकलाजके कारण बहुत लोगोंको जो काम करता देखता है आप भी करने लगता है। मानता है न करूँगा तो लाज जायगी जैसे—दावात, कलम, रुपयेकी थैली, तलवार, घोड़ा, गाय, विहली, चाकू, कप, बावड़ी आदि पूजना। दीवालीमें लौकिक जनोको जुआ खेलते देखकर आप भी खेलने लग जाता है। लोकलाजके कारण मिथ्यात्वमें व अपव्ययमें व अनर्थ कार्यमें फँस जाता है। अमुक वस्त्र व आभूषण न बनाऊँगा तो मेरी स्त्री-पुत्री आदिकी लाज जायगी। कष्ट सह कर भी लोक दिखावेके काम करता रहता है। कभी-कभी मिथ्यादृष्टी लोकलाज-से कुमार्गसे भी बचता है। जिस समाजमें वह रहता है वहाँ जिन बुराइयोंको बुरा समझा जाता है, जिनके करनेसे लाज जाती है, उनको वह लाजके भावसे नहीं करता है जैसे मदिरा न पीना, भाँग न पीना, वेश्या व परस्त्रीसेवन न करना, असत्य न बोलना, रात्रिको न खाना, पानी छानकर पीना, नित्य चैत्यालय जाना, पर्वोंमें उपवास कर लेना, पूजा-भक्ति-स्तुति पढ़ना। यदि वह लाजके भावसे न करके परि-णामोकी उज्वलता व अहिंसा धर्मके पालनके भावसे करता तो अधिक पुण्य बन्ध करता। लाजके भाव होनेसे अल्प पुण्य बाँधता है। मिथ्यादृष्टी नरकके व पशुगतिके दुःखोसे भय करके पापसे बचता है तथा पुण्य सेवन करता है। सम्यक्त्वीके ऐसा पर-लोकका भय नही होता है। मिथ्यादृष्टीको सात प्रकारका भय लगा रहता है उनके वशीभूत हो कभी योग्य कभी अयोग्य काम कर डालता है—

(१) इस लोकका भय—लोग कहीं निन्दा न करें, नाम न रक्खें। (२) परलोकका भय—परलोकमें नर्कादिमें न चला जाऊँ। (३) वेदना भय—कहीं रोग न हो जावे। (४) अरक्षा भय—मेरा कोई रक्षक नहीं है, क्या करूँ। (५) अगुप्ति भय—मेरी सम्पत्ति कोई चुरा न ले जावे। (६) मरण भय—कहीं मरण न हो जावे। (७) अकस्मात् भय—कहीं कोई अचानक वज्रपात न हो जावे, मकान न

गिर पड़े। मिथ्यादृष्टी इन बातोंसे निरन्तर डरता है। कभी-कभी मिथ्या धर्मका साधन भी करने लग जाता है कि मेरा परलोक ऐश्वर्यशाली हो या लोक मेरी प्रशंसा करें। न करूँगा तो निन्दा करेंगे या मेरा रोग मिट जावे, मुझे मरण न सतावे, कोई माल न चुरावे, मेरी रक्षा बनी रहे, अकस्मात् न हो जावे, कुदेवाराधन करने लगता है, कुतप करता है, मंत्र-जाप करवाता है। सम्यग्दृष्टी यथायोग्य रोगादि न होनेका व रक्षाका यत्न करने लगता है परन्तु निर्भय रहता है कि यत्न करते हुए भी यदि पापके उदयसे कोई कष्ट हो गया तो अपना ही बाँधा कर्म झड़ा। वह वीर सिपाहीके समान साहसी रहता है। सम्यक्वी विचारता है जैसा पूज्यपादाचार्यने इष्टोपदेशमें कहा है—

न मे मृत्यु कुतो भीतिर्न मे व्याधि कुतो व्यथा। नाह बालो न वृद्धोऽह न युवेतानि पुद्गले ॥ २९ ॥

भावार्थ—मैं आत्मा हूँ, मेरा मरण नही है, फिर मरनेसे क्या भय ? रोग शरीरमें है। आत्मामें नहीं, तब मुझे क्या कष्ट ? न मैं बालक हूँ न वृद्ध हूँ, न युवा हूँ। शरीर मात्र बालक, युवा, वृद्ध है।

समयसारकलशमें कहा है—

यत्सन्नाशमुपैति तन्न नियत व्यक्तेति वस्तुस्थितिर्ज्ञान,
सत्स्वयमेव तत्किल ततस्त्रात किमस्यापरै।
अस्यात्राणमतो न किञ्चन भवेत्तद्भी कुतो ज्ञानिनो,
निशङ्क सतत स्वय स सहज ज्ञान सदा विन्दति ॥ २५–७ ॥

भावार्थ—जो सत् वस्तु है उसका कभी नाश नहीं होता है, यह वस्तुकी मर्यादा है। मे ज्ञान स्वरूप हूँ। ज्ञान सत् है, इसकी परसे क्या रक्षा करनी। इसको कोई आत्माका भय नही है। ज्ञानी सहज ज्ञानका स्वयं सदा निःशंक होकर अनुभव करता है।

मिथ्यादृष्टी कभी लोकभयसे अच्छे काम भी कर लेता है। यदि मैं न करूँगा लोक मुझे बुरा समझेंगे। मिथ्यात्वीको गारव दोष भी हो जाता है। रस गारव, ऋद्धि गारव, सात गारव, तीन गारव हैं। रसायन बनानेका अभिमान या शृंगार रस आदि कथा करनेका अभिमान रस गारव है। धनका अभिमान या किसीको कोई तपसे चमत्कार हो जावे उसका अभिमान ऋद्धि गारव है। असाता न होनेपर साताकी वेदना होनेपर सातामयी जीवनका अभिमान सात गारव है। इस तरह क्षणिक पदार्थोंके होनेपर भी मिथ्या ही अभिमान कर लेता है जब कि सम्यग्दृष्टी नही करता

है, इस तरह मिथ्यात्वी जीव लाज भय, गारवके भावोंसे परिणतियोंमें मैला रखता है, आत्मानुभवरूप शुद्ध सम्यग्दर्शनको नहीं पा सकता है। मायाचार व मिथ्याभावमें रहकर पापास्रव करता है।

श्री वट्टकेरस्वामी मूलाचार द्वादशानुप्रेक्षामें कहते हैं—

रागो दोसो मोहो इंदियसण्णा य गारवकसाया। मणवयणकायसहिदा दु आसवा होंति कम्मस्स ॥३८॥

भावार्थ—राग, द्वेष, मोह, पाँच इन्द्रियोंके विषय, चार संज्ञाएँ–आहार, भय, मैथुन, परिग्रह, तीन प्रकारका गारव या अभिमान व क्रोधादि चार कषाय व मन, वचन, काय ये सब कर्मोंके आस्रवके द्वार हैं।

---

२१. गम, अगम, प्रमाण—ये तीन भाव

गमस्य अगमं कृत्वा, प्रमाणं मिथ्या उच्चते।
भयस्य भवदुःखानं, भाजनं त्रिभंगी मिस्रतं ॥ २६ ॥

अन्वयार्थ—(गमस्य अगम कृत्वा) जानने योग्य सो गम्य है, जिसका जानना कठिन है सो अगम्य है। इन दोनोको तथा (प्रमाण मिथ्या उच्चते) जिससे जान जावे उस ज्ञानको प्रमाण कहते हैं। ऐसे तीनोको मिथ्या कहनेवाला (भवदुःखान भयस्य भाजन) संसारके दुःखोका व भयका पात्र होता है (त्रिभगी मिस्रत) ये तीनो मिलके पापास्रव-के कारण हैं।

भावार्थ—जिनका जानना सुगम है ऐसे इंद्रियगोचर स्थूल पदार्थ हैं। जैसे रूखा, चिकना, ठण्डा, गरम, कोमल, कठोर, हलका, भारी पदार्थ; मीठा, चरपरा, कड़ुवा, खट्टा, कसायला पदार्थ; सुगन्ध, दुर्गन्धमय पदार्थ; सफेद, काला, नीला, लाल, पीत वर्णवाले पदार्थ; सुस्वर-दुस्वर शब्द इनका स्वरूप भी मिथ्या जानता है। इन्द्रियोसे अगोचर सूक्ष्म पदार्थ अगम्य है। जैसे परमाणु, दूरवर्ती मेरुपर्वत, स्वर्ग, नर्कादि दीर्घकाल पहले हुए। ऋषभादि राम-रावणादि तथा अमूर्तीक पदार्थ आत्मा, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, कालाणु, इनका भी स्वरूप मिथ्या जानता है। उसका ज्ञान भी मिथ्या है जिससे जानता है। ऐसा मिथ्याज्ञानी आत्मा व अनात्माका सच्चा स्वरूप न जानकर धर्मका भेद न पाकर ससार-भ्रमणसे छूट नही सकता है। अनेक प्रकार दुःख व भयको उठाता है।

कुमति, कुश्रुत ज्ञानका स्वरूप १२-१३ गाथाके वर्णनमें कहा जा चुका है। मिथ्यादर्शनके उदयसे अज्ञानीको पदार्थोंका सच्चा नहीं भासता है। उसको न तो सच्चे आगमका संयोग मिलता है न सच्चे गुरुका। इसलिये अपनी कल्पनासे व मिथ्या आगम या गुरुके उपदेशसे पदार्थोंको औरका और जानता है। कोई तो सर्व जगत-को एक ब्रह्मकी माया मान लेते हैं, ब्रह्मरूप ही है, भ्रमसे और रूप दिखता है। कोई ईश्वरको शासक मानके अपनेको उसके आधीन मानते हैं, कोई परलोकको न मानकर नास्तिक मती रहते हैं। कोई विषयसुखको ही सुख मानते हैं, आत्मीक सुखकी तरफ दृष्टि ही नही जाती है। कोई पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुके परमाणु भिन्न ही मानते हैं। कोई आत्माको जड़से उत्पन्न हो मानते है। अविनाशी चेतन सत्‌रूप आत्माको नहीं मानते हैं। कोई केवल प्रत्यक्ष प्रमाणको ही मानते हैं, अनुमान या आगमको नहीं मानते है। कोई देवका स्वरूप सरागी ही मानते हैं, वीतराग सर्वज्ञ नहीं मानते हैं। इस तरह भिन्न-भिन्न प्रकारके मतोको रखते हुए गम्य व अगम्य-स्थूल व सूक्ष्म पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान नही कर पाते है, उनको सच्चा भेद विज्ञान व आत्मीक सुखको प्रतीति नहीं हो पाती है। वे विपरीत श्रद्धानी ससारासक्त बने रहते हैं, राग, द्वेष, मोहके जालसे मुक्त नहीं हो पाते।

सर्वज्ञ वीतराग भगवान्‌ने जैसा बताया है वैसा श्रद्धान होनेकी आवश्यकता है जिससे यह विदित हो कि यह आत्मा आप ही अपने भावोसे पाप व पुण्य बाँधता है व आप ही अपने शुद्ध भावोंसे कर्मोंसे छूट सकता है। यह आत्मा स्वभावसे पर-मात्मारूप है। शुद्ध ज्ञान, दर्शन, वीर्य, आनन्द आदि गुणोका समुदाय है। इसीसे शुद्ध स्वरूपके श्रद्धान ज्ञान व चारित्रको रत्नत्रय धर्म कहते है। वह धर्म स्वानुभव स्वरूप है, सच्चा सुख अतीन्द्रिय है, जो स्वानुभवसे प्राप्त होता है। संसार असार है, शरीर अपवित्र है, भोग रोगके समान है, स्वाधीनता ही ग्रहण करने योग्य है, पराधीनता त्यागने योग्य है। ऐसा सच्चा श्रद्धान जिनवाणीके द्वारा तत्त्वोको जाननेसे हो सकेगा, कोई भ्रम नही रहेगा। पदार्थोंका सच्चा स्वरूप जाननेके लिये जैनके न्याय ग्रन्थोंका अवलोकन करना योग्य है। जैसे प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, आप्तपरीक्षा, न्यायदीपिका। ज्ञान प्रमाण है, ज्ञेय प्रमेय है। ज्ञान व ज्ञेयका यथार्थ ज्ञान होनेकी जरूरत है। दर्पणमे पदार्थ झलकते है, दर्पण अलग है, पदार्थ अलग है। आत्माका स्वभाव ज्ञान है, उसमें छः द्रव्यमयी जगत जिसकी सत्ता

अपने आत्मासे भिन्न है वह झलकता है। कुमति, कुश्रुत ज्ञानी आत्मा व अनात्माको, संसार व मोक्षको, संसारमार्ग व मोक्षमार्गको ठीक-ठीक नहीं जानता है। अतएव उन्मत्तकी तरह कभी सत्यको सत्य, कभी असत्यको सत्य मान लेता है, कभी कहता है ईश्वरकी मरजीसे सब कुछ होता है, कभी कहता है अपने कर्मोंके फलसे भला बुरा होता है, उनको गाढ़ प्रतीति एक सत्य बात की नहीं है। स्याद्वादसे पदार्थोंको अपेक्षा-के द्वारा नित्य, अनित्य, एक, अनेक आदिरूप जानना चाहिये और तब आत्मज्ञानको पाकर संयमके सहारे स्वानुभव करना चाहिये।

जैसा समयसारकलशामें कहा है—

स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्या, यो भावयत्यहरह स्वमिहोपयुक्त.।
ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्री–पात्रीकृत श्रयति भूमिमिमां स एक ॥२१-११॥

भावार्थ—जो कोई स्याद्वादके ज्ञानमें कुशल है और संयममें निश्चल है, इस तरह सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रके साथ निरन्तर उपयोग लगा कर अपने आत्माको आप ही भावना करता है वह ज्ञान व चारित्रकी मित्रताको रख कर इस मोक्षमार्गपर चलनेका पात्र होता है।

मूलाचार प्रत्याख्यान अधिकारमें कहा है—

जिनवयणे अणुरत्ता गुरुवयण जे करति भावेण। असवल असंकिलिट्ठा ते होंति परित्तससारा ॥७२॥
जिणवयणमोसहमिण विसयसुहविरयण अमिदभूद। जरमरणवाहिवेयणखयकरण सव्वदुक्खाण ॥९५॥

भावार्थ—जो साधु जिनवाणीमें परम भक्तिवन्त हैं तथा जो भक्तिपूर्वक गुरुकी आज्ञाको मानते हैं वे मिथ्यात्वसे अलग रहते हुए व शुद्ध भावोंमें रमते हुए ससारसे पार हो जाते हैं। जिनवाणीका मनन एक ऐसी औषधि है जो इन्द्रिय विषय-के सुखसे वैराग्य पैदा करानेवाली है, अतीन्द्रिय सुख रूपी अमृतको पिलानेवाली है। जरा-मरण-रागादिके सब दुःखोंको क्षय करनेवाली है। स्वयंभूस्तोत्रमें कहा है—

बन्धश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतू। बद्धश्च मुक्तश्च फल च मुक्ते.।
स्याद्वादिनो नाथ तवैव युक्त, नैकान्तदृष्टेस्त्वमतोऽसि शास्ता ॥ १४ ॥

भावार्थ—हे सम्भवनाथ! आपने अनेक धर्म स्वरूप वस्तुको स्याद्वादसे बताया है, इसलिये आपके बताए हुए तत्त्वज्ञानमें बन्धतत्त्व, मोक्षतत्त्व व बन्ध व मोक्षका कारण बन्ध व मुक्त आत्माका स्वरूप व मोक्षका फल यथार्थ सिद्ध होता है। जो वस्तुको एक धर्मवाली मानते हैं, उनके मतमें ये सब बातें सिद्ध नहीं होती हैं। अतएव आप्त ही यथार्थ उपदेश दाता है।

२२. अनृत, स्तेय, काम—ये तीन भाव

ऋतं अनृतं माने, स्तेयं पद लोपनं।
कामनं असुह भावस्य, त्रिभंगी नरयं पतं॥ ३०॥

अन्वयार्थ—(ऋत अनृत माने) जो कोई सत्य पदार्थको असत्य जानता है (पद लोपन स्तेय) ग्रन्थके पदका अर्थ छिपाकर चोरी करता है (असुह भावस्य कामनं) अशुद्ध भावोंकी कुशीलादिकी कामना करता है (त्रिभंगी नरय पत) इन तीन—अनृत, स्तेय व काम भावोमें रत प्राणी नरकका पात्र है।

भावार्थ—पदार्थका जो निज मूल स्वभाव है वही सत्य है, नित्य है, अमिट है, केवल है। उसको औरका और जानना असत्य है। यह जगत जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल इन छः मूल व स्वतन्त्र द्रव्योका समुदाय है। इनमें-से धर्म, अधर्म, आकाश एक-एक है। कालाणु असंख्यात हैं, जीव व पुद्गल अनन्त हैं। हरएक जीवको सत्ता सदा भिन्न-भिन्न ही रहती है। जीवका मूल स्वभाव शुद्ध है, ज्ञातादृष्टा है, वीतराग है, आनन्दमय है व अमूर्तीक है। यह स्वभावसे ईश्वर स्वरूप है, इसके ऐसे स्वभावको जानकर कहना कि यह रागी-द्वेषी है, अज्ञानी है, पाप पुण्यका कर्ता है, फल भोक्ता है, सो जीव तत्त्वका असत्य ज्ञान है। यदि ऐसा जाने कि कर्म-संयोगसे रागी-द्वेषी हो रहा है, मूल स्वभावसे यह वीतरागी है तब तो सत्य ज्ञान है, परन्तु एकांगी ज्ञान असत्य है। पर्यायकी अपेक्षा अशुद्ध है, द्रव्यकी अपेक्षा शुद्ध है, ऐसा जाने तो असत्य नहीं है। परन्तु एकान्तसे शुद्ध ही जाने व अशुद्ध ही जाने सो असत्य है। इसी तरह शुभ कार्य जप, तप व्यवहार चारित्र पुण्य-बन्धका कारण है। उसको मोक्षका कारण जानना सो असत्य है। मोक्षका कारण निश्चय चारित्र स्वात्म रमणरूप है, इसको न पहचाने तो मोक्षमार्गको उसने असत्य जाना है। इसी तरह हिंसामय पशुबलि आदिको धर्म मान लेना असत्य है। विषय कषाय पोषक सर्व क्रिया धर्म नहीं है, इसे धर्म मान लेना असत्य है। असत्य बोलकर जगतको ठगना यह तो प्रगट असत्य पाप है।

जिनेन्द्रकी आज्ञा प्रमाण वस्तु स्वरूपको न कहकर औरका और कहना व जिनवाणीके भावका छिपाना धर्मको चोरी है। जैसे परिग्रह धारीको भी जैन साधु कहना तथा ऐसा हठ करना कि जिन आगमकी आज्ञा इसी प्रमाण ही है। अजका अर्थ न उगनेवाले जौका न करके बकरा करना भी पदका लोप चोरी है। प्रगट छिप-

करके व लुटवा करके धनादि चुराना तो चोरी ही है। विश्वासघात करके धन छीनना, देव द्रव्य या धर्मका द्रव्य चुराना, मन्दिरके उपकरण चुराना, यह सब चोरी है। शुद्ध भाव एक शुद्धोपयोग है, इसीको मोक्षमार्ग न समझ कर अशुद्ध भावको या शुभोपयोगको मोक्षमार्ग समझ कर शुभोपयोगकी इच्छा करना काम है। ब्रह्मचर्य-का घात कर कुशील संयममें लीन होना कामभाव है। सर्व इन्द्रियोके विषयोंकी कामना करना काम है। जो कोई जगतमें असत्य बोलते हैं, चोरी करते हैं, परस्त्री व वेश्यागमन करके कुशील सेवते हैं व अन्य विषयोंको भावपूर्वक सेवते हैं वे तीव्र राग व परिग्रहभावसे नरकायु बांधकर नर्क चले जाते हैं। जो इस असत्य संसारको सत्य जानकर धर्मका लोप करते हैं, धर्मका साधन नहीं करते हैं व रात-दिन विषय-भोगोंकी कामना किया करते हैं वे भी नरकके पात्र होते हैं। जो जिनेन्द्रकी आज्ञाको लोप कर मनमाना धर्म पाल कर अपनेको गुरु मानते हैं व दूसरोंको रागभावमें फँसा कर धन कमाते हैं व स्वच्छन्द हो विषयसेवन करते हैं ऐसे धर्मके ठेकेदार गद्दीदार महन्त आदि नरकके पात्र हैं। जगतमें झूठ, चोरी व कुशील बड़े भारी पाप हैं, जिनसे इस लोकमें भी अपयश होता है, दण्ड मिलता है व परलोकमें भी दुर्गति होती है। ज्ञानार्णवमें श्री शुभचन्द्राचार्य कहते हैं—

व्रतश्रुतयमस्थान विद्याविनयभूषणम्। चरणज्ञानयोर्बीजं सत्यसंज्ञं व्रत मतम् ॥ २७-९ ॥

भावार्थ—यह सत्य नामका व्रत सर्व व्रतोंका, शास्त्रका व संयमका स्थान है, विद्या व विनयका भूषण है। चारित्र व ज्ञानका बीज है। असत्य सर्व पापोंका मूल है।

विषयविरतिमूलं संयमोद्दामशाखम्, यमदलशमपुष्पं ज्ञानलीलाफलाढ्यम्।
विबुधजनशकुन्तैः सेवित धर्मवृक्षं, दहति मुनिरपीह स्तेयतीव्रानलेन ॥ २०-१० ॥

भावार्थ—जिस धर्म वृक्षकी जड़ विषयोंसे विरक्ति है, जिसकी बड़ी शाखा संयम है, जिसके यम, नियमादि पत्र हैं, उपशम भाव पुष्प हैं, ज्ञानादि जिसका फल है, जिसकी सेवा पंडितजनरूपी पक्षी करते हैं ऐसे धर्मवृक्षको मुनि भी हो तो भी चोरीरूपी तीव्र आगसे भस्म कर डालता है।

मूलाचार द्वादशानुप्रेक्षामें कहा है—

दुग्गमदुल्लहलाभा भयपउरा अप्पकालिया लहुया। कामा दुक्खविवागा असुहा सेविज्जमाणा वि ॥३२॥

भावार्थ—इन्द्रिय सम्बन्धी काम भोग बड़ी कठिनतासे व परिश्रमसे मिलते हैं। उनमें भय भरा रहता है। बहुत थोड़े काल टिकनेवाले हैं, असार हैं, तथा कर्म

बन्धकारक हैं, दुःखफलको देनेवाले हैं। अतएव सेवन किये जानेपर भी अशुभ हैं, हानिकारक हैं। सारसमुच्चयमें कहा है—

यावदस्य हि कामाग्नि हृदये प्रज्वलत्यलम्। आश्रवन्ति हि कर्माणि तावदस्य निरन्तरम्॥ ९४॥

भावार्थ—जबतक कामकी आग मनमें जलती रहती है तबतक इस जीवके निरन्तर कर्मोंका आस्रव होता है।

---

२३. अन्यान, रति, मिश्र–ये तीन भाव

अन्यानी मिथ्य भावस्य, रतिं मूढ भयं सदा।
मिस्रस्य दृष्टिं मोहंधं, त्रिभंगी दुर्गति कारनम्॥ ३१॥

अन्वयार्थ—(अन्यानी मिथ्य भावस्य रतिं मूढ भय सदा) अज्ञानी मिथ्यात्व भावमें रति करके सदा मूढमयी भाव रखता है (मिस्रस्य दृष्टि मोहंध) अज्ञान व रतिका जहाँ मिश्रण है वहाँ दर्शनमोहसे अन्धापन है (त्रिभगी दुर्गति कारनम्) अज्ञान, मिथ्यात्व रति तथा मिश्र–ये तीनों भाव दुर्गतिमें पटकनेवाले हैं।

भावार्थ—अज्ञान वा अविद्या ससारका मूल है। एकेन्द्रियसे पचेन्द्रिय तक सर्व ही प्राणी अज्ञानी हो रहे हैं। आत्मा व अनात्माका भेदज्ञान उनको प्राप्त नही है। इसी कारण उनकी रति या प्रीति निरन्तर पाँचो इन्द्रियोंके विषयभोगमें बनी रहती है। जहाँ अज्ञान तथा विषय रति दोनो ही हैं वहाँ मिश्र भाव है अर्थात् ज्ञाना-वरणका उदय और दर्शनमोहका उदय साथ-साथ होकर अज्ञानके साथ मिथ्यात्व भाव होता है। जिनको शास्त्रोंका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं है, जैनागमको ग्यारह अंग-तक जानते हैं और उनकी रति विषयवासनासे नहीं हटी है, अतीन्द्रिय सुखका प्रेम पैदा नहीं हुआ है, उनके ज्ञानके साथ विषय रति है। यहाँ अज्ञानके साथ रतिका मिश्र बताया है।

असैनी पचेन्द्रिय तकके मन नहीं होता है, अतएव वे सब तो अज्ञान मिथ्यात्वसे पीड़ित हे। उनका कर्मोदयसे ऐसा स्वभाव-सा हो गया है जिससे वे इन्द्रियोंके विषयोमें ही सुख मानते हैं। वे कभी सम्यक्त्वको नहीं पा सकते हैं। जो सैनी पञ्चेन्द्रिय हैं उनके विचार करनेको शक्ति है। उनको सत्गुरुका व सत्य जिन आगमका निमित्त नहीं मिलता है, तब वे भी अज्ञानमें लीन रहते हुए पाँचो इन्द्रियोंके

विषयसुखको ही सुख जानते हैं। इस तरह वे भी संसारासक्त होकर पाँच पापोंमें लीन रहते हैं, दुर्गतिके पात्र होते है। अज्ञान महान् दुःख व भयका मूल है। जिनको इन्द्रिय सुखमें सुखकी बुद्धि है यह अज्ञान है। अतीन्द्रिय सुख ही सुख है। इन्द्रिय सुख सुखाभास है, दुःखका कारण है, ऐसा श्रद्धान जिनको नहीं है वे दर्शन मोहसे अन्ध होकर विषयोंके भीतर बारबार जाते हैं, कष्ट पाते है, भव-भवमें जन्म-मरणके दुःख सहते हैं। अज्ञानीका ज्ञान विपरीत होता है। समयसारकलशमें कहा है—

अज्ञानान्मृगतृष्णिका जलधिया धावन्ति पातु मृगा,
अज्ञानात्तमसि द्रवन्ति भुजगाध्यासेन रज्जौ जना।
अज्ञानाच्च विकल्पचक्रकरणाद्वातोत्तरङ्गाब्धिवत्,
शुद्धज्ञानमया अपि स्वयममी कर्त्रीभवन्त्याकुला॥ १३-३॥

भावार्थ—यह अज्ञानका ही दोष है जिससे मृग जंगलमें प्यासे हो मृगतृष्णाको या चमकती हुई बालूको जल मानके पीनेको दौड़ते है। यह अज्ञानका ही दोष है जिससे जन अन्धकारमें रस्सीको सर्प जानकर भयसे भागते हैं। अज्ञानके ही कारण अज्ञानी रात-दिन अपनेको राग-द्वेषमयी माना करते हैं, नाना विकल्प करते हैं। जैसे समुद्र पवनके योगसे क्षोभित होता है वैसे आकुलित होते है। आप शुद्ध ज्ञानमयी है तो भी इस क्रोधादि भावोंका कर्ता है ऐसा मान लेते हैं। सारसमुच्चयमें भी कहा है—

कषायविषयैश्चित्तं मिथ्यात्वेन च संयुतम्। संसारबीजतां याति विमुक्तं मोक्षबीजताम्॥ ३३॥

भावार्थ—जिसका मन मिथ्यादर्शनसे मैला होकर विषयों व कषायोंके आधीन है वह संसारके भ्रमणका पात्र है, परन्तु जिसके भीतरसे मिथ्यात्व निकल गया है वह विषय कषायोंके आधीन नहीं होकर मोक्षका पात्र होता है।

---

२४. कर्मादि, असमाधि, अस्थिति—ये तीन भाव

कर्मादि कर्म कर्तव्यं, असमाधि मिथ्या संजुत्तं।
अस्थिति असुद्ध परिणामं, त्रिभंगी संसार कारनं॥ ३२॥

अन्वयार्थ—(मिथ्या संजुत्त) मिथ्यादर्शनके साथ (कर्मादि कर्म कर्तव्य) मन, वचन, कायके द्वारा कार्य करते रहना तथा (असमाधि) आत्मध्यानका लाभ न पाना (असुद्ध परिणाम) अशुद्ध परिणाम रखना अर्थात् शुद्ध भावमें स्थिरता न पाना (त्रिभंगी संसार कारन) ये तीनों ही भाव संसारके भ्रमणके कारण हैं।

भावार्थ—मोक्षमार्ग स्वानुभव स्वरूप है। जहाँ मन, वचन, काय तीनोंका कार्य बन्द है, शरीर स्थिर होता है, वाणीका प्रचार नहीं रहता है, मनका काम विचार करनेका है, विचार भी बन्द होते हैं, जब आत्मा आत्मासे ही आत्मामें स्थिर होता है, ऐसा जो समाधि भाव उसको स्वानुभव कहते हैं। वहाँ रत्नत्रयकी एकता है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों स्वाभावोंकी एकता हो रही है। अपने शुद्धात्म स्वभावका श्रद्धान भी है, ज्ञान भी है व स्वरूपमें स्थिरता रूप चारित्र भी है। इसी स्वानुभवसे नवीन कर्मोंका संवर होता है और पुरातन कर्म विशेष झड़ते हैं। सम्यग्-दर्शन गुणके प्रगट हुए बिना स्वानुभव करनेकी योग्यता नहीं प्राप्त हो सकती है।

मिथ्यादृष्टीको आत्माकी स्थिरता प्राप्त नहीं हो सकती। शुद्ध भावका उसको पता ही नहीं है। कदाचित् यह ध्यान भी करता है तो आत्माका ही करता है, साधारण रूपसे मिथ्यादृष्टियोंके भीतर सदा चञ्चलता रहती है। वे मनसे कुछ विचारते हैं, मनसे कहते हैं, कायसे क्रिया करते हैं। विषयभोगकी व मान कषायकी वासना मिथ्यात्वीमें होती है इसी हेतुको ध्यानमें लेकर वह विषयभोगोंके संग्रह रक्षण-के लिये मन, वचन, कायसे वर्तन किया करता है, अशुभ वर्तन विशेष होता है। हिंसा, असत्य, स्तेय, कुशील, परिग्रहके भीतर स्वच्छन्द हो वर्तता है। कोई भद्र मिथ्यादृष्टी होते हैं वे न्यायरूप विषयभोगोंके लिये मन, वचन, कायको कर्तव्य पालते हैं। कोई-कोई आगामी परलोकमें संसारका सुख मिले इसलिये धर्मके भी शुभ काम करते हैं। पूजा-पाठ, जप, तप, परोपकार, दानादि भी करते हैं। जब मन्द कषाय होती है तब पुण्य, जब तीव्र कषाय होती है तब पापकर्म बाँध लेते हैं। कभी नर्क, कभी तिर्यंच, कभी मनुष्य, कभी देव होते हैं। नौग्रैवेयिक तक चले जाते हैं। देव-गतिसे आकर १२ स्वर्ग तकके तिर्यंच तक हो जाते हैं। सम्यक्त्वके बिना वे चारों गतियोंकी नाना अवस्थाओंमें चक्कर लगाते हुए जन्म-मरण किया करते हैं। शारी-रिक, मानसिक कष्ट सहन करते हैं। उनको आत्मज्ञान न होनेसे समाधिकी प्राप्ति नहीं होती है। सत्य समाधिके बिना ध्यानकी ऐसी अग्नि नहीं जल सकती है जिससे बन्ध न हो व निर्जरा हो। मिथ्यादृष्टीका मन भीतर आर्त्तध्यानमें लगा रहता है। अधिकतर विषयभोगकी तृष्णामें रहता हुआ निदान व परिग्रहनन्दी ध्यान रहता है। उनके भीतर सदा ही अस्थिर भाव रहता है, शुभ राग या अशुभ रागसे चञ्चल परिणाम रहता है। आत्मामें स्थिरतारूप शुद्धोपयोगका कभी भी लाभ नहीं होता

है। ज्ञानचेतनाको वे कभी नहीं पा सकते जिससे ज्ञानोपयोग शुद्धात्माके ज्ञानका ही स्वाद ले, रागद्वेषका स्वाद न ले। मिथ्यात्वीके भीतर सदा कर्मचेतना, कर्मफलचेतना रहती है। या तो रागद्वेषपूर्वक कर्म किया करते हैं या वैषयिक सुख या दुःखका अनुभव किया करते हैं। जिनको अपने आत्माके स्वभावका ज्ञान व श्रद्धान नहीं होगा वह कैसे आत्मामें रमण कर सकता है ?

यहाँ बिखलाया है कि जहाँ तक मन, वचन, कायकी बुद्धिपूर्वक शुभ या अशुभ क्रिया होती रहती है व उस क्रियाके भीतर आसक्त भाव है, रुचिपूर्वक क्रिया है वहाँतक संसारका प्रवाह चलता ही रहता है। सम्यग्दृष्टी निराशक्तिसे प्रयोजनवश मन, वचन, कायकी क्रिया करता है तथा उस वर्तनको भी त्यागने योग्य समझता है, मोहनीयकर्मकी प्रेरणासे करता है। निरन्तर मोहके क्षयका उत्सुक है इसलिये सम्यक्त्ववर्द्धक कर्त्तव्य मोक्षमार्गमें बाधक नहीं है। उसको बन्ध बहुत अल्प होता व पूर्व कर्म विशेष गिरते हैं। मिथ्यादृष्टीको कभी भी स्वात्मानन्दका लाभ नहीं हो पाता है। अतएव मिथ्यात्व विषका वमन जैसे हो वैसे करना चाहिये। सारसमुच्चयमें कहा है—

अनादिकालजीवेन प्राप्त दु.खं पुन पुनः। मिथ्यामोहपरीतेन कषायवशवर्तिना ॥ ४८ ॥

भावार्थ—अनादिकालसे मिथ्यादर्शनके संयोगसे कषायोंके वश होकर इस जीवने बारबार कष्ट उठाए हैं।

सम्यक्त्वेन हि युक्तस्य ध्रुव निर्वाणसगम। मिथ्यादृशोऽस्य जीवस्य ससारे भ्रमण सदा ॥ ४१ ॥

भावार्थ—जो सम्यग्दर्शन सहित है उसको अवश्य निर्वाणका लाभ होगा। मिथ्यादृष्टी जीवका सदा इस संसारमें भ्रमण रहेगा।

---

२५. हास्य, रति, अरति—ये तीन भाव

हास्य राग वर्द्धंता, अरति मिथ्यात्व भावना।
आर्त्तरौद्र संयुतं, त्रिभंगी दल पस्यते ॥ ३२ ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्यात्व भावना) मिथ्यादर्शनकी भावना सहित (आर्त्तरौद्र संयुतं) आर्त्तध्यान व रौद्रध्यानको रखते हुए (हास्य राग वर्द्धता अरति) हास्यभाव होना, रागकी वृद्धिसे रतिभाव होना, अरति होना (त्रिभगी दल पस्यते) इस तरह ये तीन भाव देखे जाते हैं जो आस्रवके कारण हैं।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी संसारासक्त है, मोक्षमार्गसे विपरीत भावका धारी है, इष्ट पदार्थोंके वियोगमें दुःखित होता है, अनिष्टके संयोगमें पीड़ित होता है। रोगादि होनेपर सक्लेश परिणामी होता है, आगामी भोगोके लिये आतुर होकर घबड़ाता है। इस तरह चार प्रकार आर्त्तध्यान करता रहता है। स्वार्थसाधनके लिये बाधक कारणोंको हटानेके लिये हिंसा करता है, कर रहा है व हिंसामें प्रसन्न होता है, यह हिंसानन्दी रौद्रध्यान है। इसी हेतुसे झूठ बोलता है, बुलवाता है, व झूठ व्यवहार-को जानकर प्रसन्न होता है वह मृषानन्दी रौद्रध्यान है। चोरी करके, कराके, व चोरी हुई जानकर प्रसन्न होता है। यह चौर्यानन्दी रौद्रध्यान है। परिग्रह बढ़ने-बढ़ाने व परिग्रहकी अनुमोदना करते हुए प्रसन्न होता है यह परिग्रहानन्दी रौद्रध्यान है। इन चार प्रकार रौद्रध्यानोमें भी लगा रहता है। जब किसी तरह स्वार्थ सध जाता है तब हास्यभाव-प्रसन्नता बताता है या किसी मूर्खको काम करनेमें असमर्थ देखता है तो हास्यभाव बताता है, परकी निन्दा व अपनी प्रशंसा करके हास्यभाव करता है। भण्ड वचन बोलकर व असत्य चर्या करके हास्य कौतूहल करता है। कभी घृणाभावसे दूसरेकी हँसी उड़ाता है। जहाँ विषयसुख साधन-कर व दूसरोंको घृणा करके अपनेको चतुर दूसरेको मूर्ख देखके, परिणामोंमें प्रसन्नता आकर हास्य हो जाना सो हास्य भाव है। उस समय हास्य नोकषायके उदयसे हास्य झलक जाती है। हँसी मन्द या जोरसे हो जाती है, मुसकराहट होती है या जोरसे खिलखिलाकर हँसता है। सो सब हास्यभाव है। इसके भी दो भेद हो सकते हैं—शुभ व अशुभ। शुभ कर्मोंको होते देखकर हास्यभाव हो जाना व शुभ कार्योंकी अपेक्षा मनकी प्रसन्नता सहित हास्यभाव आ जाना। जहाँ मिथ्यात्वके साथ आर्त्तरौद्रध्यानके सपर्कमें हास्यका झलकाव है। वह हास्यभाव संसारका कारण है। रौद्रध्यानोके हास्यभाव विशेष होता है। भोगाकाक्षामें भी भोग मिलनेपर प्रसन्नता सहित हास्यभाव होता है।

इन्द्रियोके विषयोंमें उत्सुकताको रतिभाव कहते है। मनोज्ञ विषयोके न मिलने पर अमनोज्ञसे उदासीनता होना अरति भाव है। मिथ्यादृष्टिका रतिभाव स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, धन-धान्य, वस्त्रालकार, मकानादि, भोजन, गाना-बजाना, सुग-न्धादि पाँचो इन्द्रियोके विषयोमें बहुत अनुराग पूर्ण होता है। रतिके साथ ही साता-कारी पदार्थोंके होने पर सुखकी वेदना होती है। मैं सुखी भया यह भाव होता है, रति न होनेसे साताकारी पदार्थोंके संयोग होने पर भी सुख वेदना नहीं होती है।

मिथ्यादृष्टि विषयोंसे गाढ़ प्रीति करता है। जब अनिष्ट विषय पापके उदयसे मिलते हैं, तब असाताके उदयके साथ अरतिका उदय होता है, तब मैं दुःखी हुआ ऐसा अनुभव करता है। मिथ्यादृष्टिके कभी सुख, कभी दुःख, कभी हास्यभाव रहता ही है। वह निरन्तर हास्य, रति व अरतिमें उलझा रहता है। पाप कार्योंमें रति बनी रहती है। स्वकार्य होनेसे व परका नाश होनेसे प्रसन्नता रखकर हास्यभाव करता है। धर्म कार्योंको व धर्मात्माओंको व धर्मायतनोंको नहीं चाहता है। उनसे अरति रहती है। इष्ट पदार्थसे विरुद्ध पदार्थ मिलने पर दृढ़ अरति पैदा होती है। इस तरह रागद्वेष मोहमें फँसा हुआ अज्ञानी मिथ्यादृष्टि संसारमें भ्रमण करनेवाले कर्म बाँध लेता है, बहुधा नर्क, तिर्यञ्च, आयु, इन तीन प्रकारके भावोंसे बाँध लेता है। सच्चे देव, गुरु, शास्त्रकी हँसी उड़ाना नर्कायुके बन्धका कारण है। तब ही मिथ्यात्व कर्मका बन्ध होता है। सम्यक्त्वी कर्मका उदय विचार कर वस्तुके स्वरूपको पहचान कर समभाव रखता है। लौकिक कार्योंके होने पर पुण्यका उदय, न होने पर पापका उदय विचारता है, किसीकी हँसी नहीं करता है। सम्यक्त्वी यदि सरागी है, तो हास्य, रति व अरतिके होने पर उन भावोंके जीतनेका उद्यम करता है। यहाँ मिथ्यात्व सहित ये तीनों भाव बहुत बड़े हानिकारक है, तीव्र बन्धके कारक हैं, अतएव त्यागने योग्य हैं।

बृहत् सामायिक पाठमें अमितगति आचार्य कहते है—

भवति भविनः सौख्य दु.ख पुराकृतकर्मणः। स्फुरति हृदये रागो द्वेष. कदाचन मे कथ।
मनसि समता विज्ञायेत्थ तयोर्विदधाति य.। क्षपयति सुधी पूर्वं पाप चिनोति न नूतन॥ १०२॥

भावार्थ—ज्ञानीका यह विचार रहता है कि जीवको सुख तथा दुःख अपने ही पूर्वमें किए हुए शुभ-अशुभ कर्मसे होता है। इसलिए मैं सुखके होने पर राग व दुःखके होने पर द्वेष क्यो करूँ? इस तरह जो कोई सुख-दुःखका स्वरूप विचार कर समभाव रखता है वह बुद्धिमान पूर्व कर्मोंकी निर्जरा करता है व नवीन कर्मोंको नही बाँधता है। हास्य, रति, अरति भाव रागद्वेषके प्रबल कारण हैं।

प्रवचनसारमें श्री कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं—

रत्तो बधदि कम्म मुच्चदि कम्मेहिं रागरहिदप्पा। एसो बधसमासो जोवाण जाण णिच्छयदो॥८७-२॥

भावार्थ—वास्तवमें बन्धका संक्षेप स्वरूप जीवोंके लिए यही है कि रागी जीव कर्मोंको बाँधता है और रागरहित जीव कर्मोंसे छूट जाता है।

२६. स्त्री, पुरुष, नपुंसक—ये तीन भाव

स्त्रिया काम वर्धन्ते, पुंसं मिथ्यात संजुतं ।
नपुंसक मतिषंडस्य, त्रिभंगी दल तिष्टते ॥ ३४ ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्यात सजुत) मिथ्यात्वके साथ मिथ्यादृष्टि जीवमें (स्त्रिया काम वर्धन्ते) स्त्री सम्बन्धी भावोंके होने पर कामभावकी वृद्धि होती है (पुस) इसी तरह पुंवेदके उदयसे कामभावकी तीव्रता होती है (षंडस्य नपुसक मति) नपुंसक वेदके उदयसे नपुंसक सम्बन्धी भाव उभयरूप होता है (त्रिभंगी दल तिष्ठते) ये तीन काम-भाव आस्रवके कारण हैं ।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टि कामभावोंमें भी फँसा रहता है । कभी स्त्री सम्बन्धी भाव होकर पुरुषसे भोगकी चाह पैदा करता है । कभी पुरुष सम्बन्धी भाव करके स्त्रीके साथ भोग करना चाहता है । कभी नपुंसक सम्बन्धी भावोंसे स्त्री व पुरुष दोनोंसे कामचेष्टा करना चाहता है । ये कामभाव महान् अनर्थकारी हैं । कामके वश होकर तीव्र मिथ्यादृष्टि अपनी व परस्त्रीका विचार छोड़ बैठते हैं । कामभाव-के मोहमें वेश्यागमन करते हैं, परस्त्रीगमन करते हैं, काम कथा करते हैं, कामभाव बढ़ानेवाले नाटक देखते हैं, कामभाववर्द्धक चित्र देखते हैं, शृंगाररसके शास्त्र पढ़ते हैं। इन पाँच खोटी भावनाओंमें वर्तते रहते हैं—१. काममें राग बढ़ानेवाली कथाएँ पढ़ना व सुनना, २. कामके वश हो, मनोहर रूपोंके देखनेके लिए आतुर रहना व देखते फिरना, ३. कामभोगोंकी चर्चा करना, ४. पौष्टिक कामोद्दीपक रसोंको खाना, ५. शरीरको शृंगारसे सजाकर मनोहर रखना। कामविकारसे पीड़ित होकर यह प्राणी महान् कर्म बाँध लेता है, तीव्र रागद्वेषमें फँस जाता है। मनोज्ञ स्त्री-पुरुषके मिलनके लिए लालायित रहता है । मिलनेके लिए नाना प्रकार मायाजाल रचता है, जो कामभोगोमें बाधक होते हैं, उनके साथ बैर बाँध लेता है । कामभोगके कारण स्त्रीके मोहमें बड़े-बड़े युद्ध छिड़ जाते हैं।

कामी जीव अति तृष्णावश अधिक भोग करके निर्बल व रोगी हो जाता है । फिर महान् कष्ट उठाता है । कामभाव समभावका नाश करनेवाला है, वीत-राग भावसे दूर रखनेवाला है, शुद्धभावका तीव्र विरोधक है । मिथ्यादृष्टि स्पर्शन इन्द्रियका तीव्र लोलुपी होता हुआ महान् अनर्थ करता है । कमठके जीवने छोटे भाई

मरुभूतकी स्त्रीके साथ कामचेष्टा करके भव-भवमें दुर्गति पायी व मरुभूतके जीव श्री पार्श्वनाथसे वैर बताया। रावण कामभावके कारण राज्यभ्रष्ट हो नर्क गया। कामभावकी तीव्रतासे बचनेके लिये मानवको विवाह करके रहना चाहिये व परस्त्री और वेश्यासे बचना चाहिए। स्वस्त्रीमें भी अधिक तीव्रता न रखनी चाहिए। ब्रह्मचर्य मोक्षमार्गमें परम सहायक है। अतः मोक्षमार्गी बुद्धिमानको मन, वचन, कायसे पूर्ण शीलव्रतको पालना चाहिये। असमर्थ हो तो गृहस्थमें रहकर स्वस्त्री सन्तोष व्रत रखना चाहिए। कामभावसे बचनेके लिए वृद्ध व साधुसेवा, समयका सदुपयोग, सत्संगति, शास्त्रस्वाध्याय, सामायिक, एकान्त सेवन करना चाहिये। कामभाव उत्पादक निमित्तोंसे बचना चाहिये। जैसे—घी आगका निमित्त पाकर पिगल जाता है, वैसे कामीका मन कामवर्द्धक स्त्री व पुरुषके निमित्तसे कामी हो जाता है। सार-समुच्चयमें कहा है—

मदनोऽस्ति महाव्याधिर्दुश्चिकित्स्यः सदा बुधैः। संसारवर्धनेऽत्यर्थं दुःखोत्पादनतत्परः ॥ ९३ ॥
यावदस्य हि कामाग्निर्हृदये प्रज्वलत्यलम्। आश्रवन्ति हि कर्माणि तावदस्य निरन्तरम् ॥ ९४ ॥
अहो ते धिषणाहीना ये स्मरस्य वशं गताः। कृत्वा कल्मषमात्मानं पातयन्ति भवार्णवे ॥ ९९ ॥

भावार्थ—कामभाव एक बड़ा रोग है। बड़े-बड़े बुद्धिमानोंसे भी इलाज नहीं बन पड़ता है। इससे संसारकी वृद्धि होती है, सदा ही दुःख मिलता है। जबतक इस जीवके मनमें कामकी आग जलती रहती है, तबतक इसके निरन्तर कर्मोंका आस्रव हुआ करता है। जो मानव कामके वश हो जाते हैं, वे बुद्धिहीन हैं, वे आत्माको मलीन करके उसे संसार-समुद्रमें डुबा देते हैं। अतएव तीनों प्रकारके कामभावोंको आस्रवकारक जानकर रोकना चाहिए।

---

२७. मनुष्यनी, तिर्यञ्चनी, देवांगना—ये तीन भाव

मनुष्यनी व्रत हीनस्य, तिर्यञ्चनी असुह भावना।
देवांगना मिच्छदृष्टी च, त्रिभंगी पतितं दलं ॥ ३५ ॥

अन्वयार्थ—(व्रत हीनस्य) जिसको ब्रह्मचर्यका कोई एक देश व सर्व देश व्रत नहीं है (मनुष्यनी) वह स्त्रीके सम्बन्धमें कामविकार करता है (असुह भावना तिर्यञ्चनी) कामभावकी अशुभ भावनासे कभी किसी पशुओंको देखकर कामविकार कर लेता है या पशुओंकी काम-क्रीड़ा देखकर आनन्द मानता है, (मिच्छदृष्टी देवांगना च)

मिथ्यादृष्टि विषय सुखका रागी पुण्यके फलसे देवांगनाका भोग चाहा करता है (त्रिभंगी पतित दल) ये तीनों प्रकारकी चेतन स्त्रियाँ दुर्गतिमें ले जाने की पात्र हैं।

भावार्थ—कामविकारकी कारण तीन प्रकार चेतन स्त्रियोंको यहाँ बताया है। इनके भीतर रागभाव करनेसे कर्मोंका आस्रव होता है। रागी मिथ्यादृष्टि निरन्तर जगत्की महिलाओके रूपको देखा करता है, देखकर कामविकार उत्पन्न करता है। मोहित होकर उनके साथ हास्य कौतूहल वार्तालाप करता है, किसी तरह उनको वशमें करके उनसे काम रति करता है। व्रतहीन बिलकुल निरर्गल होता है। जिस किसीको व्रत होगा वह सर्व स्त्री मात्रको माता, भगिनी, पुत्रीके समान देखेगा। एकदेशव्रती स्वस्त्रीके सिवाय शेषमें विकार रहित बुद्धि रखेगा। अव्रती मिथ्यात्वीको विवेक नहीं होगा, वह कामभावमें फँसकर स्वस्त्री, परस्त्री, वेश्या, कन्या आदिका भेद न करके चाहे किसीके साथ राग बढ़ा लेगा। इसलिये ज्ञानीको स्त्री मात्रसे शीलभाव रखना चाहिये या स्वस्त्रीमें सन्तोष रखना चाहिए।

तिर्यञ्चनीके शरीरोंको देखकर भी कामीके मनमें कामविकार पैदा हो जाता है। कोई निन्दित मानव कभी कामचेष्टा भी कर लेता है। पशुओंका जोडा मिलाकर उनकी रति देखकर अनुमोदना करता है। इससे भी कर्मास्रव होता है। इसी तरह मिथ्यात्वी कामभोगका आतुर स्वर्गादिमें देवियोंका रूप, लावण्य, हावभाव, विलास विक्रिया सुनकर यह लालसा मनमें बांध लेता है कि मैं देव पैदा हूँ और मनोहर रूपवान देवियोंके साथ क्रीड़ा करूँ। या देव-देवियोके रागभावकी कथा सुनकर उनमें अनुमोदना कर लेता हैं। इस तरह तीन प्रकार चेतन स्त्रियोके निमित्तसे मनमें विकारका होना, वचनोंसे हास्यादि करना, शरीरसे कुचेष्टा करना पापबन्धका कारण है। जो आस्रवसे बचना चाहे उनको कामविकारको मिटाकर सरल शुद्ध दृष्टिसे स्त्री, तिर्यञ्चनी व देवांगनाको देखना चाहिये तथा इनके निमित्तोको बचाना चाहिये। एकान्तमे स्वमाता, बहन, पुत्रोसे भी सम्बन्ध न रखना चाहिये।

भगवती आराधनामें शिवकोटि आचार्य कहते हैं—

णासो अत्थस्स खओ देहस्स व दुग्गदीए मग्गो य। आवाहो य अणत्थस्स होइ पहवो दोसाण ॥९८३॥

भावार्थ—स्त्री धन नाशका कारण है, शरीरको क्षीण करनेवाली है, दुर्गतिका मार्ग है, अनर्थोंका निवास है और दोषोको उत्पन्न करनेवाली है।

महिला विग्घो धम्मस्स होदि परिहो य मोक्ख मग्गस्स।
दुक्खाणय उप्पत्ती महिला सुक्खाण य विवत्ती ॥ ९८४ ॥

भावार्थ—स्त्री कर्मको विघ्न करनेवाली है, मोक्षमार्गमें चलनेसे रोकनेवाली है, दुःखोंका कारण है व सुखोंका नाश करनेवाली है।

पासो व बद्धिदु जे छित्तु महिला असी व पुरिसस्स।
सेल्ल व विंधिदु जे पको व णिमज्जिदु महिला ॥ १८५ ॥

भावार्थ—स्त्री पुरुषको बाँधनेके लिये पाशी है, छेदनेके लिये खड्गके समान है, बींधनेके लिये बाणके समान है, यह संसारमें डुबानेके लिये कीचड़के समान है।

---

२८. काष्ठ, पाषाण, लेप—ये तीन भाव

काष्ठ पाषाण दिष्टं च, लेपं दिष्टि अनुरागतः।
पाप कर्म च वर्धन्ति, त्रिभंगी असुहं दलं ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थ—(अनुरागत) रागभावसे (काष्ठ पाषाण दिष्ट च) काठकी व पाषाणकी मूर्ति देखना (लेप दिष्टि) व चित्रोंको देखना (पाप कर्मं च वर्धन्ति) पाप कर्मके बन्धका कारण है (त्रिभंगी असुहं दलं) ये तीन अशुभ भावोंके कारण हैं।

भावार्थ—गाथा ३५ में चेतन स्त्रियोंके तीन भेद बताये हैं। यहाँ अचेतन स्त्रीके तीन भेद बताये हैं। काष्ठकी स्त्री, पाषाणकी स्त्री, चित्रकी स्त्री, स्त्रियोंके शृंगारित आकार बने हुए रागी पुरुषोंके मनमें रागभावसे देखे जाने पर रागभावके अधिक पैदा करनेमें निमित्त कारण हैं। जैसे—चेतन स्त्रीके बाहरी अंग दिखते हैं जो कि शरीराश्रित जड़ है और उनको देखकर भावोंमें विकार हो जाता है, वैसे जड़ पुद्गलके बने काठ, पाषाण व लेपके आकारोंको देखनेसे विकार हो सकता है। इसलिए ब्रह्मचर्यकी रक्षाके लिये ऐसी रागभाव उत्पन्न करानेमें कारणभूत किसी भी काठ व पाषाणकी मूर्तिको व चित्रको नहीं देखना चाहिये न उनका निमित्त मिलाना चाहिये। अपने बैठने व शयनके स्थानमें ऐसी कोई रागवर्द्धक स्त्री आदिकी मूर्ति व चित्र नहीं रखना चाहिये, न ऐसे खेल-तमाशे देखना चाहिये जिनमें चित्रोंके द्वारा कामभावोंका प्रदर्शन दिखाया जाता हो। परिणाम निमित्ताधीन है। जबतक ऊँची वीतराग दशा प्राप्त न हो जबतक आहार-विहार निद्राका आक्रमण है, जो छट्टे प्रमत्तविरतगुणस्थान तक सम्भव है तबतक रागवर्द्धक मूर्ति व चित्रोंके निमित्तोंको बचाना चाहिये। अशुभभाव उत्पादक चित्रोंसे व मूर्तियोंसे भावोंमें कामभाव विकार

हो जाना सम्भव है तब पाप कर्मका बन्ध हो जायगा। अतएव आस्रवसे बचनेके लिए रागवर्द्धक मूर्ति व चित्रोंका अवलोकन तजना चाहिए। साधु अवस्थामें गृह त्याग कर वनमें व एकान्तमें निवास इसीलिए किया जाता है कि वहाँ राग-द्वेषवर्द्धक निमित्त नहीं है। बाहरी परिग्रह अन्तरंगमें मूर्च्छा उत्पन्न करनेमें कारणभूत हैं। इसलिए परिग्रहका त्याग भावोंमें निर्ममत्वकी उत्पत्तिका उपाय है, पाप भाव पैदा करते हैं, बाहरी पदार्थ निमित्त हो जाते हैं। आहार, भय, मैथुन, परिग्रह ये चार संज्ञायें बाहरी निमित्तोंके होने पर पैदा हो जाती हैं। जैसे सुन्दर भोजनको देखकर आहारका भाव, भयप्रद सिंहादि चित्रोंके देखने पर भयका भाव, कामभाव उत्पादक काष्ठ पाषाण व चित्रके स्त्री-पुरुषोंके रूप देखनेसे मैथुनभाव, सुन्दर वस्त्रालंकार मकानादि देखनेसे परिग्रहमें मूर्च्छाभाव उत्पन्न हो जाता है। इसीलिए गोम्मटसारमें कर्मोंके उदयमें नोकर्म बाहरी कारण बताये हैं।

पुरुषार्थसिद्धयुपायमें कहा है—

हरिततृणाङ्कुरचारिणि मन्दा मृगशावके भवति मूर्च्छा।
उदरनिकरोन्माथिनि मार्जारे सैव जायते तीव्रा ॥ १२१ ॥
निर्बाधं संसिद्ध्येत्कार्यविशेषो हि कारणविशेषात्। औधस्यखण्डयोरिव माधुर्यप्रीतिभेद इव ॥ १२२ ॥
माधुर्यप्रीतिः किल दुग्धे मन्दैव मन्दमाधुर्ये। सैवोत्कटमाधुर्ये खण्डे व्यपदिश्यते तीव्रा ॥ १२३ ॥

भावार्थ—हरी घास खानेवाले मृगके बच्चोंमें मूर्च्छा कम होती है जबकि मूषक समूहको नाश करनेवाले बिलावमें मूर्च्छा तीव्र होती है। बाहरी कारण-विशेषसे भीतरी परिणामोंमें कार्य होनेकी विशेषता बाधा रहित सिद्ध है। जैसे दूध व खांडमें मीठापन कम व अधिक होनेसे प्रीति भी कम व अधिक होती है। दूधमें कम मीठापन है, इससे मीठेपनेकी अपेक्षा दूधमें प्रीति कम होती है। खाडमें मीठा-पन अधिक है इससे खाडमें अधिक प्रीति होती है। अतएव भावोंमें रागभावकी उत्पत्तिके कारण बाहरी पदार्थोंका संयोग निमित्त होता है, ऐसा जानकर उनका निमित्त बचाना चाहिये।

---

२९. रूप, अरुप, लावन्य—ये तीन भाव

रूपं अरूपं लावन्यं, दिष्टितं असुह भावना।
ते नरा दुक्ख साहन्ति, त्रिभंगी दल मोहितं ॥ ३७ ॥

अन्वयार्थ—(रूप अरूपं लावन्यं दिष्टित असुह भावना) स्वरूप, कुरूप तथा सुन्दरताको देखनेसे अशुभ भावना पैदा हो जाती है (ते नरा दुक्ख साहन्ति) जो मानव ऐसे स्वरूप, कुरूप व लावण्यके देखनेमें उपयोग जोड़ते हैं वे राग-द्वेष मोहको पैदा करके पाप बाँध उसका फल दुःख पाते हैं (त्रिभंगी दल मोहितं) मोहके पैदा करनेके ये तीन भाव हैं ।

भावार्थ—जगमें नाना प्रकारके पदार्थ हैं—चेतन व अचेतन हैं । पाँचों इन्द्रियोंके द्वारा स्पर्शने योग्य, स्वादने योग्य, सूँघने योग्य, देखने योग्य, सुनने योग्य, नाना प्रकारके पदार्थोंको इन्द्रियोंसे ग्रहण कर मिथ्यादृष्टि जीव समभाव नहीं रखते। मनोज्ञ व इष्ट विषयोंमें राग व अनिष्ट व अमनोज्ञ विषयोंमें द्वेषभाव उत्पन्न कर लेते हैं । मोहित करनेवाली स्त्रियोंकी व पुरुषोंकी सुन्दरताको देखकर मोहित हो जाते हैं । मिथ्यादृष्टि अज्ञानीके भीतर अशुभ भावनाओंके उत्पन्न करनेमें इन्द्रियोंके द्वारा पदार्थोंका ग्रहण निमित्त कारण है । अच्छे गद्दे, तकिये, शय्या, वस्त्रको देख-कर व स्पर्श कर उनको प्राप्त करके स्पर्श करनेके भाव हो जाते हैं, नाना प्रकार स्वादिष्ट भोजन सामग्रीको स्वादमें लेनेसे उनके भीतर तृष्णा पैदा हो जाती है । पुनः-पुनः ऐसे मिष्ट भोग प्राप्त करना चाहता है—उद्यम करता है । न्यायसे द्रव्य न मिले तो अन्यायसे द्रव्य लाता है जिह्वा इन्द्रियको तृप्त करता है । सुन्दर तेल-अतर व पुष्पोंको सूँघकर उनके भीतर रागभाव बढ़ जाता है, पुनः-पुनः उससे भी अधिक सुगन्धित द्रव्योंकी कामना करता है, उद्यम करता है, जिस तरहसे हो मिलाता है । सुन्दर नगर, उपवन, महल, आभूषण, स्त्री, पुरुष, चित्रादि, नाटकादि देखकर रागभाव पैदा कर लेता है । बार-बार सुन्दर रूपोंको देखनेकी चेष्टा करता है । न्याय व अन्यायसे पैसा लाकर सुन्दर पदार्थोंको देखनेको जाता है । देश-परदेश भ्रमण करता है । सुन्दर राग-रागिणी सुनकर गाना सुननेका राग बढ़ जाता है । बार-बार उससे भी सुरीले गान सुनना चाहता है । जिस तरहसे हो वैसे निमित्त मिलाता है । इसी तरह यदि कंकड़-पत्थरका व काँटोंका स्पर्श होता है तो द्वेषभाव हो जाता है । खारा, कटुक, अस्वादिष्ट, जला, अधपका भोजन मिलता है तो द्वेष-भाव कर लेता है । दुर्गन्धके सूँघने पर, कुरूपोंके देखने पर, गधे आदिके दुस्वरोंके सुनने पर द्वेषभाव पैदा हो जाता है । बार-बार ऐसे भावोंके कारणोंसे बचनेकी चेष्टा करता है । यदि अशुभ भोजनादि मिलते ही जाते हैं तो बड़ा आर्त्तध्यान करता है

व स्त्री आदि पर क्रोधित हो जाता है। लावण्यपूर्ण रूप देखकर मोही जीव उन्मत्त होकर अनेक कुचेष्टा करता है। किसी स्त्रीकी सुन्दरता पर मोहित होकर उसकी प्राप्तिके लिए अनेक प्रकारके मायाचार करता है, अप्राप्ति होने पर शोक करता है, कभी-कभी अपघात कर लेता है। इस तरह मिथ्यादृष्टि जीव इन्द्रियोंके द्वारा विषयों-को ग्रहण कर राग-द्वेष मोहमें फँसकर अशुभ भावनाओंसे तीव्र पाप बन्ध करके संसारमें दुःख उठाता है। इसीलिए बन्धके कारणोंमें इन्द्रियोंको मुख्य कहा गया है।

सार-समुच्चयमें कहा है—

अक्षाण्येव स्वकीयानि शत्रवो दुःखहेतवः। विषयेषु प्रवृत्तानि कषायवशवर्तिन ॥ ७९ ॥
इन्द्रियाणां यदा छन्दे वर्तते मोहसंगतः। तदात्मैव तव शत्रुरात्मनो दुःखबन्धनः ॥ ८० ॥
इन्द्रियाणि वशे यस्य यस्य दुष्टं न मानसम्। आत्मा धर्मरतो यस्य सफलं तस्य जीवितम् ॥ ८५ ॥

भावार्थ—कषायवान जीवकी अपनी इन्द्रियाँ ही महान् शत्रु हैं, दुःखकी कारण हैं, क्योंकि अपने-अपने विषयोंमें जाकर रागद्वेष मोह पैदा करा देती हैं। जब यह मोही आत्मा इन्द्रियोंके वशमें प्रवृत्ति करता है तब यह आत्मा आप ही अपना शत्रु हो जाता है, इस लोक परलोकमें दुःख सहता है। इसलिए जिसके वशमें इन्द्रियाँ हैं व जिसका मन कषायोंके कारण दोषी नहीं है व जो धर्ममें रत है, उसी आत्माका जीवन सफल है। मूलाचार समयसार अधिकारमें कहा है—

जिब्भोवत्थणिमित्तं जीवा दुक्खं अणादिसंसारे। पत्तो अणंतसो तो जिब्भोवत्थे जयह दाणिं ॥ ९७ ॥

भावार्थ—जिह्वा व स्पर्श इन्द्रियोंके कारण इस जीवने इस अनादि संसारमें अनन्तवार दुःख पाया है। इसलिए अब तो रसना व स्पर्श इन्द्रियोंको विजय कर।

---

३०. माया, मोह, प्रमाद—ये तीन भाव

माया मोह ममत्तस्य, प्रमादं असुह चिंतनं।
ममत्तं मिथ्या संजुत्तं, त्रिभंगी नरयं पतं ॥ ३८ ॥

अन्वयार्थ—(माया मोह ममत्तस्य) संसारकी मायाके भीतर मोह ममता करनेमें (प्रमाद असुह चिंतन) प्रमादभाव होता है तब अशुभ चिन्ताएँ होती हैं (मिथ्या संजुत्त ममत्त) यह तीन मिथ्यादर्शन सहित ममताभाव हैं (त्रिभंगी नरय पत्त) संसारकी माया, मोह, प्रमाद ये तीन भाव नरकमें जानेके कारण हैं।

भावार्थ—संसारकी क्षणभंगुर स्वप्नसम अवस्थाओंको माया कहा गया है।

मायाके भीतर यह मिथ्यादृष्टि जीव मोह कर लेता है, मोहसे प्रमाद भाव होता है तब धर्मसे व न्यायसे चलायमान होकर व कषायके वशीभूत होकर प्रवृत्ति हो जाती है। मिथ्यादृष्टिको निश्चयनय या द्रव्यदृष्टिका पता नहीं है। वह यह नहीं जानता है कि यह लोक जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल इन छः द्रव्योंका समुदाय है। जितनी कुछ अवस्थाएँ इन्द्रियोंसे ग्रहणमें आती हैं वे सब बदलनेवाली अथिर अवस्थाएँ होती हैं। उनकी दशा बिजलीके चमत्कारके समान व पानीके बुद्बुद्के समान व इन्द्र धनुषके समान व शरद्कालके मेघके समान व धूप-छायाके समान चञ्चल हैं। अज्ञानी प्राणी इन्द्रियोंके विषयोंका लोभी उन पदार्थोंको राग सहित जानता है, जो अपनेको मनोज्ञ भासते हैं उनमें राग कर लेता है, जो अमनोज्ञ भासते हैं उनमें द्वेष कर लेता है। रागसे पीड़ित हो उनका मोही हो जाता है, मोही होकर उनच पदार्थोंकी बार-बार प्राप्तिका, रक्षाका यत्न करता है, धर्म व न्यायकी रक्षाका विचार मनसे हट जाता है। धर्मसे अनादरभाव ही प्रमाद है। प्रमादके वशीभूत होकर स्वच्छन्द हो हिंसा करता है, असत्य बोलता है, चोरी करता है, कुशील सेवन करता है, परिग्रह एकत्र करता है, पाँचों पापोंमें फँस जाता है, रौद्र-ध्यानी हो जाता है। इष्ट वस्तुके वियोगमें व अनिष्टके संयोगमें दुःखित मन होकर आर्त्तध्यान कर लेता है। जिससे नर्क आयु बाँधकर नर्क चला जाता है, इन्द्रियोंके तीव्र लोभी जीव ही घोर पाप करते हैं, स्त्रीके पीछे बड़े-बड़े युद्ध छेड़ लेते हैं, किन्हींको विष देकर मार डालते है। धनके पीछे अनेक प्रपञ्च रच-कर दूसरोंको ठग लेते हैं। घोर दुःख जब इष्ट वियोगका होता है तब अपना घात कर लेते हैं।

संसारकी मायाके सम्बन्धमें सारसमुच्चयमें कहा है—

जीवितं विद्युता तुल्यं संयोगाः स्वप्नसन्निभाः। सन्ध्यारागसमः स्नेहः शरीरं तृणबिन्दुवत् ॥ १५० ॥

भावार्थ—यह जीवन तो बिजलीके चमत्कारके समान क्षणभंगुर है, स्वप्नके समान कुटुम्बादिका संयोग है, सन्ध्याकी लालीके समान जगत्के प्राणियोंके साथ स्नेह है। तृण पर पड़ी हुई बूँदके समान शरीर क्षणमें पतनशील हैं।

शक्रचापसमा भोगाः सम्पदो जलदोपमाः। यौवनं जलरेखेव सर्वमेतदशाश्वतम् ॥ १५१ ॥

भावार्थ—इन्द्रियोंके भोग इन्द्र धनुषके समान देखते-देखते नष्ट हो जाते हैं। मेघोंके विघटनेके समान लक्ष्मी विला जाती हैं। पानीमें खींची हुई रेखाके समान जवानी मिट जाती है। सर्व ही जगत्‌की पर्यायें क्षणभंगुर हैं।

गृहाचारकवासेऽस्मिन् विषयामिषलोभिन । सीदति नरशार्दूला बद्धा बान्धवबन्धनैः ॥ १८३ ॥

भावार्थ—इस गृहस्थके खोटे वासमें रहते हुए पाँचों इन्द्रियोंके माँसके लोभी सिंहके समान बड़े-बड़े मानव भी बन्धुजनों व परिवारके स्नेहमें बँधे हुए दुःख उठाते रहते हैं।

कथं नोद्विजसे मूढ ! दुःखात् संसृतिसंभवात् । येन त्वं विषयासक्तो लोभेनास्मिन् वशीकृतः ॥ १८६ ॥

भावार्थ—हे मूर्ख प्राणी ! संसारके महान् दुःखोंसे तुझे वैराग्य क्यों नहीं आता है जिनसे तू इस संसारमें विषयोंके भीतर आसक्त होकर लोभके वशमें पड़ा है। सर्व पापोंका कारण प्रमाद है। प्रमादका कारण संसारकी मायामें मोह है, ऐसा जान इन तीन आस्रव भावोंसे बचना योग्य है।

---

३१. अनन्तानु, राग, मिश्र—ये तीन भाव

अनन्तानु कषायं च, रागादि मिश्र भावना ।
दुर्बुद्धि कर्म वर्धंते, त्रिभंगी दुर्गति कारनं ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थ—(अनन्तानु कषायं च) अनन्तानुबन्धी कषाय (रागादि) राग-द्वेषादि भाव (मिश्र भावना) अनन्तानुबन्धी कषाय सहित रागद्वेषकी भावना (दुर्बुद्धि कर्म वर्धंते) इनसे मिथ्यादृष्टी मिथ्या बुद्धिधारी कर्मोंका बन्ध करते हैं (त्रिभंगी दुर्गति कारन) तीनों ही प्रकारके भाव मोक्षसे विरुद्ध चारों गतियोंके कारण हैं।

भावार्थ—अनन्तानुबन्धी कषाय उसे कहते हैं जो सम्यग्दर्शन तथा स्वरूपाचरणचारित्रको रोके। जबतक उस कषायका उदय होता है तबतक सम्यग्दर्शन लाभ नहीं होता है।

पुरुषार्थसिद्धयुपायमें कहा है—

तत्त्वार्थश्रद्धाने निर्युक्त प्रथममेव मिथ्यात्वम्। सम्यग्दर्शनचौरा. प्रथमकषायाश्च चत्वारः ॥ १२४ ॥

भावार्थ—तत्त्वार्थका श्रद्धान न होनेमें कारण मिथ्यात्वकर्म व सम्यग्दर्शनके लोपनेवाली प्रथम चार अनन्तानुबन्धी कषाय हैं।

अनन्तानुबन्धी कषायके होते हुए भी छहों लेश्याएँ सम्भव हैं। जब कषायोंका उदय होता है तब अनुभागके अनुसार फल मिलता है। कषायोंका अनुभाग पाषाण, हड्डी, काठ, बेल इन चार दृष्टान्तोंसे तीव्रतर, तीव्र, मन्द, मन्दतर होता है। अनन्तानुबन्धी कषायमें भी ये भेद यथासम्भव होते हैं। एक बात और जान

लेनी चाहिये कि जब अनन्तानुबन्धीका उदय होता है तब साथ ही अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान व संज्वलनका भी उदय होता है। अनन्तानुबन्धी क्रोधके साथ तीन नीचेके क्रोधका भी उदय होता है, इसी तरह अप्रत्याख्यानके साथ प्रत्याख्यान व संज्वलनका उदय होता है। यही कारण है कि मिथ्यादृष्टी जीव अनन्तानुबन्धी कषायके उदयको भोगनेवाला कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल छहो लेश्याओंके भावोंको प्राप्त हो सकता है अर्थात् उसके अशुभतम, शुभतर, अशुभ, शुभ, शुभतर, शुभतम, छहों प्रकारके तीन बुरे तीन अच्छे भाव हो सकते हैं। यही कारण है जो ऐसी कषायको रखनेवाला द्रव्यलिंगी मुनि नौग्रैवेयिक तक जाकर शुक्ललेश्याधारी अहमिंद्र हो जाता है। चारों गतियोंमें मिथ्यादृष्टी भ्रमण करता हुआ मनुष्योंमें—राजा, महाराजा, चक्रवर्ती, भोगभूमिका जीव, देवोंमें—भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, कल्पवासी १६ स्वर्गोंमें व कल्पातीत नौग्रैवियिक तक जन्मता है, नारकी पशु सब प्रकार तो हो ही सकता है। यहाँ कहनेका प्रयोजन यह है कि अनन्तानुबन्धी कषाय अनन्त संसारका कारण है। यह जीव नौग्रैवेयिक भी अनन्तवार हो चुका तो भी संसारके जन्म मरणसे छूट नहीं सकता है।

दूसरे आस्रवकारी भाव रागादि हैं। यहाँ सामान्य राग, द्वेष, मोहको लिया गया है। चाहे अनन्तानुबन्धी सहित हों या रहित हों। अनन्तानुबन्धी आदि कषायोंके उदयमें जो शुक्ललेश्याके होते हुए वैराग्य भाव रहता है जिससे द्रव्यलिंगी मुनि उपसर्ग परीषहोंको समभावोंसे सह लेता है उसकी अपेक्षा नहीं हैं। राग, द्वेष, मोह, भाव जबतक इस जीवके होते रहेंगे इसके कर्मबन्ध होता रहेगा। अतएव राग, द्वेष, मोहको दूर करना चाहिये। प्रवचनसारमें कहा है—

परिणामादो बन्धो, परिणामो रागदोसमोहजुदो।
असुहो मोहपदेसो सुहो व असुहो हवदि रागो॥ ९१॥

भावार्थ—अशुद्ध परिणामोंसे बन्ध होता है, वे परिणाम राग, द्वेष, मोह हैं। उनमेंसे मोह और द्वेष तो अशुभ भाव हैं। रागभाव शुभ व अशुभके भेदसे दो प्रकारका होता है। संसारकी रुचि मोहभाव है, वह अशुभ भाव है। क्रोध, मान व अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इनके उदयसे परसे द्वेषभाव होता है। सो भी अशुभ भाव है। द्वेषसे परिणाम संक्लेशरूप दुःखित रहते हैं। मोहसे मलीन रहते हैं। मोह व द्वेषसे तो पापका ही बन्ध होता है। लोभ व माया कषाय तथा रति, हास्य, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद इनके उदयसे रागभाव होता है। यह रागभाव जब विषय कषायो-

की पुष्टिके लिये होता है तब वह अशुभ राग है और पाप बन्धका कारण है। जब कभी इस रागमें कारण कषायोका मन्द उदय होता है तब पाँच परमेष्ठोकी भक्ति, पूजा, दान, परोपकार, जप तथा स्वाध्याय आदि शुभ कामोंके करनेकी कांक्षा होती है, इसे शुभ रागभाव कहते हैं, इससे पुण्यका बन्ध भी होता है। शुभ भाव व अशुभ भाव दोनो ही बन्धमें कारण हैं। अतएव बन्धसे बचनेके लिये शुद्धोपयोगका प्रयत्न करना चाहिये।

ये ही रागद्वेष मोह भाव जब अनन्तानुबन्धी कषायके उदय सहित होते हैं तब उनको मिश्रभाव कहते हैं। साधारण रूपसे मिथ्यादृष्टी, मिथ्याज्ञानी इन मिश्र भावोंमें फँसा रहता है। मोह और द्वेष तथा अशुभ राग अधिकतर करता है, जिससे पापका विशेष बन्ध करता है, कभी दान व परोपकारके भावसे पुण्य भी बाँध लेता है। परन्तु वह पापानुबन्धी पुण्य होता है अर्थात् जब वह पुण्य उदयमें आता है व धनादि प्राप्त होता है तब इसे पाप कर्मोंमें खर्च करनेकी बुद्धि पैदा होती है। पंचमगति मोक्षकी प्राप्तिके लिये ये तीन ही प्रकारके भाव त्याग करके एक शुद्ध भावकी ही भावना करनी योग्य है।

भावपाहुड़में श्री कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं—

अप्पा अप्पम्मि रओ रायादिषु सयलदोसपरिचत्तो। ससारतरणहेदू धम्मोत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठ ॥८५॥

भावार्थ—जो आत्मा रागद्वेषादि सर्व दोषोको छोडकर अपने आत्माके स्वभावमें लवलीन होता है वही ससार-सागरसे तिरनेका उपाय है, वही धर्म है, ऐसा जिनेन्द्रोंने कहा है। प्रथम ही मिथ्यात्व व अनन्तानुबन्धी कषायोकी चौकडीको जीतना उचित है। उसका उपाय भेदविज्ञान पूर्वक स्वानुभव पानेकी रुचि है।

---

३२. कारण, कार्य, दुचित्त–ये तीन भाव

कारनं मिथ्या भयं प्रोक्तं, कार्यं दुर्गति बन्धनं।
दुचित्तं अनृतं वादे, त्रिभंगी नरयं पत ॥ ४० ॥

अन्वयार्थ—(कारन मिथ्या भय प्रोक्त) मिथ्यादर्शन सहित परिणाम संसारका कारण कहा गया है (कार्यं दुर्गति बधन) उसका फल दुर्गतिका बन्ध है (अनृत वादे दुचित्त) तथा वाद विवादमें असत्य बोलनेकी खोटी चिन्ता है (त्रिभङ्गी नरय पत) ये तीनों ही नरक गतिके पात्र हैं।

भावार्थ—मिथ्यादर्शन संसारका कारण इसीलिये कहा गया है कि मोक्षवाड़ीका प्रथम सोपान सम्यग्दर्शनका लाभ इसके उदयमें नहीं होता है। आत्माको औरका और श्रद्धान करना, रागी-द्वेषी मोही जानना, विषयसुखको सुख समझना, मिथ्या तत्त्वोमें रुचि करना, हिंसादि भावोमें धर्म मानना, रागी-द्वेषी देव गुरु धर्मको मानना, ये सब मिथ्यात्व हैं। जबतक मिथ्यात्व कारण बना रहेगा, तबतक उसका कार्य कुगतिका बन्ध होता रहेगा। मिथ्यात्व सहित देवगति भी कुगति है। क्योंकि वहाँ आत्मानन्दके लाभसे वञ्चित है। मिथ्यादृष्टी हठी होता है, मिथ्या तत्त्वोंकी गाढ़ श्रद्धा रखता है दूसरोको वाद-विवादमें जीत लूँ, इसलिये मिथ्या प्रलापोंको सोचनेकी चिन्तामें लगा रहता है। पशुबलिमें धर्म है, रात्रिको खानेमें धर्म है, गंगा स्नानमें धर्म है, दीवालीमें जुआ खेलनेमे धर्म है, होली जलानेमें धर्म है, इत्यादि मिथ्या कर्मोंकी पुष्टिके लिये शास्त्र लिखता है, वाद करता है। भारतमें यज्ञोंमें पशुबलिका प्रचार नारद और पर्वतके वादसे चल पड़ा। अज शब्दके अर्थ करनेमें नारदका पक्ष था कि न उगने योग्य धान्य अज शब्दके अर्थ हैं, ये ही होममें डाले जा सकते हैं। पर्वतका पक्ष था कि अजके अर्थ बकरा है। दोनोंका वाद बहुत बढ़ा तब राजा वसुके यहाँ न्यायको गये। वसुने पर्वतकी माताके कहनेमें आकर पर्वतका पक्ष ठीक है ऐसा कह दिया। तबसे यज्ञोंमें पशुबलि चल पड़ा। पर्वतने ऐसे कुशास्त्रोंकी रचना भी कर दी। ऐसा मिथ्या विचार महान् अनर्थकारी हो गया। पशु समाजका घातक हो गया। वास्तवमें मिथ्यात्वके समान कोई वैरी नहीं है। रत्नकरण्डश्रावकाचारमें समन्तभद्राचार्य कहते हैं—

न सम्यक्त्वसम किंचित् त्रैकाले त्रिजगत्यपि। श्रेयाऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं न्यायत्तनुभृताम् ॥ ३४ ॥

भावार्थ—तीन काल व तीन लोकमें सम्यग्दर्शनके समान प्राणियोंका कोई कल्याणकारी नहीं है तथा मिथ्यात्वके समान दूसरा कोई दुःखदाता व कल्याणहर्ता नहीं है। अतएव मिथ्यात्वका त्याग ही करना योग्य है।

---

३३. आलाप, लोकरंजक, शोक—ये तीन भाव

आलापं असुद्ध वाक्यं, मिथ्या माया लोकरंजनं।
सोकं अनृतं दिस्टा, त्रिभंगी नरयं पतं ॥ ४१ ॥

अन्वयार्थ---(असुद्ध वाक्य आलाप) अशुद्ध वचनोंका कहना आलाप है (मिथ्य माया लोकरजन) मिथ्या व मायाचार सहित कथन करके लोगोंको प्रसन्न करना लोक-रंजन है (अनृत दिस्टा सोक) अहितकारी बातके होने पर शोक होता है (त्रिभगी नरय पत) ये तीन भाव नरक गतिके पात्र हैं ।

भावार्थ—संसारी मानव स्त्री, भोजन, राज्य व राजा कथाओंमें व और भी नाना प्रकारकी विकथाओंमें लगे रहते हैं। जिन कथाओं व वाक्योंसे संसारके विषय-भोगोको, मिथ्या श्रद्धानकी व कषायोंकी पुष्टि हो वे सब आलाप हैं । रागी जीव नाना प्रकार नाटक, उपन्यास, खेल, गान, शृंगार, काम, मोहवर्द्धक बनाते हैं। उन कथाओके द्वारा लोगोंका मन रंजायमान करके अपना स्वार्थ साधते है । उनसे द्रव्य प्राप्त करके सात व्यसनोंमें खर्च करते हैं । दूसरोको व्यसनोंमें फँसाकर पापका बन्ध करते हैं । बहुधा नवयुवक नाटक खेल तमाशोसे व वेश्याके गानोंसे व कुत्सित-चर्चासे व भण्ड वचनोंके आलापमें रजायमान होते हैं, कुत्सित गोष्ठी बनाकर भॉग पीते हैं, बकते हैं, तास, सतरज रमते है, अन्यायके विषय सेवते हैं, अभक्ष्य भक्षण करते हैं, यह मनरंजन करानेवाले दोनो उसी तरह संसार-समुद्रमें डूबते है जैसे पत्थर-की नाव चलानेवाले व उस पर बैठनेवाले दोनों डूबते हैं ।

जगत्‌में अनेक कुगुरु भक्तोके मनको प्रसन्न करनेवाली कथाओको कह कर उनसे द्रव्य सग्रह करते हैं व आप विषयोमें खर्च करते हैं । भक्तोको आत्माधीन धर्मको लेश भी न बताकर रागवर्द्धक व हिंसावर्द्धक क्रियाओमें लगा देते हैं । पुत्र लाभ व धन लाभ होगा ऐसा लोभ दे देते हैं । इस लोभमें अज्ञानी प्राणी अनर्थ करके धर्म मान लेते हैं। ऐसे आलापोंसे स्वपरको कुमार्गमें पटकनेवाले प्राणी नरकायु बांध लेते है । तीसरा भाव तीव्र शोक है इनके भी अनेक कारण हो जाते हैं । जब कभी मिथ्या व मायाचारसे वर्तते हुए व लोगोको रजायमान करते हुए इष्टका लाभ नही होता है व अनिष्टका संयोग हो जाता है व इच्छित वस्तुकी चिन्ता करते हुए नही मिलती है तब भारी शोक होता है । इष्ट वस्तुके वियोग होने पर अज्ञानीको महान् दुःख होता है। मिथ्या मोहके वशमें पड़कर कोई-कोई किसी स्त्री पर आसक्त हो जाते है । जब उसका लाभ नहीं होता है व वियोग होता है तब शोकार्त होकर कोई-काई अपना अपघात कर डालते हैं, नर्क गतिमें चले जाते है । बुद्धिमानोको वही चर्या करनी चाहिए जिससे शुद्ध आत्मीक धर्मकी तरफ व लोकहित व परोप-

कारकी तरफ व न्यायरूप बर्तनकी तरफ प्रेम पैदा हो तथा विषय कषायके त्यागमें व पर उपकारसे रुचि पैदा हो। धर्मकथा व समाज व देशहित कथा स्वपरको लाभकारी हैं, जिससे कथा करनेवालेका उपयोग भी शुभ रहे व सुननेवालोंका भी उपयोग शुभ रहे, वह कथा करने योग्य कही जा सकती है।

पुरुषार्थसिद्धयुपायमें कहा है—

रागादिवर्धनाना दुष्टकथानामबोधबहुलानाम्। न कदाचन कुर्वीत श्रवणार्जनशिक्षणादीनि ॥ १४५ ॥

भावार्थ—रागद्वेष मोह बढ़ानेवाली व दूसरोंका बुरा करानेवाली दुष्ट कथाएँ तथा अज्ञानवर्द्धक चर्चाओंको न कभी सुनना चाहिये न उनको सिखाना चाहिए, न ऐसी कथाएँ बनाना चाहिये। ऐसी कथाएँ दुःश्रुति अनर्थदण्ड हैं, वृथा ही पापको बाँधनेवाली होती हैं। पापवर्द्धक व रागवर्द्धक कथाओंमें अनुमोदनाका भारी दोष होता है। किसीने किसी परस्त्रीको वश करके विषयभोग किया, उसकी रंजायमान कथा सुनकर उसकी असत् क्रियामें अनुमोदना हो जाती है। तब विषयभोग न भोगते हुए भी तीव्र पापका बन्ध हो जाता है। समझदारोंको उचित है कि ऐसे नाटक, उपन्यास कदापि न पढ़ें जिनसे कामभावकी वृद्धि हो। धर्मोत्तेजक शास्त्रोंको व परोपकारी महान् पुरुषोंके जीवन-चरित्रोंको पढ़ना योग्य है। सारसमुच्चयमें कहा है—

निरवद्य वदेद्वाक्य मधुर हितमर्थवत्। प्राणिना चेतसोऽह्लादि मिथ्यावादबहिष्कृतम् ॥ ३२० ॥

भावार्थ—वचन ऐसा बोलना चाहिये जो पापका प्रचारक न हो, मीठा हो, हितकारी हो, अर्थ सहित हो, प्राणियोंके मनको प्रसन्न करनेवाला हो, परन्तु मिथ्या कथनसे रहित हो।

---

३४. रसन, स्पर्शन, घ्राण—ये तीन भाव

रसनं स्पर्सनं भावं, घ्रानं घ्रान संजुतं।
असुहं कर्म संप्रोक्तं, त्रिभंगी दल पस्यते ॥ ४२ ॥

अन्वयार्थ—(रसन स्पर्सन भावं) **रसनाका व स्पर्शनका लोभ** (घ्रान संजुत घ्रान) **नाशिका इन्द्रियसे सूँघनेका लोभ** (असुह कर्म संप्रोक्त) **अशुभ कर्म कहा गया है** (त्रिभगो दल पस्यते) **ये तीन आस्रवके पात्र जानने चाहिये।**

भावार्थ—पाप कर्मके आस्रवके कारण पाँचो इन्द्रियोंके विषयके लोभसे बनते

हैं। इन पाँचों इन्द्रियोंमेंसे तीन इन्द्रियोंके विषय बहुत प्रबल देखे जाते हैं। उन्हींका इस गाथामें वर्णन है। जिह्वा इन्द्रियके वशीभूत होकर मानव भक्ष्य-अभक्ष्य, न्याय-अन्यायका ध्यान छोड़ बैठते हैं। रस युक्त पदार्थोंके खानेकी भावनासे बाजारकी अशुद्ध मिठाई व पकवान्न व नमकीन खरीद कर खा लेते हैं। ये जानते है कि इनके बननेमें अनछन पानी लगा है। विना जन्तुओंके हटाये हुए मैदा व शक्कर लगी है। जन्तुओंकी हिंसासे तैयार हुई यह वस्तु मर्यादा रहित है, खाने योग्य नहीं है फिर भी जबानके स्वादवश उनको बडे रागवश खा लिया जाता है। मादक पदार्थोंका ग्रहण भी इस रसनाके स्वादवश होता है।

रसनाकी ही लोलुपताके कारण अधिक रसीले पदार्थोंके लिये अधिक धनकी आवश्यकता होती है तब यदि न्यायसे आवश्यक धन नहीं मिलता है तब यह असत्य बोल करके व चोरी करके व विश्वासघात करके धन एकत्र करता है। परकी हिंसा होगी, परको कष्ट पहुँचेगा, यह भाव मनसे निकल जाता है। कठोर भाव, स्वार्थ साधनका एकातभाव जम जाता है, ऐसा मानव धर्मके नियमोंको नहीं पाल सकता है। अभक्ष्य भक्षणसे व अन्याय वर्तनसे तीव्र पाप बाँध लेता है। स्पर्शन इन्द्रियका लोलुपी स्वस्त्रीसे अतिशय भोग करके निर्बल व धर्महीन हो जाता है, फिर भी सन्तोष नहीं पाता है। परस्त्री व वेश्याओंके प्रति सहयोग करता है, प्रचुर धनका नाश करता है। धन न्यायसे नहीं मिलता है तब अन्यायसे एकत्र करता है। स्पर्शन इन्द्रियका लोभी निरन्तर काम भावसे आकुल रहता है, कभी तृप्ति नहीं पाता है। धर्माचरणमें बुद्धि नहीं लगाता है। तीव्र अन्यायपूर्वक कामकी चेष्टासे तीव्र पापका बन्ध कर लेता है। तीसरी घ्राण इन्द्रियका लोभी भी अतर, तेल, फुलेल, पुष्पकी सुगन्धमें लीन होकर पुष्पोंका अधिक व्यवहार करके हिंसा करता है। वास्तवमें मिथ्यादृष्टीकी श्रद्धा विषयसुखमें रहती है। वह आत्मीक सुखको पहचानता ही नहीं। इसलिये वह पाँचों इन्द्रियोंका लोलुपी बना रहता है। उनमेंसे स्पर्शन, घ्राण व रसना इन्द्रियोंकी अति प्रबलतासे अभक्ष्य भोजन व अन्यायके कामभोगमें रम करके महान् पापकर्मका आस्रव करता है। जो आस्रवसे बचना चाहे उनको अपनी पाँचों ही इन्द्रियोंको वशमें रखना चाहिये। न्यायपूर्वक इन्द्रियोंका भोग गृहस्थीको ऐसा करना चाहिये जिससे धर्मके नियमोंका पालन हो और शरीर स्वास्थ्य युक्त बना रहे। सन्तोषपूर्वक विषयभोग गृहस्थके लिये उचित है।

इन्द्रियोंके विषयोकी तृष्णा ही संसारमे भ्रमणका कारण है तथा इन्द्रिय भोगोंसे कभी किसीको तृप्ति नहीं हो सकती है। जितना अधिक इनसे भोग भोगा जाता है उतना अधिक तृष्णाका दाह बढ़ता जाता है। मानव जीवन आत्मीक उन्नतिके लिये है। तब इन्द्रियोका निरोध आवश्यक है। साधुको पूर्ण इन्द्रियविजयी होना चाहिये। गृहस्थको मर्यादापूर्वक न्यायके भोगोंमें सन्तोष मानना चाहिये।

श्री शुभचन्द्राचार्य ज्ञानार्णवमें कहते हैं—

अतृप्तिजनक मोहदाववन्हेर्महेन्धनम्। असातसन्ततर्बीजमक्षसौख्य जगुर्जिना ॥ १३-२० ॥
वर्धते गृद्धिरश्रान्तं सन्तोषश्चापसर्पति। विवेको विलय याति विषयैर्व्ञ्चतात्मनाम् ॥ १८-२० ॥

भावार्थ—श्री जिनेन्द्रोने कहा है कि यह इन्द्रियजन्य सुख तृप्ति देनेवाला नहीं है, मोहरूपी दावानलको बढ़ानेको ईंधनके समान है व आगामी कालमें दुःखोकी परिपाटीका बीज है जिनका आत्मा इन्द्रियोंके विषयोसे ठगाया गया है उनकी विषयलोलुपता निरन्तर बढ़ती जाती है, सन्तोष चला जाता है तथा विवेक भी चला जाता है।

---

३५. चक्षु, श्रोत्र, उत्साह—ये तीन भाव

चष्यं अनृतं दिस्य, सोत्रं विकह रागयं।
उच्छाहं मिच्छमयं प्रोक्तं, त्रिविधं त्रिभंगी दलं॥ ४३ ॥

अन्वयार्थ—(चष्य अनृत दिस्य) आँखोंसे नाशवन्त झूठी स्वप्नसम जगतकी अवस्थाओको देखकर राग करता है (सोत्र विकह रागय) कानोसे कुकथाओको सुनकर राग करता है (मिच्छमयं उच्छाहं प्रोक्त) इन दोनो इन्द्रियोके द्वारा मिथ्यादर्शनके कारण अधिक देखनेका व सुननेका उत्साह बढ़ जाता है ऐसा कहा गया है (त्रिविध त्रिभङ्गी दलं) इस तरह तीन प्रकारसे यह प्राणी आस्रवका पात्र हो जाता है।

भावार्थ—ऊपरकी गाथामें तीन इन्द्रियोंके विषयोके दोष बताए हैं, अब शेष दोके बताए हैं। चक्षुइन्द्रिय दूरसे ही देखकर विषयका भोग करती है। इसी तरह कर्ण इन्द्रिय भी दूरसे शब्दोंको सुनकर विषय भोग करती है। यद्यपि शब्द कानमें भिड़कर सुनाई पड़ता है तथापि प्रगटपने शब्दोंको कोई हाथोंसे ग्रहण नहीं करता है। दूरसे सुन करके ही जानता है। स्पर्शेन्द्रिय पदार्थसे बिलकुल भिड़कर, जिह्वा भी पदार्थका संसर्ग करके और घ्राण भी पुष्पादिका संसर्ग करके विषयभोग करते हैं।

चक्षुसे अनेक प्रकारके पदार्थोंको देखकर रागभाव होता है। रागी मिथ्या-दृष्टी जीव सुन्दर शरीरके रूपको, आभूषणोको, वस्त्रोको, सुन्दर बालको, सुन्दर मकान, बाग, वर्तनको, सुन्दर नगर, नदी, पर्वत आदि देखनेयोग्य सैकड़ों प्रकारके पदार्थ हैं, मेला, तमाशा, नाटक खेलको व अनेक रागवर्द्धक पुस्तकोंको देखकर राग भाव बढ़ाता है। कर्ण इन्द्रियसे अनेक प्रकारकी विकथाओंको सुरीले रागवर्द्धक पुस्तकों-को देखकर रागभाव बढ़ाता है। कर्ण इन्द्रियसे अनेक प्रकारकी विकथाओंको, सुरीले रागवर्द्धक गानेको, वार्ता-प्रलापको, हास्यपूर्ण बातोंको सुनकर राग करता है। इन दोनो इन्द्रियोके द्वारा तृप्ति नहीं पाता है। जो वस्तुएं देखी हैं उनके सिवाय सुन्दर वस्तुओंको देखनेका उत्साह पैदा कर लेता है। भावना यह होती है कि तीन लोकमें सब देख लूं। एक बाजारको देखकर दूसरेको, दूसरेको देखकर तीसरेको इस तरह तृष्णा बढ़ती जाती है। जिनके पास धनका साधन है, वे बार-बार यूरुप, अमेरिका आदि विदेशोके सुन्दर दृश्योंको देखने व अनेक प्रकारके गान वादित्र सुनने-को घूमा करते हैं, प्रचुर धन खरचते हैं। जगत्में चक्षु इन्द्रिय व कर्ण इन्द्रियके लुभानेवाले अनेक साधन जितने बढ़ते जाते हैं उतना ही रागभाव अज्ञानीका बढ़ता जाता है। देखने व सुननेके लिये अन्यायका धन एकत्र कर खरचता है, कर्जदार तक हो जाता है।

अशुभ रूप देखकर व अशुभ शब्द सुनकर द्वेष करता है। गाली व अपनी निन्दा सुनकर द्वेषी बन जाता है। मान कषायके वशीभूत जरा सी भी अपमानकी बातको सुन सह नहीं सकता है। कहनेवालोके पीछे पड जाता है। स्त्रियोके रूपके पीछे मोहित होकर व कठोर शब्दोको सुनकर बड़े-बडे युद्ध छिड़ जाते हैं।

चक्षु इन्द्रिय व कर्ण इन्द्रियका बड़ा भारी सदुपयोग किया जा सकता है। वैसा अन्य तीन इन्द्रियोका नहीं होता है। चक्षु द्वारा अनेक उपयोगी शास्त्रोंका व अनेक सन्त पुरुषोका, अनेक तीर्थस्थानोका, मन्दिरोका, सारभूत चित्रोका, भोजन-पानकी शुद्धिका अवलोकन कर व भूमिको निरख कर चलनेसे, निरख कर रखने उठाने-से, निरख कर भोजनादि बनाने व करनेसे बहुत बड़ा अपना उपकार किया जा सकता है। आगम ज्ञान व सत्संगति मोक्षमार्गमें सहकारी है। चक्षु इन्द्रिय द्वारा इस लाभको लिया जा सकता है। कर्ण इन्द्रियसे साधुओंकी व विद्वानोकी वाणी सुनकर धर्मका लाभ लिया जा सकता है। आध्यात्मीक वैराग्यवर्द्धक भजन व वादित्र व गान सुन-

कर परिणामोंको उज्ज्वल किया जा सकता है। उत्तम कथाओंको सुनकर व जीवन-चरित्र सुनकर व सारगर्भित भाषणोंको सुनकर, अपने जीवनको उपयोगी बनाया जा सकता है।

बुद्धिमान् मानवका कर्तव्य है कि पाँचों इन्द्रियोंका सदुपयोग करे। जिह्वा-से शुद्ध भोजन करे व धर्मका उपदेश करे, स्पर्शसे दुःखी रोगी जनोंकी वैयावृत्य करे। घ्राणसे पदार्थोंकी व स्थानकी परीक्षाकर स्वास्थ्य हानिकारक पदार्थोंका त्याग करे। चक्षुसे शास्त्रोंको देखे, कानसे उपदेश सुने।

जो इन्द्रियोंको वश रखते हैं वे जीवनको सफल बनाते हैं। जो पुण्यसे प्राप्त विषयोंमें सन्तोषी हैं वे स्वपर उपकारमें जीवन बिता सकते हैं व सुखी रह सकते हैं। सारसमुच्चयमें कहा है—

तृष्णान्धा नैव पश्यन्ति हितं वा यदि वाहितम्। सन्तोषाञ्जनमासाद्य पश्यन्ति सुधियो जनाः ॥२३९॥

भावार्थ—जो मानव विषयभोगोंकी तृष्णामें लीन हैं वे अपना हित व अहित नहीं विचारते। बुद्धिमान पुरुष सन्तोषरूपी अञ्जन आँखमें लगाकर अपना सच्चा हित देखते रहते हैं।

हृदयं दह्यतेऽत्यर्थं तृष्णाग्निपरितापितं। न शक्यं शमनं कर्तुं विना सन्तोषवारिणा ॥ २४५ ॥

भावार्थ—तृष्णाकी आगसे पीड़ित मन अतिशय करके जला करता है। सन्तोषरूपी जलके बिना उस जलनका शमन नहीं किया जा सकता।

---

३६. आहार, निद्रा, माया—ये तीन भाव

आहारं असुद्धं भावं, निद्रा मिथ्यात भूतयं।
भावं सुद्ध तिक्तं च, त्रिभंगी संसार भाजनं॥ ४४ ॥

अन्वयार्थ—(असुद्ध भाव आहार) अशुद्ध रागद्वेष भावको रखना ही आहार है (मिथ्यात भूतय निद्रा) मिथ्यात्वभावसे मूर्छित रहना ही निद्रा है (भाव सुद्ध तिक्त च) भावोंकी शुद्धिको छोड़कर जगत्में फँस जाना माया है (त्रिभगी ससार भाजन) ये तीन भाव संसारके भ्रमणकारक हैं।

भावार्थ—यह संसारी मिथ्यादृष्टि प्राणी निरन्तर रागद्वेष मोहरूप अशुद्ध भावोंको ग्रहण करता रहता है यही इसका आहार हो रहा है। इसी आहारसे इस

अज्ञानीका जीवन है। रात-दिन विषयोंका राग रहता है। विषयके साधक चेतन व अचेतन पदार्थोंका राग रहता है। जो विषय साधनमें विरोधी हैं उनसे द्वेष रहता है। कभी भी क्रोध, मान, माया, लोभकी तीव्रताको छोड़ता नहीं। अथवा अनन्तानुबन्धी कषायके उदयको भोगता है। यही आहार है जिससे कभी भी सम्यक्त्वभावको नहीं पाता। अज्ञानीकी निद्रा, मिथ्यात्वका तीव्र भाव होना है। जैसे नींदमें प्राणी बिलकुल अचेत हो जाता है वैसे यह अज्ञानी बिलकुल अचेत हो रहा है। अपने मूल शुद्ध द्रव्य स्वरूपको भूले हुए है। आत्माके ध्यानसे बेखबर है, अतीन्द्रिय सुखसे अज्ञान है, मिथ्यात्वके बलसे अपनेको जिस पर्यायमें होता है वैसा माना करता है। अपने आत्माके कार्यमें सोया हुआ है। मोक्षमार्गके ज्ञान श्रद्धानमें निद्रित है। भावोंकी शुद्धिको न पाकर संसारकी मायामें फँसा है। शुद्धोपयोग जो अपना स्वाभाविक भाव है उसको त्यागे हुए हैं। कर्मजनित भावोंमें फँसा हुआ कभी पुण्य, कभी पाप करता है। सांसारिक पदार्थोंके भोग उपभोगमें लीन है। सुखी-दुःखी होता है। क्षणमें सन्तोषी, क्षणमें आकुलित हो जाता है, क्षणमें हर्षित, क्षणमें शोकित हो जाता है। ये तीन आहार, निद्रा व मायाके भाव संसार भ्रमणके मूल कारण हैं।

जैसे कोई मूर्ख आहार करे, नींद लेवे व मोहमें फँसा रहे, स्त्री-पुत्रोंसे प्रेम किया करे, धनागमका साधन न करे, तो कुछ दिनोंमें दरिद्री होकर कष्ट पावेगा, वैसे अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वभावमें फँसा हुआ—रागद्वेष करके जगत्‌की मायामें फँसा रहता है, निगोदमें चला जाता है, भव वनमें भटकता है, इन्द्रियोंके विषय-जालमें उलझा रहता है, कभी भी अतीन्द्रिय आनन्दको नहीं पाता है।

समाधिशतकमें पूज्यपादस्वामीने कहा है—

चिर सुषुप्तास्तमसि मूढात्मान कुयोनिषु। अनात्मीयात्मभूतेषु ममाहमिति जाग्रति ॥ ५६ ॥

भावार्थ—मूढ़ मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा अनादिकालसे सोये हुए हैं, भव-भवमें भ्रमण करते हैं। जो अपने अशुद्ध भाव हैं उनको ही आप मान रहे हैं। मैं रागी व द्वेषी हूँ इत्यादि व जो अपनेसे भिन्न हैं उनको अपना मान रहे हैं। मेरा शरीर, मेरा धन, मेरा कुटुम्ब, मेरा घर आदि यह ममकार है। इस तरह अहंकार ममकारमें जाग रहे हैं।

व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्मगोचरे। जागर्त्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे ॥ ७८ ॥

भावार्थ—जो कोई जगत्‌की मायामें निद्रित है वही आत्माके स्वरूपमें जाग रहा है तथा जो जगत्‌की मायामें जाग रहा है वह आत्माके सुखमें सोया हुआ है।

भगवती आराधनामें शिवकोटि आचार्यने मोही प्राणीकी दशा बतायी है—

कोहि डहिज्ज जइ चदण णरो दारुग च बहुमोल्लं ।
णासेइ माणुस्सभव पुरिसो तह विसयलोभेण ॥ १८२८ ॥
छंडिय रयणाणि जहा रयणद्दीवा हरिज्ज कट्ठाणि ।
माणुसभवे वि छडिय धम्म भोगेऽभिलसदि तहा ॥ १८२९ ॥
गतूण णदणपणं अमिय छडिय विस जहा पियइ ।
माणुसभवे वि छंडिय धम्म भोगेऽभिलसदि तहा ॥ १८३० ॥

भावार्थ—जैसे कोई मानव बहुमूल्य चन्दनके वृक्षको लकड़ी या ईंधनके लिए जला डाले वैसे ही अज्ञानी इन्द्रिय विषयोंके लोभसे इस मनुष्य जन्मको नाशकर डालता है। जैसे कोई रत्नद्वीपमें जाकर रत्नोंको छोड़ देवे और काठ ग्रहण कर ले वैसे अज्ञानी इस मनुष्य जन्ममें धर्मको छोड़कर भोगोंकी तृष्णा करता है। जैसे कोई नन्दनवनमें जाकर अमृतको छोड़ विष-पान कर ले, वैसे ही अज्ञानी इस भव कानन-में धर्मको छोड़कर भोगोकी अभिलाषा करता है।

त्रिभंगी आस्रव दल भाव निरोधन भाव

प्रतिज्ञा

त्रिभंगी प्रवेसं संप्रोक्तं, भव्यात्मा हृदये चिंतति।
तेनाहं निरोधनं कृत्वा, जिन उक्तं सुद्ध दिस्टितं ॥ ४५ ॥

अन्वयार्थ—(त्रिभगी प्रवेस संप्रोक्त) तीन-तीन भावोंके समूह जो कर्मके आस्रवके कारण हैं उनको कहा गया है (भव्यात्मा हृदये चिंतति) उनको समझकर भव्यजीव हृदयमें विचारता है (तेन अहं जिन उक्तं सुद्ध दिस्टित निरोधन कृत्वा) कि मैं इसलिए जिनेन्द्र कथित शुद्ध सम्यक्दर्शनको जानकर इस आस्रवका निरोध करूंगा।

भावार्थ—ऊपर कथित छत्तीस त्रिभंगी दलोंमें कर्मोंके आस्रव व बन्धके कारण भावोंको बताया गया है। इनको भले प्रकार भव्यजीवको मनन करना चाहिये तथा सर्व ही कुभावोंसे वैराग्य भाव लाना चाहिए। जैसे नावमें पानी आनेका द्वार हो तो उसको डाँट लगाकर बन्द करते हैं वैसे कर्मोंके आनेके जो ३६ त्रिभंगी द्वार कहे हैं उनके द्वारा कर्म आते हैं, उनको बन्द करनेके लिये उनके निरोधक संवरभावको भी जानना चाहिए। जिनेन्द्रने जो शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रयमार्ग बताया है वही संसारके बन्धका निरोधक है, उसे भले प्रकार जानकर व उसपर चल करके आस्रवका निरोध करना चाहिये।

---

१. देव, गुरु, शास्त्र—ये तीन आस्रव निरोधन भाव

देव देवाधि देवं च, गुरु ग्रन्थ च मुक्तयं।
धर्म अहिंसा उत्पाद्यं, त्रिभंगी दल निरोधनं ॥ ४६ ॥

अन्वयार्थ—(देव देवाधि देव च) देवोंके अधिपति परम देव परमात्मा तो यथार्थ देव हैं (ग्रन्थ मुक्तय च गुरु) परिग्रहके त्यागी निर्ग्रन्थ साधु गुरु हैं (अहिंसा धर्म उत्पाद्य) अहिंसा धर्मको पुष्ट करनेवाला शास्त्र है (त्रिभगी दल निरोधन) इन तीनोंकी सेवा कर्म बन्धको रोकनेवाली है।

भावार्थ—आत्महितैषीको प्रथम ही उचित है कि वह उस आदर्शको जाने जिसे वह प्राप्त करना चाहता है। आदर्शको सामने रखनेसे उस आदर्शपर पहुँचनेकी उमंग होती है। जिस पर्वतपर पहुँचना है उसकी चोटी दिखती है तब पहुँचनेकी भावना दृढ़ होती है। जिस राज्य महलमें जाना है उसको जानना जरूरी है कि वह है। इसलिये कर्म बन्धसे रहित आत्माको जानना आवश्यक है, जब हम स्वयं कर्मके बन्धसे छूटना चाहते हैं। अतएव यथार्थ देव वही है जो कर्मबन्धसे मुक्त है, शुद्धात्मा है। जिसके आत्मामें वे दोष नहीं हैं जो कर्मबन्ध सहित आत्मामें होते हैं। अर्थात् कोई प्रकारकी इच्छा, रागद्वेष, मोह, कामभाव, विकल्प नहीं है, पूर्ण वीतरागता है। न कोई प्रकारका अज्ञान है इसलिये सर्वज्ञता है। सर्वज्ञ वीतराग आत्माको ही परमात्मा देव कहते हैं, जिनकी भक्ति बड़े-बड़े इन्द्र करते हैं। शरीर सहित जीवन्-मुक्त परमात्माको अरहन्त देव कहते हैं, जिनका आत्मा चार घातीय कर्मोंसे मुक्त हो चुका है। इसलिये उनमें नौ क्षायिक भाव प्रगट हैं—क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त दान, अनन्त लाभ, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग, अनन्त वीर्य तथा चारों घातीय कर्मोंके क्षयसे जिनके भीतर अनन्त सुख प्रगट है, जो निरन्तर स्वरूपमें लीन होकर परमानन्दमयी अमृतका पान कर रहे हैं। अभी चार अघातीय कर्म शेष हैं, उनके उदयके कारण उनका देशमें विहार व धर्मो-पदेश होता है इसीसे अरहन्तको हितोपदेशी कहते हैं। उन्हींके द्वारा धर्मका सच्चा स्वरूप प्रगट होता है। इसलिये उनको आप्त या वक्ता कहते हैं। इस आर्यखण्डमें हरएक उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी कालमें चौबीस तीर्थंकर पदधारी क्षत्रियवंशी महा-पुरुष होते रहते हैं। वे परिग्रह त्याग निर्ग्रन्थ साधु हो आत्मध्यान करके अरहन्त हो जाते हैं। ऐसे तीर्थंकर अरहन्त इस वर्तमान अवसर्पिणी कालमें ऋषभदेवसे लेकर वर्द्धमान पर्यंत चौबीस हुए हैं। इनको परम देव मानना चाहिये। इनके सिवाय तीर्थंकर पदके विना भी सामान्य मानव जो अरहन्त पदपर पहुँचे हैं वे भी अरहन्त मानने योग्य हैं। जैसे श्री बाहुबलि, भरत, रामचन्द्र, हनूमान, इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण, सुग्रीव, वालि, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, गौतमस्वामी, सुधर्माचार्य, जम्बूस्वामी आदि आदि। ये सब ही अरहन्त जब आयुके अन्तमें शेष चार कर्मोंको भी नाशकर मुक्त व शरीर रहित परम शुद्ध हो जाते हैं उनको सिद्ध कहते हैं। अरहन्त व सिद्ध ही आदर्श देव हैं। इनकी भक्ति, पूजा, हमारे भावोंको उन समान होनेकी भावना दृढ़ करनेवाली है।

अरहन्तका लक्षण आप्तपरीक्षामें श्री विद्यानन्दस्वामीने कहा है—

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृता। ज्ञातारं विश्वतत्त्वाना वदे तद्गुणलब्धये ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मोक्षमार्गका दिखानेवाला हो, कर्मरूपी पर्वतोंको चूर्ण करनेवाला हो व सर्व तत्त्वोका जाननेवाला हो वही अरहन्तदेव हैं। उनको मैं उनके गुणोंकी प्राप्तिके हेतु नमस्कार करता हूँ।

समाधिशतकमें सिद्धका स्वरूप कहा है—

निर्मल: केवल. सिद्धो विविक्त प्रभुरक्षय। परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिन॰ ॥ ६ ॥

भावार्थ—सिद्ध परमात्मा रागादि रहित निर्मल हैं, केवल एक स्वाधीन हैं, साध्य जो शुद्धपद उसको सिद्ध कर चुके हैं, सर्व परद्रव्य व परभावोसे रहित हैं, तीन लोकसे पूज्यनीय स्वामो है, अविनाशी हैं, परमपदमें रहनेवाले परमेष्ठी हैं, उत्कृष्ट आत्मा हैं, परम ऐश्वर्यमयी अनन्त ज्ञानादि गुणोंसे पूर्ण ईश्वर हैं, आठो कर्मोंको जीतनेके जिन है। सिद्धकी भक्ति सिद्धपदमें पहुँचानेवाली है। गुरु वही है जो ग्रन्थ या परिग्रह या गाँठ या मूर्च्छासे रहित निर्ग्रन्थ हो। बाहरी परिग्रह दश प्रकारके हैं, जो अन्तरंग मूर्च्छाका बाहरी कारण है तथा चौदह प्रकारके विकार कारक भाव हैं, वे अन्तरग परिग्रह हैं, इन दोनोंसे रहित निर्ग्रन्थ हैं। क्षेत्र, मकान, चाँदी, सोना, धन, धान्य, दासी, दास, वस्त्र, वर्तन, इन ८० प्रकार वस्तुओंसे रहित नग्न दिगम्बर साधु हैं। अन्तरगमें बुद्धिपूर्वक मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, दुःख, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुवेद, नपुंसकवेद, इन चौदह दोषोंके ममत्वसे रहित हैं। ऐसे निर्ग्रन्थ जैनके साधु यथाजात बालकके समान निर्विकारी, जितेन्द्रिय, सरल, समभाव धारी होते हैं। जीवदयाका उपकरण मोर पीछी, शौचका उपकरण काठका कमण्डल जलके लिये, व ज्ञानका उपकरण शास्त्र मात्र रखते हैं। भिक्षासे एकबार दिनमें भोजनपान करते है। निरन्तर ज्ञान ध्यानमें लीन रहते हैं। ऐसे निर्ग्रन्थ साधुओमें जो बहुत अनुभवी व संचालक होनेके योग्य होते हैं उनको आचार्य पद होता है। जो विशेष व्याख्याता व पढ़ानेकी योग्यता रखते हैं उनको उपाध्याय पद होता है। शेष सब साधु पदधारो हैं। गुरुका स्वरूप श्री रत्नकरण्डश्रावकाचारमें कहा है—

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः। ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स॰ प्रशस्यते ॥ १० ॥

भावार्थ—जो पाँचो इन्द्रियोंकी आशासे रहित हैं, खेती आदि आरम्भसे वर्जित हैं, सर्व परिग्रहके त्यागी हैं, शास्त्रज्ञान, आत्मध्यान व तपमें लीन हैं, ऐसे

तपस्वी निर्ग्रन्थ साधु गुरु हैं। आदर्शपर जो चलनेवाले होते हैं, वे आदर्शको समझकर व उस मार्गपर अन्योंको चलाकर मोक्षमार्गको प्रवर्ताते हैं, मोक्षमार्ग बताते हैं, इसलिये गुरुको भी जाननेकी जरूरत है, गुरुसे तत्त्वज्ञानका लाभ होता है।

तीसरे—शास्त्रकी भी आवश्यकता है। शास्त्र वही सच्चा व जिन प्रणीत है जिसमें अहिंसाका पूर्णपने प्रतिपादन हो। मोक्षका मार्ग अहिंसा है। अन्तरंग अहिंसा रागद्वेष मोह रहित वीतराग, समभाव, स्वरूपाचरण या स्वानुभव है, बाहरी अहिंसा स्थावर व त्रस सर्व प्राणी मात्रकी दया है, रक्षा है। जिस शास्त्रमें सर्व प्राणियोंके हितका कथन है व जैसी वस्तु अनेक स्वभाववाली है उसका वैसा ही कथन है। इसलिये अनेकान्त स्वरूप है। शास्त्रका लक्षण रत्नकरण्डश्रावकाचारमें कहा है—

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्ट विरोधकम्। तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्र कापथघट्टनम्॥ ९॥

भावार्थ—जो परम्परा आप्त अरहन्तका कहा हुआ हो, अखण्डनीय हो, प्रत्यक्ष, परोक्ष प्रमाणसे बाधा रूप न हो, तत्त्वोंका उपदेश करनेवाला हो, सर्वका हितकारी हो, कुमार्गका खण्डन करनेवाला हो वह शास्त्र है।

इस तरह देव, गुरु, शास्त्रका स्वरूप जानना चाहिये। यहाँ अन्तमें शास्त्रको इसलिये कहा है कि शास्त्रके सम्पादक गुरु होते हैं। गुरुको ज्ञान अरहन्तकी वाणी द्वारा आचार्यक्रमसे होता है। तथा देव व गुरुमें पाँच परमेष्ठी गर्भित हैं। जैसे णमोकार मन्त्रसे सिद्ध है—

णमोकार मन्त्र	अर्थ
१—णमो अरहंताणं।	इस लोकमें सर्व अरहन्तोंको नमस्कार हो।
२—णमो सिद्धाणं।	इस लोकमें सर्व सिद्धोंको नमस्कार हो।
३—णमो आइरियाणं।	इस लोकमें सर्व आचार्योंको नमस्कार हो।
४—णमो उवज्झायाणं।	इस लोकमें सर्व उपाध्यायोंको नमस्कार हो।
५—णमो लोए सव्वसाहूणं।	इस लोकमें सर्व साधुओंको नमस्कार हो।

इस तरह देव, गुरु, शास्त्रपर सच्ची श्रद्धा रखके उनकी भक्ति करनेसे आस्रवका निरोध होगा। इसलिये आत्महित करनेवालोंको उचित है कि वह नित्य प्रति अरहन्त व सिद्धकी पूजा व स्तुति करें। गुरुकी सेवा करके ज्ञान लेवे, शास्त्रोंका स्वाध्याय करें व सामायिकके समय आत्माका मनन रूप स्वाध्याय करें। इन चार कार्योंको नित्य करनेसे परिणामोंमें वीतरागताके अंश बढ़ेंगे, कषायके अंश घटेंगे,

मन्दकषाय होगी। उसका फल यह होगा कि चार घातीय कर्म व असाता वेदनीयादि पापकर्मको अनुभागशक्ति घटेगी, इसका रस सूखेगा अर्थात् पाप कटेगा व साता-वेदनीयादि पुण्यकर्मका रस बढ़ेगा। व नया बन्ध असातादि पापकर्मका न होगा। सातादि पुण्यकर्मका होगा व घातीय कर्मोंका बन्ध अल्प स्थिति व अल्प अनुभागको लिये हुए होगा। देव, गुरु, शास्त्रकी आराधना पापास्रवको रोकनेमें प्रबल कारण है। इसलिये तारणस्वामीने सबसे पहला उपाय आस्रवके निरोधका यही बताया है।

---

२. दर्शन, ज्ञान, चारित्र—ये तीन भाव

३. सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र—ये तीन भाव

दर्सनं तत्तु सर्धानं, न्यान तत्तु निवेद्यं।
स्थिरं तत्तु चारित्रं, त्रितियं सुद्धात्मा गुनं ॥ ४७ ॥
सम्यकदर्शनं न्यानं, चारित्रं सुद्धात्मनं।
स्वस्वरूपं च आराध्यं, त्रिभंगी समय खण्डनं ॥ ४८ ॥

अन्वयार्थ—(तत्तु सर्धान दर्सन) सात तत्त्वोंका या आत्मतत्त्वका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है (तत्तु निवेदय न्यान) तत्त्वोंका अनुभव पूर्वक जानना सम्यग्ज्ञान है (तत्तु स्थिर चारित्र) आत्मतत्त्वमें स्थिर होना सम्यक्चारित्र है (त्रितिय सुद्धात्मा गुन) ये तीनों ही रत्नत्रय शुद्धात्माके गुण हैं।

(सम्यग्दर्शनं न्यान चारित्र सुद्धात्मन स्वस्वरूप च) सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र शुद्धात्मा ही है, आत्माका अपना ही स्वभाव है (आराध्य) इसलिए यही निज स्वरूप आराधना करने योग्य है (त्रिभंगी समय खण्डन) ये रत्नत्रय स्वरूप आत्मा ही आस्रव भावोंको खण्डन करनेवाला है।

भावार्थ—इन दोनों गाथाओंका एक-सा ही भाव है। इसलिये दोनोंका भावार्थ साथ-साथ लिखा जाता है। वास्तवमें कर्मके आस्रवको रोकनेवाला व पूर्व कर्मको खण्डन करनेवाला उपाय एक रत्नत्रय धर्म है। इसके दो भेद हैं—व्यवहार रत्नत्रय और निश्चय रत्नत्रय। निश्चय रत्नत्रय आत्मानुभवरूप है। यही यथार्थमें कर्मास्रवको दूर करनेवाला है। सम्यग्दर्शन आत्माका स्वभाव है, वैसे ही ज्ञान भी आत्माका स्वभाव है, वैसे चारित्र भी आत्माका स्वभाव है, तीनों ही अखण्ड आत्मा-

में इस तरह व्यापक स्वभाव हैं जैसे सुवर्णमें पीतपना, भारीपना, चिकनापना व्यापक है या अग्निमें दाहकपना, पाचकपना व प्रकाशकपना व्यापक है। आत्माका आत्मारूप जैसाका तैसा श्रद्धान सम्यक्त्व है। ऐसा ही सन्देह रहित ज्ञान सम्यग्ज्ञान है व इसी ज्ञान श्रद्धानमें स्थिर होना सम्यक्चारित्र है। आत्मा स्वभावसे, द्रव्यदृष्टिसे सदाकाल एक स्वभाव है, अमूर्तीक है, ज्ञानदर्शनमय है, वीतराग है, आनन्दमय है, गुणपर्यायवान् है, उत्पाद, व्यय, ध्रुवरूप है, परम निश्चल है, परमानन्दमय है, सिद्ध भगवान्के समान है। ऐसा श्रद्धान व ज्ञान व उसी भावमें लवलीन होना निश्चय रत्नत्रय है। सो यह आत्माका स्वरूप है, स्वसमयरूप है। मन, वचन, कायके अगोचर एक अद्भुत स्वसंवेदन ज्ञान है या ज्ञान चेतना है। यही आत्मध्यानकी अग्नि है, इसीसे संवर होता है व निर्जरा होती है, यही मोक्षमार्ग है। ज्ञानीको सदा ही स्वानुभवका आराधन करना चाहिये।

व्यवहार रत्नत्रय निश्चय रत्नत्रयकी प्राप्तिके निमित्त सहायक हैं। जैसे तिलोसे तेल निकालनेमें घानी चलाना निमित्त सहायक है। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन सात तत्त्वोंको मोक्षमार्गमें प्रयोजनभूत जानकर श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है। सातो तत्त्वोंको जानना व्यवहार सम्यग्ज्ञान है। ऐसा जानना कि अजीव पर है। आस्रव व बन्ध अशुद्धताके कारण त्यागने योग्य है। सवर, निर्जरा, मोक्ष शुद्धताके कारण ग्रहण करने योग्य हैं।

इनमेंसे बन्धके कारणोंसे बच कर संवर व निर्जराके कारणोंमें प्रवृत्ति करनेके लिये साधुका महाव्रतरूप व गृहस्थका अणुव्रतरूप आचरण पालना व्यवहार सम्यक्चारित्र है। उपादान निमित्तसे कार्य होता है। सुवर्णके शुद्ध होनेमें सुवर्ण ही उपादान है, मसाला व आग निमित्त है, इसी तरह आत्माके शुद्ध होनेमें आत्मा ही उपादान है। आत्माका निजरूपका ध्यान ही उपादान है, व्यवहारचारित्र निमित्त है।

तत्त्वानुशासनमें श्रीनागसेन मुनि कहते हैं—

मोक्षहेतु पुनर्द्वेधा निश्चयव्यवहारतः। तत्राद्य साध्यरूप स्याद्द्वितीयस्तस्य साधन ॥ २८ ॥
अभिन्नकर्तृकर्मादिविषयो निश्चयो नय । व्यवहारनयो भिन्नकर्तृकर्मादिगोचर ॥ २९ ॥
धर्मादिश्रद्धान सम्यक्त्वं ज्ञानमधिगमस्तेषा। चरण च तपसि चेष्टा व्यवहाराद् मुक्तिहेतुरय ॥ ३० ॥
निश्चयनयेन भणितस्त्रिभिरेभिर्यः समाहितो भिक्षु.। नोपादत्ते किंचिन्न च मुञ्चति मोक्षहेतुरसौ॥३१॥
यो मध्यस्थ पश्यति जानात्यात्मानमात्मनात्मन्यात्मा।
दृगवगमचरणरूपस्सनिश्चयान्मुक्तिहेतुरिति जिनोक्ति ॥३२॥

भावार्थ—मोक्षका मार्ग निश्चय तथा व्यवहारसे दो प्रकारका है। निश्चय मार्ग साधने योग्य है, व्यवहार साधन है। जहाँ कर्ता, कर्म, साधक, साध्य आदि एक आत्मा ही हो वह निश्चय मोक्षमार्ग है। जहाँ निज कर्ताकर्म आदि हो वह व्यवहार है। धर्मादि छः द्रव्य अर्थात् जीव, अजीवादि सात तत्त्वोंका श्रद्धान करना सम्यक्त्व है। इनही का जानना ज्ञान है। तपमें उद्यम चारित्र है वह व्यवहार मोक्षमार्ग है। व्यवहार रत्नत्रय सहित जो साधु न कुछ ग्रहण करता है न कुछ त्यागता है, वहाँ निश्चय मोक्षमार्ग है। जो वीतरागी आत्मा अपने ही आत्माके द्वारा अपने ही आत्मामें अपने ही आत्माको निश्चल होकर देखता जानता है वही निश्चय रत्नत्रय स्वरूप मोक्षमार्ग है, ऐसा जिनेन्द्रने कहा है। आत्मध्यान ही निश्चय मोक्षमार्ग है, ऐसा ही प्रवचनसारमें कहा है—

णाहं होमि परेसिं ण मे परे सन्ति णाणमहमेक्को।
इदि जो झायदि झाणे सो अप्पाण हवदि झादा ॥ ९९–२ ॥

भावार्थ—न मैं दूसरोंका हूँ न दूसरे पदार्थ मेरे हैं, मैं अकेला हूँ ऐसा जो ध्यानमें ध्याता है वह आत्माको ध्यानेवाला है।

---

४. सम्यक् संयम, सम्यक् तप, सम्यक् परिनै—ये तीन भाव

सम्यक् संजमं तवं चिंते, सम्यक् परिनै तं धुवं।
सुद्धात्मा चेतना रूवं, जिन उक्तं सुद्ध दिष्टितं ॥ ४६ ॥

अन्वयार्थ—(सम्यक् सजम तव चिंते) सम्यग्दर्शन पूर्वक संयमकी भावना करना, सम्यग्दर्शन सहित तपकी भावना करना (सम्यक् परिनै त धुवं) सम्यग्दर्शन सहित परिणामिक भाव जो अपना अविनाशी भाव है उसमें परिणमन करना ये तीन भाव (सुद्धात्मा चेतना रूव) शुद्धात्माके चैतन्यमयी स्वभाव है (सुद्ध दिष्टित) ऐसा शुद्ध निश्चयदृष्टिसे (जिन उक्त) जिनेन्द्रने कहा है।

भावार्थ—व्यवहार संयम दो प्रकार है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, त्रस इन छः प्रकारके प्राणियोंकी रक्षा करनी प्राणी संयम है। पाँच इन्द्रिय व मनका निरोध इन्द्रिय संयम है। अथवा सकल देश हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पाँचों पापोंका त्याग सकल संयम है। तथा एकदेश इन पापोका त्याग

एकदेश संयम है। इस व्यवहार संयमको सहायतासे मन, वचन, कायको थिर करके अपने स्वरूपमें स्थिर होकर आत्मानुभव करना सम्यक् संयम है। क्योंकि सम्यग्-दर्शनके बिना स्वरूपमें भले प्रकार थिर भाव नहीं होता है। छः बाहरी, छ अतरंग दो प्रकार व्यवहार तप है। उपवास, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेश, छः बाहरी तप हैं। प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, ध्यान, ये छः अतरग तप हैं। इन बारह तपोंके द्वारा मन, वचन, कायको थिर करके सम्यग्दर्शन सहित अपने ही आत्माके स्वरूपमें एकतान हो तपना सो सम्यक् तप है। सम्यग्दर्शन सहित शुद्ध जीवत्व नामके पारिणामिक भावमें परिणमन करना, रमण करना, सम्यक्परिनै है। कहनेको ये तीन हैं। परन्तु वास्तवमें ये तीनो ही शुद्धात्माका चैतन्यमयी एक स्वानुभवरूप भाव है। शुद्ध निश्चयनयसे एक आत्मा ही है। आत्मामें लीन होना सो ही सयम है, सो ही तप है, सो ही स्वपरिणमन है।

योगसारमें श्रीयोगेन्द्रदेव कहते हैं—

अप्पा दसणु णाण मुणी अप्पा चरणु वियाणि। अप्पा सजम सील तउ अप्पा पच्चक्खाणि ॥ ८० ॥

भावार्थ—यह अपना आत्मा ही निश्चयसे सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है, सम्यक्चारित्र है, यही आत्मसंयम है, यही शील है, यही आत्मा तप है, यही त्याग है ऐसा जानो।

जो णिम्मल अप्पा मुणइ वय सजमुसजुत्तु। तउ लहु पावइ सिद्ध सुह इउ जिणणाहहु वुत्तु ॥ ३० ॥

भावार्थ—जो व्रत व संयम सहित अपने निर्मल आत्माका अनुभव करता है वह शीघ्र ही सिद्ध सुखको पाता है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है—

वउतउसजमुसील जिया इय सव्वइ ववहारु। मोक्खह कारण एक मुणो जो तइलोयहु सारु ॥ ३३ ॥

भावार्थ—व्रत, तप, संयम, शील ये सब हे जीवात्मा! व्यवहार मोक्षमार्ग हैं। निश्चयसे तीनलोकमें सार मोक्षका कारण एक स्वात्मानुभवको जानो।

---

५. भाव, शुद्ध, प्रमाण—ये तीन भाव

भावेन भाव सुद्धं, परमानं स्वात्म चिंतनं।
जिन उत्तं उद्यं सार्थं, त्रिभंगी दल षंडितं ॥ ५० ॥

अन्वयार्थ—(भावेन भाव सुद्ध) **भावना करनेसे भावकी शुद्धि होती है** (परमान स्वात्म चिंतन) **उससे स्वात्मानुभव प्रमाण श्रुतज्ञान होता है** (जिन उत्तं उदय सार्थं) **यही जिनेन्द्र कथित परमार्थ तत्त्वका प्रकाश है** (त्रिभंगी दल षंडित) **भावना, शुद्धभाव व प्रमाणरूप स्वात्मानुभवसे कर्मोंका क्षय होता है।**

भावार्थ—स्वात्मानुभवकी प्राप्तिका उपाय शुद्धात्माका लाभ है। शुद्धात्माका लाभ भेदज्ञानकी भावना करनेसे होता है। यह अपना आत्मा निश्चयनयसे परम शुद्ध पदार्थ है। भावकर्म रागद्वेषादि, द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादि, नोकर्म शरीरादिसे भिन्न है। यह आत्मा अपने गुणोसे अभेद है। जैसे तिलमें तेल भिन्न है, भूसी भिन्न है, धान्यमें चावल भिन्न है, दालमें छिलका भिन्न है, दाल भिन्न है। इस तरह आत्मा सर्व परद्रव्योसे, परभावोंसे, परपर्यायोंसे भिन्न है। सिद्धके समान शुद्ध द्रव्य है। ऐसी बार-बार भावना करनेसे शुद्धात्माका लाभ अर्थात् मैं शुद्धात्मा हूँ ऐसा श्रद्धान हो जाता है। यही शुद्ध सम्यग्दर्शन है, तब सम्यग्दर्शनके प्रतापसे स्वात्मानुभव होता रहता है। स्वात्मानुभव ही जिन कथित परमार्थ धर्मका प्रकाश है। इसीसे कर्मोंका संवर व पूर्व कर्मकी निर्जरा होती है। इसीको भाव श्रुतज्ञान कहते है। जो आत्माका यथार्थ अनुभव करता है, उसीने द्वादशांग वाणीका सार पा लिया। यही भाव श्रुतज्ञान केवलज्ञानका कारण है। समयसारकलशमें कहा है—

चेद्रूप्य जडरूपता च दधतो- कृत्वा विभाग द्वयोरन्तर्दारुणदारणेन परितो ज्ञानस्य रागस्य च।
भेदज्ञानमुदेति निर्मलमिद मोदध्वमध्यासिता, शुद्धज्ञानघनौघमेकमधुना सतो द्वितीयच्युता ॥२-६॥

भावार्थ—यदि रागभावके सम्बन्धमे विचार किया जाय तो विदित होगा कि इसमें चैतन्य भावको रखनेवाला तो ज्ञान है व रागकी कलुषताको रखनेवाला मोहनीय कर्मरूप जड़पदार्थ है। जड़को छोड़कर सन्तोको योग्य है कि भेदज्ञानके द्वारा एक अपने ज्ञानमयी आत्माका अनुभव करके आनन्दलाभ करें।

भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धतत्त्वोपलम्भाद्रागग्रामप्रलयकरणात्कर्मणां सवरेण।
बिभ्रत्ताेष परममलालोकमम्लानमेक, ज्ञान ज्ञाने नियतमुदितं शाश्वतोद्योतमेतत् ॥ ८-६ ॥

भावार्थ—भेद विज्ञानकी बार-बार भावनाके अभ्याससे शुद्ध आत्मतत्त्वका लाभ होकर स्वानुभव होता है तब उससे रागका ग्राम जल जाता है, कर्मोंका संवर होता है। इसी स्वानुभवरूप श्रुतज्ञानके द्वारा अविनाशी प्रकाशरूप निर्मल, उत्कृष्ट, निराकुल एक केवलज्ञान झलक जाता है। अतएव साधकको भेदज्ञानके द्वारा स्वानुभवको पाना उचित है।

---

६. चेत्य, उत्पाद्य, सास्वतं—ये तीन भाव

चेतनं चेतना रूपं, उत्पाद्यो सास्वतं ध्रुवं।
जिन उक्तं सुद्ध चैतन्यं, त्रिभंगी दल निरोधनं ॥ ५१ ॥

अन्वयार्थ—(चेतना रूप चेतन) चैतन्य स्वभावमें मगनता चेतना या स्वानुभव है (उत्पाद्यो) जिससे केवलज्ञानका प्रकाश होकर अरहन्तपद होता है फिर उससे (सास्वत ध्रुव सुद्ध चैतन्य) अविनाशी निश्चल शुद्ध सिद्धपद होता है (जिन उक्तं) ऐसा जिनेन्द्रने कहा है (त्रिभगो दल निरोधन) ये तीन भाव सर्व कर्मसमूहके निवारक हैं।

भावार्थ—वास्तवमें निश्चयनयसे विचार किया जावे तो कर्मोंके संवर व निर्जराका उपाय एक ज्ञानचेतना रूप होता है, जहाँ ज्ञानसे ज्ञानका स्वाद लिया जावे। शुद्ध ज्ञानमें मगन हुआ जावे वही ज्ञानचेतना है। यहाँ रागद्वेष पूर्वक कर्म करनेका या कर्मफल भोगनेका अनुभव रूप अज्ञान चेतना नहीं है। ज्ञानचेतनामें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र तीनों गर्भित हैं, यही मोक्षमार्ग है। यह ज्ञानचेतना सम्यग्दृष्टिके चौथे अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे प्रारम्भ हो जाती है। फिर बढ़ती जाती है। तेरहवें सयोगकेवली जिन गुणस्थानमें शुद्ध विशद स्पष्ट प्रत्यक्ष ज्ञानचेतना प्रकाशमान हो जाती है। ज्ञानचेतनाके ही द्वारा शुद्ध चेतनाका उदय होता है। जैसे दोयजका चन्द्रमा स्वयं पूर्णमासीका चन्द्रमा हो जाता है। स्वानुभव ही मार्ग है, स्वानुभव ही ध्येय है। जितना-जितना स्वानुभव बढ़ता जाता है कर्मोंका निरोध होता है और पुरातन कर्मोंकी निर्जरा होती है। स्वानुभवरूपी प्रथम व द्वितीय शुक्लध्यानसे या भाव श्रुतज्ञानके प्रतापसे चार घातीय कर्मोंका क्षय होता है और अरहन्तपद प्रगट होता है। सयोग गुणस्थानमें योगोंकी प्रवृत्तिसे कर्मोंका ईर्यापथ आस्रव होता है। वह भी स्वानुभवके प्रतापसे जब बन्द हो जाता है, तब चौदहवें गुणस्थानमें पञ्च लघु अक्षर उच्चारण मात्र काल ठहरनेसे चार अघातीय कर्म भी क्षय हो जाते हैं और यह आत्मा शुद्ध सिद्ध अपने मूल द्रव्य स्वभावमें हो जाता है तब मुक्त कहलाता है। इस गाथाका यही तात्पर्य है कि जो आस्रवका निरोध करना चाहे, आस्रवरूपी चोरोंका प्रवेश न होने देना चाहे उसे मन, वचन, काय तीनों गुप्तिके दुर्गमें बैठकर परमानन्दके साथ स्वात्ममूर्तिमें रमण करना चाहिए। यही साधन है। जहाँ अमृतका स्वाद हो वही स्वाद अमर करनेवाला है।

तत्त्वसारमें श्रीदेवसेनाचार्य कहते हैं—

जो अप्पा तं णाणं जं णाणं तं च दंसणं चरणं । सा सुद्धचेयणा वि य णिच्छयणयमस्सिए जीवे ॥५७॥
सयलवियप्पे थक्के उप्पज्जइ को वि सासओ भावो । जो अप्पणो सहावो मोक्खस्स य कारणं सो हु ॥६१॥
णिहए राए सेण्णं णासइ सयमेव गलियमाहप्पं । तह णिहयमोहराए गलन्ति णिस्सेसघाईणि ॥ ६५ ॥
तिहुवणपुज्जो होउं खविउ सेसाणि कम्मजालाणि । जायइ अभूदपुव्वो लोयग्गणिवासिओ सिद्धो ॥६७॥

भावार्थ—जब आत्मा शुद्ध निश्चयनयका आश्रय लेता है, तब जो अपना आत्मा है वही ज्ञान है। वही सम्यग्दर्शन है, वही चारित्र है, वही शुद्ध ज्ञान चेतना है। सर्व मनके विचार बन्द हो जाने पर कोई शाश्वता आत्माका स्वभाव प्रगट होता है। यही स्वभावका अनुभव ही मोक्षका कारण है। इसीसे पहले मोह कर्मका क्षय होता है। फिर जैसे राजाके मरनेपर राजाकी सेना प्रभाव रहित हो स्वयं भाग जाती है, वैसे मोह रागके क्षय होने पर शेष तीन घातीय कर्म भी क्षय हो जाते हैं, तब तीन लोक पूज्य अरहन्त हो जाता है। फिर अघाति कर्मजालको भी क्षय करके अभूतपूर्व सिद्ध हो जाता है और लोकाग्र निवास करता है। पञ्चाध्यायी द्वितीय भागमें ज्ञानचेतनाका स्वरूप बताया है—

अत्रात्मा ज्ञानशब्देन वाच्यस्तन्मात्रतः स्वयं । स चेत्यतेऽनया शुद्धः शुद्धा सा ज्ञानचेतना ॥ १९६ ॥
अर्थाज्ज्ञानं गुणः सम्यक् प्राप्तावस्थान्तरं यदा । आत्मोपलब्धिरूपं स्यादुच्यते ज्ञानचेतना ॥ १९७ ॥
सा ज्ञानचेतना नूनमस्ति सम्यग्दृगात्मनः । न स्यान्मिथ्यादृशः क्वापि तदात्वे तदसम्भवात् ॥ १९८ ॥

भावार्थ—इस ज्ञान चेतना शब्दमें ज्ञान शब्दसे शुद्ध आत्मा कहा जाता है, क्योंकि वह स्वयं ज्ञान स्वरूप है। वह शुद्ध आत्मा जिस चेतनाके द्वारा अनुभव किया जाता है उसे ज्ञानचेतना कहते हैं। अर्थात् जिस समय ज्ञान, गुण मिथ्यात्व रूपसे बदल कर सम्यग्दर्शन सहित हो जाता है तब आत्माकी प्राप्ति हो जाती है। आत्मानुभूति हो जाती है, यही ज्ञानचेतना है। यह ज्ञानचेतना नियमसे सम्यग्दृष्टिके ही होती है, मिथ्यादृष्टिके नहीं होती है, क्योंकि मिथ्यात्वके उदयमें आत्मानुभूतिका होना सम्भव नहीं है।

---

७. मति, श्रुत, अवधि—ये तीन भाव

मति कमलासनं कण्ठे, जिन उक्तं स्वात्मचिंतनं।
ॐ वंकारं च विंदंते, सुद्ध मति सास्वतं ध्रुवं ॥ ५२ ॥

सुतस्य हृद्ये चिंते, अचष्यदर्सनं दिष्टितं ।
ॐ वंकारं ह्रियकारं च, सार्धं न्यानमयं ध्रुवं ॥ ५३ ॥
मति सुतं च उत्पाद्यन्ते, अवध्यं चारित्र संजुत्तुं ।
षट् कमल त्रि ॐ वंकारं, उद्यं अवधि न्यानयं ॥ ५४ ॥

अन्वयार्थ—(कठे मति कमलासनं) कण्ठमें बुद्धिपूर्वक कमलकी रचना करके (ॐ वकारं च विंदन्ते) ॐ मन्त्रको स्थापन करके उसके द्वारा स्वरूपका अनुभव करे (जिन उक्त स्वात्मचिंतन) इस तरह जिनेन्द्रके कथनके अनुरूप स्वात्मानुभव प्राप्त करे (सुद्ध सास्वत धुव मति) यही शुद्ध, अविनाशी, निश्चल मतिज्ञान है (सुतस्य हृदये ॐ वकार ह्रियकार च धुव न्यानमय सार्धं चिते) श्रुतज्ञान यह है कि हृदयमें ॐ ह्रीं मन्त्रको स्थापनकर उसके द्वारा ज्ञानमयी ध्रुव आत्माका चिन्तवन करे (अचष्य दर्सन दिष्टित) यह अतीन्द्रिय आत्माका अनुभव है (षट् कमल त्रि ॐ वकार) छः कमल विराजमान करके तीनपर ॐ स्थापन करे (मति सुत च अवष्य चारित्र सजुत्तु उत्पाद्यन्ते) तब उनके द्वारा मति व श्रुत निश्चल चारित्र सहित प्रगट होते हैं (अवधि न्यानय उदय) यही अवधिज्ञानका उदय है ।

भावार्थ—यहाँ आस्रवके निरोधक मति, श्रुत, अवधिज्ञानको अध्यात्मदृष्टिसे बताया है । तीनोंको स्वात्मानुभव ही दिखलाया है ।

मतिज्ञान—कण्ठमें एक कमल चिंतवन करे, उस कमलके मध्यमें ॐ मन्त्रको चमकता हुआ विराजमान करे । व उसके द्वारा शुद्धात्माके स्वरूपकी भावना भावे । स्वात्मानुभवका प्रकाश होना सम्यग्दर्शन सहित यथार्थ मतिज्ञान है । यहाँ मति नाम मननके लिए है ।

श्रुतज्ञान—हृदय कमलमें ॐ ह्रीं मन्त्रको स्थापन करके उसके द्वारा ज्ञानमयी शुद्धात्माकी भावना भावे । जिससे अतीन्द्रिय आत्मामें स्थिरता हो जावे, स्वसंवेदन हो जावे, यही श्रुतज्ञान है । द्वादशांग श्रुतज्ञानका भाव यही है जो शुद्धात्माका अनुभव हो जावे । श्रुतके अर्थ अनुभव किए हुए ज्ञानके हैं ।

अवधिज्ञान—छः कमल विराजमान करे; मस्तक, नाशिकाका अग्रभाग, मुख, कण्ठ, हृदय, नाभि । इनमेंसे पहले तीनपर ॐ नीचे तीनपर ह्रीं स्थापन करे, तब इनके द्वारा शुद्धात्माका चिन्तवन करते हुए जब निश्चलता अपने आत्माके

स्वरूपमें हो जावे तब अवधिज्ञानका प्रकाश हुआ। अवधिके अर्थ निश्चल ध्यान भी हैं। यहाँ तीनों सम्यग्ज्ञानोंका तात्पर्य यही लिया है जो इनके द्वारा शुद्धात्माव मनन हो व स्वानुभवका प्रकाश हो। स्वानुभव ही केवलज्ञानका कारण है। मोक्ष मार्गमें पर पदार्थके ध्यानकी आवश्यकता नही है। जिन आत्मीक पदार्थ ही व ध्यान वीतरागता सहित आत्मानन्दको उत्पन्न करता है।

तत्त्वानुशासनमें भी मन्त्रके द्वारा आत्माका चिन्तवन बताया है।

हृत्पकजे चतुःपत्रे ज्योतिष्मन्ति प्रदक्षिण। असिआउसाक्षराणि ध्येयानि परमेष्ठिना॥ १०२॥

भावार्थ—हृदयमें चार पत्तोके कमलमें बीचमें अ, चार पत्तोपर सि आ सा विराजमान करके एक-एक अक्षरके द्वारा क्रमसे पाँच परमेष्ठियोका ध्यान करे

ध्यायेदइउएओ च तद्वन्मन्त्रानुदर्चिप। मत्यादिज्ञाननामानि मत्यादिज्ञानसिद्धये॥ १०३॥

भावार्थ—उसी हृदय कमलके भीतर मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केव इन पाँच ज्ञानोंके वाचक अ, इ, उ, ए, ओ इन पाँच मन्त्रोको विराजमान करे पाँचो ज्ञानोको पाँचो ज्ञानकी सिद्धिके लिये ध्यावे।

सप्ताक्षर महामन्त्र मुखरध्रेषु सप्तसु। गुरूपदेशतो ध्यायेदिच्छन् दूरश्रवादिक॥ १०४॥

भावार्थ—सात अक्षरी मत्रको मानके सात छिद्रोमें स्थापनकर गुरुके उपदेः में ध्यावे। इससे दूरसे देखने, सुनने, सूंघने आदिकी शक्ति बढ़ जाती है। मुखव छिद्र एक, नाकके दो, आँखके दो, कानके दो ऐसे सात छिद्रोमें सात अक्षरी मः स्थापन करे।

सात अक्षरी मन्त्र है—णमो अरहन्ताण, णमो आइरियाण, णमो उवज्झ याणं या ॐ ह्रीं अ सि आ उ सा है।

दिशासु स्व पर ज्ञात्वा श्रद्धाय च यथास्थिति। विहायान्यदनर्थित्वात् स्वमेवावैतु पश्यतु॥ १४३

पूर्वं श्रुतेन सस्कार स्वात्मन्यारोपयेत्तत। तत्रैकाग्र समासाद्य न किंचिदपि चिन्तयेत्॥ १४४

भावार्थ—ध्यान करनेवालेको उचित है कि पहले अपने आत्माके व परद्रव के स्वरूपको यथार्थ जैसाका तैसा जाने व श्रद्धान करे। फिर परद्रव्यको अप्रयोजः भूत जानके छोड़ दे। अपनेमे ही अपनेको स्थापित करे। पहले शास्त्रके अभ्यास अपने स्वरूपका भाव अपनेमें स्थापित करे। फिर जब एकाग्र हो जावे तब कु चिन्तवन न करे।

८. मन:पर्यय, केवल, स्वरूप—ये तीन भाव

मतिस्रुत अवधिं चिंते, रिजु विपुलं च जानतं।
स्वात्मदर्सनं न्यानं, सुद्ध चरन मनपर्ययं ॥ ५५ ॥
चतुर्न्यानं च एकत्वं, केवलं परमं ध्रुवं।
अनन्तानन्त दिष्टितं, सुद्धं सम्यग्दर्सनं ॥ ५६ ॥

अन्वयार्थ—(मति सुत अवधिं चिते) ऊपर कहे प्रमाण अध्यात्मदृष्टिसे मति, श्रुत व अवधिज्ञानका चिन्तवन करे (रिजु विपुल च जानत) अपने आत्माको परम सरल स्वभावी तथा विपुल विशाल अनन्तानन्त ज्ञानकी शक्तिका धारक जाने (स्वात्म दर्सन न्यान चरन) जब अपने ही आत्माका श्रद्धान व ज्ञान व आचरण हो, ऐसा स्वात्मानुभव हो, वही मन:पर्ययज्ञान है। अर्थात् मनसे अतीत आत्माका ज्ञान है। पर्ययके अर्थ अतीत व उल्लंघनके है (चतुर्न्यानि च एकत्व) जब स्वात्मानुभवरूप शुक्लध्यान होता है तब चारो ही ज्ञानकी एकता है। इसके द्वारा (केवल परम ध्रुव) केवलज्ञानका प्रकाश हो जाता है। जो उत्कृष्ट है व अविनाशी निश्चल है (अनतानत दिष्टित) इस केवलज्ञानमें अनन्तानन्त पदार्थ एकदमसे झलकते हैं (सुद्ध सम्यग्दर्सनं) तब ही शुद्ध प्रत्यक्ष परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन होता है जो आत्माका स्वरूप है।

भावार्थ—आत्मा स्वभावसे ऋजु है, सरल है, आर्जवगुण सहित है तथा विपुल है, विशाल है, गम्भीर है, अनन्तानन्त ज्ञान, दर्शन, वीर्य सुखादि शक्तिका धारी है। सब द्रव्योमें महान् है। पाँच द्रव्य मात्र ज्ञेय हैं। यह ज्ञेय भी है, ज्ञाता भी है। यह ऐसा गम्भीर है कि इसकी याद मन व इन्द्रियोंको नहीं हो सकती है। मन:पर्ययके अर्थ हैं मनसे अतीत। जहाँ मनसे अतीत आत्माही द्वारा सरल व सहज स्वभावी विशाल आत्माका अनुभव है वही यथार्थ मन:पर्ययज्ञान है। जहाँ रत्नत्रयकी एकतारूप निर्विकल्प ध्यान होता है वह वचन अगोचर स्वसंवेदन प्रत्यक्ष एक ऐसा मोक्ष साधकभाव है जो केवलज्ञानका साधक है व जिसमें मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्ययज्ञान समा गए हैं। ऐसा ज्ञान आस्रवका निरोधक है। स्वानुभवसे प्राप्त केवलज्ञान भी आस्रव निरोधक है, क्योंकि वहाँ सर्व विश्वको जानते हुए भी वीतरागता है। केवलज्ञानके होनेपर सम्यग्दर्शन, शुद्ध व परमावगाढ़ हो जाता है, क्योंकि वहाँ प्रत्यक्ष अमूर्तीक आत्माका दर्शन है, यह स्वस्वरूपमयी सम्यक्त्व भी आस्रव निरोधक है। समयसारमें कहा है—

अप्पाणमप्पणा रु धिऊण दोपुण्णपावजोगेसु । दसणणाणम्हि ठिदो इच्छाविरदो य अण्णम्हि ॥ १८७ ॥
जो सव्वसगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा । णवि कम्म णोकम्म चेदा चितेदि एयत्त ॥ १८८ ॥

भावार्थ—जो कोई ज्ञानी अपनेको पुण्य व पाप दोनों प्रकारके भावोसे रोककर अपने सम्यग्ज्ञान स्वभावमें स्थिर होता है, दूसरे पदार्थोंकी इच्छासे विरक्त रहता है और सर्व प्रकारके ममत्वको छोड़कर अपनेसे ही शुद्ध आत्माको ध्याता है, कर्म व शरीरादिको नहीं ध्याता है, वही एक अपने स्वभावका अनुभव करता है । शिवकोटि आचार्य भगवती आराधनामें कहते है—

झाण कसायवादे गब्भघर मारुए व गब्भहर । झाणं कसायउण्हे छाही छाही व उण्हम्मि ॥ १६९६ ॥

भावार्थ—जैसे प्रबल पवनकी बाधा मेटनेको अनेक घरोके मध्यमे गर्भगृह समर्थ है वैसे कषायरूपी पवनकी बाधा मेटनेको आत्मध्यानरूपी गर्भगृह समर्थ है । जैसे गर्मीके आतापमें छाया शातिकारी है, वैसे ही कषायकी आताप मेटनेको आत्मध्यानकी छाया हितकारी है ।

---

९. आज्ञा, वेदक, उपशम सम्यक्त्व—ये तीन भाव
१०. क्षायिक, शुद्ध, ध्रुव, सम्यक्त्व—ये तीन भाव

स्वरूपं सुद्ध द्रव्यार्थं, आन्या वेदक उवसमं ।
ष्यायिक सुद्ध धुवं चिंते, कर्मादि मल मुक्तये ॥ ५७ ॥

अन्वयार्थ—(स्वरूप सुद्ध द्रव्यार्थं) **आत्माका स्वभाव शुद्धरूप है ऐसा निश्चय होना** (आन्या वेदक उपसम) **आज्ञा, वेदक, उपशम, सम्यक्त्व है तथा यही** (ष्यायिक सुद्ध धुवं) **क्षायिक, शुद्ध, ध्रुव, सम्यक्त्व है,** (कर्मादि मल मुक्तये चिते) **कर्मादि मैलके छुड़ानेके लिये इनका चिन्तवन करना योग्य है ।**

भावार्थ—मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र स्वरूप है । उनमें सम्यग्दर्शन प्रधान है । जबतक सम्यग्दर्शन गुण प्रगट नही होता है तबतक जितना भी ज्ञान है वह कुज्ञान है व जितना भी चारित्र है वह कुचारित्र है । सम्यग्दर्शन एक ऐसा आत्माका गुण है जो केवल अनुभवगम्य है । स्वानुभूतिके साथ इसका अविनाभाव सम्बन्ध है । अपने आत्माके आनन्दका स्वाद विना सम्यक्त्वके नहीं आ सकता है । अनन्तानुबन्धी कषाय और मिथ्यात्वकर्म इन पाँच प्रकृतियोके उदयमें

इसका प्रकाश नहीं होता है। इन पाँचों प्रकृतियोंके अन्धकारको दूर करनेके लिये पाँच लब्धियोकी आवश्यकता है।

(१) क्षयोपशम लब्धि—कर्मोंका ऐसा क्षयोपशम हो कि सैनी पंचेन्द्रिय होकर बुद्धि प्रबल हो, समझने योग्य हो व पाप कर्मोंका उदय समय-समय कम होता जाय। अर्थात् जिसको असाता घटती रूप हो बढ़ती न हो, कारण जो घोर दुःखोसे आकुलित है वह स्वपर तत्त्वका विचार नही कर सकता है।

(२) विशुद्धिलब्धि—सुशिक्षा व सत्संगतिके प्रतापसे परिणामोमें उज्ज्वलता हो गई हो कि अशुभ कामोसे कुछ अरुचि हो, योग्य लाभकारी कामोमें रुचि हो। जैसे धन होनेपर परोपकारमें लगानेके भाव हो, बुरे कर्मोंसे बचानेके भाव हो। जब कषायका अनुभाग तीव्र नही हो तब विशुद्धि लब्धि कहनी चाहिये, हितकी तरफ मन प्रेरित हो।

(३) देशना लब्धि—जिनवाणीके पढ़ने, सुनने, विचारने, धारणामें लेनेकी व मनन करनेकी गाढ़ रुचि होना, यह लब्धि परमोपकारिणी है। इसके होते हुए भव्यजीव देव, शास्त्र, गुरुका व जीवादि सात तत्त्वोंका व स्वपरका स्वरूप ठीक-ठीक समझता हे। परिणामोमे स्वाध्यायके प्रतापसे ऐसी उज्वलता होती है कि आयु कर्मके सिवाय शेष कर्मोंकी स्थिति घटकर अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर मात्र रह जाती है।

(४) प्रायोग्य लब्धि—यह लब्धि अन्तर्मुहूर्तके लिये होती है, परिणाम उज्वल होते हैं। इस समय पाप कर्मोंका अनुभाग कम होने लगता है तथा नया बन्धन आयु कर्मके सिवाय सात कर्मोंकी अन्तः कोड़ाकोड़ी मात्र स्थितिसे भी कम होता जाता है। ३४ दफे बन्धका अपसरण होता है। हरएक दफे स्थिति ७०० व ८०० सागर कम होती जाती है। ३४ बन्धापसरणोंसे ४६ कर्म प्रकृतियोका बन्ध छूट जाता ह, विशेषके लिये लब्धिसार देखो।

(५) करणलब्धि—भेदविज्ञानके द्वारा अभ्यास करते हुए ही देशनालब्धिकी पूर्णता होकर प्रायोग्य लब्धि फिर करणलब्धि होती है जिसमें परिणाम समय-समय अनन्तगुणे विशुद्ध होते जाते हैं। एक अन्तर्मुहूर्तमें तीन करणलब्धिमें अधः-करण, अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण हो जाती हैं। आत्मा व परमात्माका भेद विचारते हुए परिणाम ऐसे निर्मल हो जाते हैं कि उनके प्रतापसे अनन्तानुबन्धी कषाय और मिथ्यात्वकी प्रकृतियाँ एक अन्तर्मुहूर्तके लिये उपशम हो जाती हैं, तब उपशम

सम्यक्त्व पैदा हो जाता है, तब मिथ्यात्व कर्मका पुद्गल द्रव्य जो सत्तामें था, उसके तीन भाग हो जाते हैं—सम्यक्त्व प्रकृति, मिश्र, मिथ्यात्व। अन्तर्मुहूर्तके पीछे जिसके सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय आ जाता है वह वेदक या क्षयोपशम सम्यक्त्व हो जाता है। इस सम्यक्त्वमें सम्यक्त्व प्रकृतिको अनुभव करते हुए सम्यग्दर्शनसे छूटता नहीं है। किन्तु उसमें कभी-कभी अतीचार लगता है। जब कभी चार अनन्तानुबन्धीका विसयोजन करके अर्थात् अन्य अप्रत्याख्यानादि कषाय क्षय करके व तीनों दर्शन-मोहनीय क्रमसे क्षय कर देता है तब क्षायिक सम्यक्त्व होता है। यह सम्यक्त्व कभी छूटता नहीं है वह शीघ्र ही मोक्षमें पहुँचा देता है। यहाँ सम्यक्त्वके छः भेद नीचे बताए हैं—

(१) आज्ञा सम्यक्त्व—जिनवाणीकी आज्ञानुसार आत्मा व अनात्माके तत्त्वों-पर निश्चय हो जाना, इसको व्यवहार सम्यक्त्व भी कह सकते हैं। इसका स्वरूप आत्मानुशासनमें गुणभद्राचार्य कहते हैं—

आज्ञा सम्यक्त्वमुक्त यदुत विरुचित वीतरागाज्ञयेव।
त्यक्तग्रंथप्रपचं शिवममृतपथं श्रद्दधन्मोहशाते ॥ १२ ॥

भावार्थ—जहाँ वीतराग भगवान्‌की आज्ञासे तत्त्वोंका विचार करते हुए ऐसा श्रद्धान हो जावे कि मोक्षका मार्ग परिग्रहसे रहित वीतरागभावमयी व आनन्दमयी है। जब मिथ्यात्व कर्म शान्त होने लगता है तब ऐसा भाव होता है, इस सम्यक्त्वके पीछे ही।

(२) उपशम सम्यक्त्व होता है। जब पाँच या सादि मिथ्यात्वीके पाँच या सात प्रकृतियोंका उपशम होता है फिर—

(३) वेदक सम्यक्त्व होता है जब सातों प्रकृतियोंमेंसे एक सम्यक्त्व मोहनीय-का उदय होता है फिर—

(४) क्षायिक सम्यक्त्व होता है जब सातोंका क्षय हो जाता है।

(५) शुद्ध सम्यक्त्व—सराग सम्यक्त्वको अशुद्ध कहते हैं, वीतराग सम्यक्त्व-को शुद्ध कहते हैं। साधुके जब संज्वलन कषायका इतना मन्द उदय होता है कि सिवाय शुद्धात्माके और तरफ बुद्धिपूर्वक उपयोग नहीं जाता है, दूसरे आहार विहार-की चिन्ता नहीं उठती है तब वीतराग सम्यक्त्व कहलाता है। प्रमत्त गुणस्थान तक तो सराग सम्यक्त्व होता है।

(६) ध्रुव सम्यक्त्व—परमावगाढ सम्यक्त्व जो केवली भगवान्‌के होता है। केवलज्ञानके पहले आत्माका श्रद्धान शास्त्रके आधारसे श्रुतज्ञानके बलसे या केवलज्ञानीको प्रत्यक्ष अमूर्तीक आत्माका साक्षात्कार हो जाता है इसलिए यह ध्रुव या निश्चल सामायिक सम्यक्त्व है।

सम्यक्त्व एक ही गुण है। भिन्न-भिन्न अपेक्षासे उसके छः नाम कहे गये हैं। सम्यक्त्वीका गाढ़ भाव अपने शुद्धात्माके लाभपर हो जाता है। उसको ससारके प्रपञ्चकी अरुचि हो जाती है। सम्यक्त्वके आठ अंग प्रकट हो जाते है।

१. निःशंकित अंग—तत्त्वमें शंका न होना व धर्म साधन करते हुए भय न रखना। मरण, रोग आदिसे भयभीत न होना, वीरभाव रखना।

२. निःकांक्षित अंग—ससारके सुखको त्यागने योग्य व दुःखका कारण समझना।

३. निर्विचिकित्सित अंग—रोगी, दुःखी प्राणियोको देखकर ग्लानि न करके दयाभाव करना।

४. अमूढ़दृष्टि अंग—मूढ़तासे देखा-देखी अधर्मको धर्म न मान बैठना।

५. उपगूहन अंग—अपने दोषोको निकालनेकी व परनिन्दा न करनेकी रुचि रखना।

६. स्थितिकरण—अपनेको व दूसरोको धर्ममें स्थिर करना।

७. वात्सल्यांग—धर्मात्माओसे प्रेम रखना, उनके काम आना।

८. प्रभावनाग—धर्मकी महिमा फैलाकर धर्मोन्नति करना। सम्यक्त्वीके आठ अंग व लक्षण भी प्रगट होते हैं।

१ संवेग—धर्म व धर्मके फलमे अनुराग, २. निर्वेद—ससार शरीर भोगोसे वैराग्य, ३. निन्दा—अपने दोषोंको दूसरोंके सामने कहना, ४. गर्हा—अपने मनमें अपनी निन्दा करते रहना, ५. उपशम—परिणामोको शांत रखना, ६ भक्ति—देव, शास्त्र, गुरुमें भक्ति रखना, ७. वात्सल्य—धर्मात्माओसे प्रेम, ८. अनुकम्पा—जीव मात्र पर करुणाभाव।

आत्माके शुद्ध स्वभावका गाढ़ श्रद्धान हो जाना सम्यक्त्व है।

पञ्चाध्यायीमें कहा है—

इत्येव ज्ञाततत्त्वोऽसौ सम्यग्दृष्टिर्निजात्मदृक्। वैषयिके सुखे ज्ञाने रागद्वेषौ परित्यजेत्॥ ३७१॥

भावार्थ—तत्त्वोंको भले प्रकार जाननेवाला व अपने आत्माके यथार्थ स्वरूप-का श्रद्धान करनेवाला सम्यग्दृष्टि जीव इन्द्रियोंके भोगोंसे प्राप्त सुखमें व इन्द्रियजन्य ज्ञानमें राग-द्वेष नहीं करता है, समभाव रखता है, अतीन्द्रिय ज्ञान व अतीन्द्रिय आनन्दका ही प्रेमी हो जाता है।

सम्यक्त्व वस्तुत सूक्ष्म केवलज्ञानगोचरम् । गोचर स्वावधिस्वान्त पर्ययज्ञानयोर्द्वयो. ॥ ३७५ ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन गुण परम सूक्ष्म है, केवलज्ञान गोचर है। अथवा पुद्गलकी सहायतासे सुअवधि व मनःपर्ययज्ञानी भी जान सकता है। परंतु परमावधि व सर्वावधि वाला साधु जान सकता है देशावधिधारी नही।

तत्राप्यात्मानुभूति सा विशिष्ट ज्ञानमात्मन । सम्यक्त्वेनाविनाभूतमन्वयाद् व्यतिरेकत ॥ ४०२ ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शनके होने ही पर अपने आत्माका अनुभव रूप विशेष आत्माका ज्ञान होता है। सम्यक्त्वके होनेपर ही आत्मानुभूति होती है, नहीं होने-पर नही होती है।

धर्म सम्यक्त्वमात्रात्मा शुद्धस्यानुभवोऽथवा । तत्फल सुखमत्यक्षमक्षय क्षायिक च यत् ॥ ४३२ ॥

भावार्थ—सम्यक्त्वीको यह श्रद्धा रहती है कि सम्यग्दर्शन ही सच्चा धर्म है या शुद्धात्माका अनुभव सच्चा धर्म है। उस धर्मका फल घातिया कर्मोंके नाशसे होनेवाला क्षायिक अतीन्द्रिय अनन्त सुखका लाभ है।

---

१०. पदस्थ, पिंडस्थ, रूपस्थ—ये तीन भाव

११ रूपातीत, सुधर्म, अवकाश—ये तीन भाव

पदस्थं सुद्ध पद सार्धं, सुद्ध तत्तु प्रकासकं।
पिंडस्थं न्यान पिंडस्थ, स्वात्मचिंता सदा बुधैः॥ ५८ ॥
रूपस्थं सार्व चिद्रूपं, रूपातीतं विगत रूपयं।
स्वस्वरूपं च आराध्यं, धर्मचक्रं न्यान रूपयं॥ ५९ ॥
धर्मध्यानं च संयुक्तं, औकास दान समर्थयं।
आत्मापायविचयं धर्मं, सुक्लध्यानं स्वात्म दर्सनं॥ ६० ॥

अन्वयार्थ—(पदस्थ सुद्ध पद सार्धं, सुद्ध तत्तु प्रकासक) जहाँ शुद्धपदको स्थापन करके या शुद्ध पदके द्वारा शुद्ध आत्मीक तत्त्वका प्रकाश हो वह पदस्थ ध्यान है

(पिंडस्थ ग्यान पिंडस्थ, स्वात्मचिंत्या सदा बुधे) जहाँ शरीरमें विराजित ज्ञान शरीरी आत्माको लक्ष्य करके अपने ही आत्माकी चिन्ता हो, ऐसा पिंडस्थ ध्यान सदा बुद्धिमानोंको करना योग्य है (रूपस्थ सार्व चिद्रूप) जहाँ सर्व हितकारी अरहन्तका चैतन्य स्वरूपका ध्यान हो वह रूपस्थ ध्यान है (विगत रूपय रूपातीत) जहाँ अरूपी सिद्धका ध्यान हो, वह रूपातीत ध्यान है (धर्मचक्र ग्यान रूपय स्वस्वरूप च आराध्य) धर्मका समूह ज्ञानस्वभावी अपने आत्माका स्वरूप इन चारो प्रकारके ध्यानोसे आराधना योग्य है (आत्मापायविचय धर्मं धर्मध्यान च सयुक्त) आज्ञाविचय, अपाकविचय, विपाक विचय, संस्थान विचय ऐसा चार प्रकार धर्मध्यान विचारना योग्य है (औकास दान समर्थयं सुक्लध्यान स्वात्म दर्सन) सर्व द्रव्योको जाननेके समर्थ केवलज्ञानका कारण व केवलज्ञानरूप शुक्लध्यान है, वहाँ भी अपने आत्माका दर्शन है।

भावार्थ—आत्मध्यानकी अग्निसे ही कर्मोंको भस्म किया जाता है। यहाँ तीन गाथाओंमें सर्व उपयोगी ध्यानोको बता दिया है। पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ, रूपातीत चार प्रकार ध्यानका स्वरूप नीचे प्रकार जानना योग्य हैं।

(१) पदस्थ ध्यान—श्रीपद्मसिंह मुनि ज्ञानसारमें कहते है—

गय च पच मत्तय पणतीसा जहकमेण सियवण्णा। झायह पयस्थ झाण उवइठ्ठ जोयजुत्तेहि ॥ २२ ॥

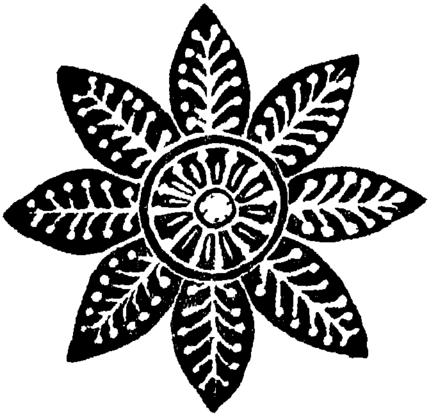
भावार्थ—योगाभ्यासके बलसे पदस्थ ध्यानमें श्वेतवर्णके अक्षरोको विराजमान करके ध्यावे। इन पदोको नाभि, हृदय, कण्ठ, मुख, नासिका अग्रभाग, भृकुटीके मध्य, मस्तक, सिर इन सातमेसे किसी स्थानपर कमल बनाकर उसपर स्थापन करके ध्यावे। मन्त्र कई प्रकारके प्रसिद्ध हैं।

३५ अक्षरी—णमोकार मन्त्र।
१६ अक्षरी—अर्हंत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः।
७ „ णमो अरहताणं, णमो आइरियाण, णमो उवज्झायाण।
६ „ अरहन्त सिद्ध, ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः।
५ „ अ सि आ उ सा—ॐ नमः सिद्धं।
४ „ अरहन्त।
२ „ सिद्ध, सोहं, ॐ ह्रीं, अर्हं।
१ „ ॐ, ह्रं, अ।

हृदयस्थानमें एक कमल आठ पत्तोका विचारे, हर एक पत्तेपर छः एक

तरफ, छः दूसरी तरफ ऐसे १२ बिन्दु विचारे। बीचमें कर्णिकाके घेरेमें १२ बिन्दु विचारे। एक-एक पत्तेको क्रमसे लेकर एक-एक बिन्दुपर एक-एक मन्त्रको पूरा पढ़-कर जपे व अर्थको विचारे। उसका नकशा इस प्रकार होगा--

एक कमल हृदयमें विचारे। उसके आठ पत्तोंपर क्रमसे णमो अरहन्ताण, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाण, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूण, सम्यग्दर्शनाय नमः, सम्यग्ज्ञानाय नमः, सम्यक्चारित्राय नमः, ऐसे आठ पद लिखे। विचार कर ध्यावे। चन्द्रमाके समान चमकते हुए ॐको या ह्रँको नासिका अग्रभाग या मस्तक या हृदयमें स्थापितकर या अन्यत्र रखकर ध्यावे। यह सब पदस्थ ध्यान है। विशेष स्वरूप श्री ज्ञानार्णवमें जानना योग्य है।



(२) पिंडस्थ ध्यान--शरीरमें विराजित अपने शुद्ध आत्माका ध्यान सो पिंडस्थ ध्यान है। इसकी पांच धारणाओंका विचार क्रम-क्रमसे करना चाहिये।

पृथ्वी धारणा--मध्यलोकको क्षीरसमुद्र विचारे, उसके मध्यमें जम्बूद्वीप प्रमाण एक लाख योजनका चौड़ा एक हजार पत्तोंका कमल ताए सोनेके रंगका विचारे। बीचमें कर्णिकाके स्थानपर सुमेरु पर्वतको सुवर्ण रंगका विचारे। पर्वतके ऊपर पांडुकवनको विचारे। पांडुकवनमें पाडुकशिला अर्द्धचन्द्राकार है। उसपर स्फटिकमणिका सिंहासन है। उसके ऊपर पद्मासन बैठा हुआ अपनेको विचारे कि मैं कर्मोंको विध्वंस करनेके लिये बैठा हूँ। इतना बार-बार विचारना पृथ्वी धारणा है।

अग्नि धारणा--उसी सिंहासनपर बैठे हुए ऐसा विचारे कि मेरी नाभिके स्थानपर भीतर ऊपरको उठा हुआ--एक श्वेतवर्णका सोलह पत्तोंका कमल है, उनपर १६ अक्षर पीले रंगके चमकते हुए विचारे। वे १६ स्वर हैं। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः। व उस कमलके मध्यमें हँ अक्षर विचारे। इस कमलके ठीक ऊपर सीधमें हृदयस्थानपर औंधा नीचा मुख कमल आठ पत्तोंका विचारे। उन पत्तोंको ज्ञानावरणादि आठ कर्म समझे। फिर विचारे कि नीचेके

कमलके मध्य हूँ की रेफसे धुंआं निकला फिर अग्निज्वाला निकली और वह बढकर आठ कर्मरूपी कमलको जलाने लगी। आगकी लौ आठ कर्मरूपी कमलके मध्यसे ऊँची होकर मस्तकपर आई। फिर एक ज्वाला शरीरके एक तरफ, एक दूसरी तरफ गई, नीचे जाकर मिल गई, शरीरके चारो ओर त्रिकोण बन गया। इस त्रिकोणकी तीनों रेखाओंमें र् र् र् र् अक्षर अग्निमय विचारे। इस त्रिकोणके बाहरी तीन कोनोंपर अग्निमय स्वस्तिक लिखे व भीतरी तीनों कोनोपर ॐ हूँ अग्निमय लिखे। इस अग्निमण्डलको बनाकर फिर यह ध्यान करे कि भीतरी अग्निमण्डल कर्मोंके कमलको व बाहरी अग्निमण्डल शरीरको जला रहा है। जलते-जलते राख बन रही है। इस तरह कर्म व शरीर जलकर रज हो गए व अग्नि हूँ के रेफसे उठी थी उसीमें समा गई। ऐसा बारबार ध्यान करे सो अग्निधारणा है।

(३) वायु धारणा—तीव्र चलती हुई पवनको विचारे। पवनका बीजाक्षर स्वाय स्वाय चारो तरफ गोल पवन मण्डलके लिखा हुआ है। यह गोल मण्डल घूम-घूम करके कर्म व शरीरकी रजको उड़ा रहा है, आत्मा स्वच्छ हो रहा है ऐसा चिन्तवन करे।

(४) जल धारणा—काले-काले मेघ छा गये, बिजली कडकने लगी, पानी वरसने लगा, अर्धचन्द्रके आकार जल मण्डल उनके ऊपर बन गया। अपनी आत्मा-पर पानी वहता हुआ व कर्म नोकर्मकी रजको धोता हुआ विचारे कि आत्मा बिल-कुल साफ हो रहा है।

तत्स्वरूपवती धारणा—अब विचारे कि मेरा आत्मा बिलकुल शुद्ध है। सर्व पुद्गल रहित है, स्फटिकमणि तुल्य है, यही सिद्ध है, ऐसा शुद्धात्माका ध्यान करे सो तत्स्वरूपवती धारणा है।

ज्ञानसारमें कहा है—

णियणाहिकमलमज्झे, परिट्ठिय विप्फुरतरवितेय। झाएह अरूहरूप झाण त मुणह पिंडत्थ ॥ १९ ॥

भावार्थ—अपने नाभिके मध्य कमलमें बिराजित सूर्यके समान तेजरूप मन्त्रके द्वारा अरहन्तको ध्यावे सो पिंडस्थ ध्यान है। यह अग्नि धारणाकी उपेक्षासे कहा है।

(३) रूपस्थ ध्यान—समवसरणमें स्थित आठ प्रातिहार्य सहित अरहन्त भगवान्‌के स्वरूपको ध्यावे, अरहन्तके द्वारा आत्माको ध्यावे।

ज्ञानसारमें कहा है–

धणघायिकम्ममहणो अहसुइवरपाडिहेरसयुत्तो । झाएह धवल वण्णो अरहन्तो समवसरणत्थो ।। २८ ।।

भावार्थ—समवसरणमें स्थित अतिशय व प्रातिहार्य सहित व चार घातीय कर्म रहित श्वेत वर्ण अरहन्तके ध्यानाकार स्वरूपका ध्यान करे ।

(४) रूपातीत ध्यान—एकदमसे सिद्धका स्वरूप ध्यावे कि वे चैतन्य स्वरूपी पुरुषाकार, शुद्ध, ज्ञानानन्दमयी आत्मा है । सिद्धके स्वरूपको आत्मामें आरोपण करके ध्यावे ।

ज्ञानसारमें कहा है—

जरमरणजम्मरहिओ, कम्मविहीणो विमुक्कबाबारो ।
चउगइगमणागमणो णिरंजणो णिरुवमो सिद्धो ।। ३३ ।।

भावार्थ—वे सिद्ध भगवान्, जन्म, जरा, मरणसे रहित हैं, आठ कर्म रहित हैं, क्रिया रहित हैं, चार गतिमें गमनागमन रहित है, रागादि मैल रहित हैं, अनुपम हैं ।

धर्म्यध्यानके चार भेद हैं उनको भी ध्यावे ।

(१) आज्ञाविचय—जिनेन्द्रकी आज्ञाके अनुसार जीवादि तत्त्वोको जानकर आत्माका स्वरूप परसे भिन्न विचारे । तत्त्वार्थसारमें कहा है—

प्रमाणीकृत्य सार्वज्ञीमाज्ञामर्थावधारणम् । गहनाना पदार्थानामाज्ञाविचयमुच्यते ।। ६०–७ ।।

भावार्थ—सर्वज्ञकी आज्ञाके अनुसार कठिन पदार्थोंका स्वरूप निश्चय करके उनके स्वरूपका विचारना आज्ञाविचय धर्मध्यान कहा जाता है ।

(२) अपायविचय—हमारे रागादि भावोका कैसे नाश हो, दूसरे जीव कुमार्गको छोडकर किस तरह सुमार्गपर आवें व वीतरागभावको प्राप्त करें ऐसा ध्यान अपायविचय है । तत्त्वार्थसारमें कहा है—

कथ मार्गं प्रपद्येरन्नमी उन्मार्गतो जना । अपायमिति या चिन्ता तदपायविचारणम् ।। ४१-७ ।।

भावार्थ—जगत्के प्राणी किस तरह कुमार्गसे छूटकर सुमार्गमें चलें ऐसी चिन्ता सो अपायविचय धर्मध्यान है ।

(३) विपाकविचय—अपनी व दूसरे प्राणियोकी अच्छी या बुरी अवस्थाओंको देखकर कर्मोंके उदयको विचारना सो विपाकविचय धर्मध्यान है । तत्त्वार्थसारमें कहा है—

द्रव्यादिप्रत्यय कर्मफलानुभवन प्रति । भवति प्रणिधानं यद्विपाकविचयस्तु स ।। ४२-७ ।।

भावार्थ—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके कारणसे जो कर्मोंके फलका अनुभव होता है उसका चिन्तवन सो विपाकविचय धर्मध्यान है।

(४) संस्थानविचय—तीन लोकका आकार विचारना, जीवोंके स्थान व सिद्धक्षेत्रको विचारना संस्थानविचय धर्मध्यान है। तत्त्वार्थसारमें कहा है—

लोकसंस्थानपर्यायस्वभावस्य विचारणम्। लोकानुयोगमार्गेण संस्थानविचयो भवेत्॥ ४३-७॥

भावार्थ—लोकानुयोग शास्त्रोंके द्वारा लोकका आकार व उसकी अवस्था व स्वभावका या लोकमें प्राप्त छः द्रव्योंके स्वभावका विचारना सो संस्थानविचय धर्मध्यान है।

शुक्लध्यानको शून्य ध्यान व अवकाश ध्यान भी कहते हैं यही केवलज्ञानका कारण है। इसके भी चार भेद हैं, पहले दो ध्यान केवलज्ञानके पहले होते हैं। अगले दो ध्यान केवलीके होते हैं।

(१) पृथक्त्ववितर्कवीचार—यह आठवें गुणस्थानसे बारहवेंके प्रारंभ तक होता है। इस ध्यानमें शुद्धोपयोग होता है, कषायका उदय अति मन्द है। परिणामोकी उज्ज्वलता यहाँ अनन्तगुणी बढ़ती जाती है। पूर्व अभ्याससे यहाँ अबुद्धिपूर्वक पलटन होती है, ध्याताको खबर नहीं होती है। यह ध्यान श्रुतके आधार पर होता है। तीन प्रकारकी पलटन होती है। मन, वचन, काय योगकी परस्पर पलटन हो। उपयोग कायसे वचन, वचनसे मन पर जावे व मनसे काय व वचन पर जावे। शब्दसे दूसरे शब्द पर तथा ध्येय पदार्थमें द्रव्यसे किसी गुण पर या पर्याय पर इस तरह पलटन होती है। इस शुक्लध्यानसे मोहनीय कर्मका सर्वथा उपशम या क्षय किया जाता है। यहाँ निर्मल स्वानुभवकी दशा होती है।

तत्त्वार्थसारमें कहा है—

द्रव्याण्यनेकभेदानि योगैर्ध्यायति यत्त्रिभिः। शान्तमोहस्ततो ह्येतत् पृथक्त्वमिति कीर्तितम्॥४५-७॥
श्रुतं यतो वितर्कः स्याद्यतः पूर्वार्थशिक्षितः। पृथक्त्वं ध्यायति ध्यानं सवितर्कं ततो हि तत्॥४६-७॥
अर्थव्यञ्जनयोगानां वीचारः संक्रमो मतः। वीचारस्य हि सद्भावात् सवीचारमिदं भवेत्॥ ४७-७॥

भावार्थ—इस ध्यानमें तीनों योगोंसे अनेक भेदरूप द्रव्योंको मोहको शान्त करता हुआ साधु ध्याता है, इसलिए इसे पृथक्त्व कहते है। पूर्वोंके अर्थके ज्ञानसे श्रुतका अवलम्बन होता है उसको वितर्क कहते हैं, उस श्रुतके भावको भी भिन्न करके ध्याते हैं इसलिये इसे सवितर्क कहते हैं। यहाँ एक ध्येयके अर्थसे दूसरे ध्येय

पदार्थ पर, एक शब्दसे दूसरे शब्द पर, एक योगसे दूसरे योग पर पलटन होती है इसलिये इसको वीचार सहित कहते हैं।

(२) एकत्ववितर्क अवीचार—इस दूसरे शुक्लध्यानको क्षीणमोही १२वें गुणस्थानधारी साधु ध्याता है। यहाँ एक कोई योग व एक कोई ध्येय व एक कोई शब्दका आलम्बन है, पलटन नहीं है, इस ध्यानसे शेष तीन घातीय कर्मोंका क्षय करके अरहन्त केवलज्ञानी हो जाता है। अन्तर्मुहूर्त इस ध्यानमें ठहरनेसे शरीरसे निगोद जीव चले जाते हैं व शरीरकी धातु पक कर शुद्ध हो जाती हैं। शरीर परमौदारिक स्फटिक या कपूर समान निर्मल हो जाता है। तत्त्वार्थसारमें कहा है—

द्रव्यमेक तथैकेन योगेनान्यतरेण च। ध्यायति क्षीणमोहो यत्तदेकत्वमिद भवेत् ॥ ४८-७ ॥
श्रुत यतो वितर्क स्याद्यत पूर्वार्थशिक्षित। एकत्व ध्यायति ध्यान सवितर्क ततो हि तत् ॥ ४९-७ ॥
अर्थव्यञ्जनयोगाना वीचार सक्रमो मत। वीचारस्य ह्यसद्भावादवीचारमिद भवेत् ॥ ५०-७ ॥

भावार्थ—इस ध्यानमें एक किसी योगसे एक किसी द्रव्यको या ध्येयको एक किसी शब्दके द्वारा ध्याया जाता है, इसलिये इसे एकत्व कहते हैं। पूर्वोके ज्ञानसे प्राप्त श्रुतको वितर्क कहते हैं। वहाँ एक ही श्रुतके मलका आलम्बन है, इसलिये सवितर्क है। ध्येय रूप अर्थ, शब्द व योगकी पलटनको विचार कहते हैं। वह वीचार यहाँ नही है, इसलिये इसको अवीचार कहते हैं।

(३) सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति—यह तेरहवें गुणस्थानमें जब अन्तर्मुहूर्त रह जाता तब होता है, जब काययोगका परिणमन अति सूक्ष्म हो जाता है, इसके द्वारा १४वें अयोग गुणस्थानमे जाता है।

तत्त्वार्थसारमें कहा है—

अवितर्कमवीचार सूक्ष्मकायावलम्बनम्। सूक्ष्मक्रिय भवेद् ध्यानं सर्वभावगत हि तत् ॥ ५१-७ ॥
काययोगेऽतिसूक्ष्मे तद्वर्तमानो हि केवली। शुक्ल ध्यायति सरोद्ध काययोग तथाविधम् ॥ ५२-७ ॥

भावार्थ—तीसरे शुक्लध्यानमें न श्रुतका आलम्बन है न कोई पलटन है। सूक्ष्मकाययोगका आलम्बन है, सर्व भावोको प्राप्त है। जब काययोग अति सूक्ष्म रह जाता है तब केवली भगवान्के होता है, फिर अरहन्त देवके सर्व प्रकार काययोगका निरोध हो जाता है।

(४) व्युपरतक्रियानिवर्ति—यह अयोग गुणस्थानमें पञ्चलघु अक्षर उच्चारण काल मात्र होता है। इस ध्यानसे चार अघातीय कर्म भी क्षय हो जाते है और यह आत्मा सिद्ध परमात्मा हो जाता है।

तत्त्वार्थसारमें कहा है—

अवितर्कमवीचारं ध्यानं व्युपरतक्रियम् । परं निरुद्धयोगं हि तच्छैलेस्यमपश्चिमम् ॥ ५३–७ ॥
तत्पुना रुद्धयोगः सन् कुर्वन् कायत्रयासनम् । सर्वज्ञः परमं शुक्लं ध्यायत्यप्रतिपत्ति तत् ॥ ५४–७ ॥

भावार्थ—चौथे ध्यानमें न वितर्क है, न वीचार है, न क्रिया है। योग रहित भगवान्के होता है, वे सर्वज्ञ भगवान् इस निश्चल परम शुक्लको ध्याते हुए कार्मण, तैजस व औदारिक तीनो शरीरोको त्याग कर शुद्धात्मा हो जाते है। ज्ञानसारमें शून्य ध्यानका स्वरूप कहा है—

सुण्णज्झाणे णिरओ चइगयणिस्सेसकरणवावारो । परिरुद्धचित्तपसरो पावइ जोई परं ठाणं ॥ ३९ ॥

भावार्थ—शून्य ध्यानमें लीन योगीका सर्व व्यापार बन्द हो जाता है, चित्तका प्रसार रुक जाता है इस शून्य ध्यानसे परम स्थान जो मोक्षपद है सो प्राप्त हो जाता है।

---

१२. द्रव्य, भाव शुद्ध—ये तीन भाव

१३. तत्त्व, नित्य, प्रकाशन—ये तीन भाव

द्रव्यस्य भाव सुद्धस्य, तत्तु नित्तु प्रकासनं ।
सुद्धात्मा भावए नित्यं, त्रिभंगी दल षंडितं ॥ ६१ ॥

अन्वयार्थ—(द्रव्यस्य भाव सुद्धस्य) **आत्माके द्रव्यको, आत्माके भावोको व शुद्ध स्वरूपको ध्यावे** (नित्तु तत्तु प्रकासन सुद्धात्मा नित्य भावए) **अविनाशी तत्त्वके प्रकाश करनेवाले शुद्धात्माकी सदा भावना करे** (त्रिभंगी दल षंडित) **इन तीन प्रकारके ध्यानसे कर्मोंके दलका क्षय हो जाता है।**

भावार्थ—आत्मा द्रव्य सत् पदार्थ है, गुण पर्यायवान है, अनन्तगुण पर्यायका धारी है, अमूर्तीक है, असख्यातप्रदेशी है। अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, द्रव्यत्व, प्रदेशत्व इन छः सामान्य गुणोका धारी है। ये छः सामान्य गुण छहो द्रव्योमें पाये जाते है। इनका स्वरूप इस तरह है—

१. अस्तित्व—जिससे द्रव्यकी सत्ता सदा बनी रहे, कभी अभाव न हो।
२. वस्तुत्व—जिससे द्रव्य कोई-न-कोई अर्थको करे, व्यर्थ न हो।
३. प्रमेयत्व—जिससे द्रव्य किसीके ज्ञानका विषय हो।

४ अगुरुलघुत्व—जिससे द्रव्य अपने गुणपर्यायोंको लिये हुए अपनी मर्यादामें रहे, न किसी गुणको बढ़ावे, न घटावे।

५. द्रव्यत्व—जिससे द्रव्य सदा परिणमन करता रहे, कूटस्थ नित्य न रहे।

६. प्रदेशत्व—जिससे द्रव्यका कोई-न-कोई आकार हो, चाहे मूर्तीक हो चाहे अमूर्तीक आत्माके प्रसिद्ध विशेष गुण, ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, सम्यक्त्व, चारित्र आदि हैं। द्रव्य अखण्ड अकृत्रिम नित्य होता है तो भी उसमें स्वाभाविक या वैभाविक पर्यायें होती हैं। धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये तो स्वाभाविक पर्यायें ही होती है। जीव और पुद्गलमें शुद्धावस्थामे स्वाभाविक पर्यायें व अशुद्धावस्थानमें वैभाविक पर्यायें होती है। गुण सभी द्रव्यमें बने रहते हैं, पर्याय क्रम-क्रमसे होती है। एक ही समयमें द्रव्यमें पुरानी पर्यायका नाश व नवीन पर्यायका उत्पाद होता है व द्रव्य बना रहता है। इसलिये द्रव्य, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यस्वरूप है। जब ससार पर्यायका नाश होता है तब ही सिद्ध पर्यायका जन्म होता है, तथापि आत्मा ध्रुव बना रहता है। जीव और पुद्गलमे वैभाविक शक्ति भी है। जब परका निमित्त हो तब विभावरूप परिणमन हो जाता है।

हर एक आत्माकी सत्ता भिन्न-भिन्न है तथापि हर एक आत्मा दूसरे आत्मा के बराबर है। सर्व ही आत्माएँ एक समान असख्यातप्रदेशी हैं व सर्व गुणोमें समान हैं। आत्मामे सकोच विस्तार शक्ति है, जो नामकर्मके उदयसे काम करती है, जिससे यह आत्मा प्राप्त शरीरके प्रमाण छोटा या बड़ा हो जाता है। प्रदेश सकोच व विस्तृत हो जाते है। सिद्धात्मा होने पर अन्तर जैसा था वैसा रह जाता है, पूर्व शरीर प्रमाण ध्यानाकार होता है। नामकर्मके अभावसे सकोच विस्तार नही होता है। आत्मद्रव्य जब ससारमें मिथ्यात्व कर्मके उदयको भोगता है तब इसको बहिरात्मा कहते हैं। जब मिथ्यात्वका उदय नही होता है व सम्यग्दर्शनका प्रकाश हो जाता है तब इसको अन्तरात्मा कहते है। शुद्धात्माको परमात्मा कहते है। अपना ही आत्मा शुद्ध निश्चयनयसे देखा जावे तो यह बिलकुल शुद्ध है, सिद्धके समान है। यदि कर्म सहित दृष्टिसे देखा जावे तो वह वर्तमानमें अशुद्ध है, ससारी है।

आत्माके भाव पाँच प्रकारके होते है—

(१) औपशमिक—मोहनीय कर्मके उपशमसे होनेवाले दो भाव—औपशमिक सम्यक्त्व व औपशमिक चारित्र।

(२) क्षायिक—चारो घातीय कर्मोंके क्षयसे होनेवाले नौ केवल लब्धिरूप भाव–अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तदान, अनन्तलाभ, अनन्तभोग, अनन्तउपभोग, अनन्तवीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र। केवलज्ञानीमें ये सब होते हैं।

(३) क्षायोपशमिक या मिश्रभाव—जहाँ सर्व घातीय कर्मस्पर्द्धकोंका उदयाभावी क्षय हो व जो सत्तामें कर्म हैं उनका उपशम हो व देश घातीय कर्मस्पर्द्धकोंका उदय हो, तब जो भाव होते हैं, वे अठारह प्रकारके मिश्रभाव हैं।

४ मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्ययज्ञान, ३ कुमति, कुश्रुत, कुअवधि अज्ञान, ३ चक्षु, अचक्षु, अवधिदर्शन, ५ क्षयोपशम लब्धियाँ, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य।

१ क्षायोपशमिक या वेदक सम्यक्त्व, १ क्षायोपशमिक चारित्र छठे व सातवें गुणस्थानमें होनेवाला, १ सयमासयम–देश सयम गुणस्थानमें होनेवाला कुल १८ भाव हैं—

(४) औदयिक—कर्मोंके उदयसे होनेवाले २१ भाव।

४ गति, ४ कषाय, १ लिंगवेद, १ मिथ्यादर्शन, १ अज्ञान, १ असयत, १ असिद्धत्व, ६ लेश्याएँ–कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल।

(५) पारिणामिक–कर्मोंको खास अपेक्षा बिना, ३ भाव, भव्यत्व, अभव्यत्व व जीवत्व।

सर्व भाव २ औपशमिक, ९ क्षायिक, १८ मिश्र, २१ औदयिक, ३ पारिणामिक ५३ भाव होते हैं।

इनमेंसे कर्मबन्धके कारक औदयिकभाव ही होते हैं क्योंकि उन भावोंमें कर्मोंका अनुभाग रस देता है, उनमें मलीनता होती है। मलीनता ही कर्मोंको बाँधती है। शेष चारो भावोंमें आत्माका निज भाव प्रगट होता है, उससे कर्मबन्ध नहीं होता है। जितना अश कर्मोंका उदय है वह बन्धका कारक है सो भी मुख्यतासे घातीय कर्मोंके उदयसे बन्ध होता है।

धर्मध्यानमें सविकल्प ध्यानका ध्याते हुए आत्मद्रव्यका भेदरूप सर्व स्वरूप ध्यावे व आत्माके सर्व प्रकारके भावोंका विचार कर जावे परन्तु निर्विकल्प ध्यानके लिये एक शुद्धात्माको अभेद ही दिखावे तब स्वानुभव प्रगट होगा। यही स्वानुभव कर्मोंकी निर्जराका कारण है। तत्त्वानुशासनमें कहा है—

सहवृत्ता गुणास्तत्र पर्याया क्रमवर्त्तिन। स्यादेतदात्मक द्रव्यमेते च स्युस्तदात्मका॥ ११४॥

एवंविधमिदं वस्तु स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मकं । प्रतिक्षणमनाद्यन्तं सर्वं ध्येयं तथा स्थितं ॥ ११५ ॥
तथा हि चेतनोऽसंख्यप्रदेशो मूर्तिवर्जितः । शुद्धात्मा सिद्धरूपोऽस्मि ज्ञानदर्शनलक्षणः ॥ १४७ ॥
सद्द्रव्यमस्मि चिदहं ज्ञाता द्रष्टा सदाप्युदासीनः । स्वोपात्तदेहमात्रस्ततः पृथग्गगनवदमूर्तः ॥ १५३ ॥

भावार्थ—साथ रहनेवाले गुण व क्रमवर्ती पर्यायोंका धारी द्रव्यगुण पर्यायरूप होता है । सर्व गुण व पर्याय द्रव्यमें व्यापक होते हैं । ऐसे द्रव्य हर समय उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप है, अनादि अनन्त हैं । जैसा द्रव्य है उसे वैसा ही ध्याना चाहिये । ऐसा ही मैं चेतन द्रव्य हूँ, असख्यातप्रदेशी हूँ, अमूर्तीक हूँ, सिद्ध स्वरूपके समान हूँ, ज्ञातादष्टा लक्षणधारी हूँ, मै सत् पदार्थ हूँ, ज्ञातादृष्टा होकर भी परम वीतरागी हूँ । अपनी देह प्रमाण हूँ तथापि देहसे पृथक् हूँ, आकाशके समान अमूर्तीक हूँ ।

---

१४ तत्त्व, द्रव्य, काय—ये तीन भाव

तत्वादि सत्य तत्वानां, द्रव्य काय पदार्थकं ।
सार्धं करोति सुद्धात्मा, त्रिभंगी समय किंकरो ॥६२॥

अन्वयार्थ—(तत्वादि सप्त तत्वाना) जीव तत्त्वको आदि लेकर सात तत्त्वोंका तथा (द्रव्य काय पदार्थकं) छः द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, नौ पदार्थोंका जानना जरूरी है (सार्धं सुद्धात्मा करोति) इनकी श्रद्धाके साथ शुद्धात्माका ध्यान करना चाहिये (त्रिभंगी समय किंकरो) ये तत्त्व, द्रव्य, काय तीनोंका श्रद्धान आत्माकी श्रद्धामें कारण है ।

भावार्थ—व्यवहारनयसे जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन सात तत्त्वोंका श्रद्धान करना सम्यक्त्व कहलाता है । क्योंकि इनके श्रद्धानसे पर्यायोंका ज्ञान होता हे कि यह आत्मा इस तरह कर्म बाँधकर अशुद्ध होता है व इस तरह कर्मका क्षय कर मुक्त हो सकता है । इन्हींमें पुण्य व पाप मिलानेसे नौ पदार्थ होते हैं । पुण्य व पाप आस्रव बन्धमें गर्भित हैं । जीव, अजीव तत्त्वोंमें जीवादि छः द्रव्य व काल द्रव्यको छोडकर पाँच अस्तिकाय गर्भित हैं । इनका संक्षिप्त स्वरूप नीचे प्रकार जानना चाहिये ।

(१) जीव तत्त्व—निश्चयनयसे यह जीव शुद्ध है, सिद्धके समान है, व्यवहारनयसे कर्मबन्ध सहित होनेसे आप ही रागद्वेष भावोंमें परिणमता है जिससे कर्मका बन्ध हो जाता हे व आप ही वीतराग भावोंसे परिणमन करके कर्मका संवर व

कर्मकी निर्जरा करके मोक्ष प्राप्त होता है । यहाँ आप ही अपना स्वामी है, अपने ही परिणामोंसे ससार व मोक्षका भागी होता है ।

(२) अजीव तत्त्व—चेतना रहित द्रव्य अजीव तत्त्वमें गर्भित है । ऐसे द्रव्य पाँच हैं—पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल । जीवको मिलानेसे छः द्रव्य होते हैं । कालको छोड़कर पाँच द्रव्य अस्तिकाय कहलाते हैं । जिसमें परमाणु मिलकर स्कन्ध हो जावे, स्कन्ध गल कर परमाणु हो जावे उसको पुद्‌गल कहते हैं । सबसे छोटे अविभागी अशको परमाणु कहते हैं । दो परमाणुके बन्धरूप या सख्यात, असख्यात, अनन्त परमाणुओके बन्धरूपको स्कन्ध कहते हैं । हर एक परमाणु व स्कन्धमें चार विशेष गुण सदा मिलते हैं—स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण । इसीसे पुद्‌गलको मूर्तीक कहते हैं । स्कन्धोके कारण पुद्‌गलके छः भेद किये जा सकते हैं ।

१. स्थूल-स्थूल—जो इतने बन्धरूप हो कि खण्ड किये जाने पर स्वयं न मिल सके जबतक दूसरा द्रव्य न जोड़ा जावे । जैसे—कागज, काठ, पत्थर, खडिया ।

२. स्थूल—बहनेवाले स्कन्ध जो अलग होने पर फिर मिल जावे । जैसे—पानी, शरबत, दूध आदि ।

३. स्थूल सूक्ष्म—जो स्कन्ध देखनेमें आवें परन्तु किसी तरह पकडे न जा सकें । जैसे—धूप, छाया, उद्योत, अन्धेरा ।

४. सूक्ष्म स्थूल—जो देखनेमें नहीं आवे परन्तु अन्य चार इन्द्रियोसे ग्रहण हो मकें । जैसे—हवा, रस, गन्ध, शब्द ।

५. सूक्ष्म—जो स्कन्ध किसी भी इन्द्रियसे ग्रहणमें न आवें । जैसे—तैजस, कार्मण आदि वर्गणाएँ ।

६. सूक्ष्म सूक्ष्म—एक पुद्‌गलका अविभागी परमाणु ।

स्कन्ध अनेक प्रकारके हैं उनमें पाँच प्रकारके स्कन्धोका हमारा सम्बन्ध है ।

१. आहारक वर्गणाओसे—औदारिक, वैक्रियिक, आहारक शरीर बनता है ।

२. भाषा वर्गणाओसे—शब्द बनता है । ३. मनोवर्गणाओसे—द्रव्यमन बनता है । ४. तैजस वर्गणाओंसे—तैजस शरीर (बिजलीका शरीर) बनता है । ५ कार्माण वर्गणाओंसे—आठ कर्ममय कार्मण शरीर बनता है ।

ससारी जीवोके साथ कार्मण और तैजस शरीरका प्रवाहकी अपेक्षा अनादि सम्बन्ध है । नयी वर्गणाएँ आती हैं पुरानी छूटती है इस अपेक्षासे सादि सबध है ।

मुक्त होने पर ये दो शरीर छूटते हैं। जीवित अवस्थामें मनुष्य व तिर्यञ्चोंके दोके सिवाय औदारिक शरीर, नारकी व देवोके दोके सिवाय वैक्रियिक शरीर होता है।

कार्मण शरीरको कारण शरीर भी कहते हैं। क्योंकि इसी शरीरके निमित्तसे जीव संसारके फन्दमें व दुःख-सुखमें पडा है। इस कार्मण शरीरमें कर्मोंका बन्ध कैसे होता है व कैसे रुकता है व छूटता है इसीको बतानेके लिये शेष पाँच तत्व—आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष कहे गये हैं। धर्म और अधर्म द्रव्य अमूर्तीक लोकव्यापी एक-एक द्रव्य है, जीव पुद्गलोंके गमनमें उदासीन कारण धर्म है, ठहरनेमें उदासीन कारण अधर्म है, आकाश सर्व द्रव्योंको स्थान देनेको समर्थ है, अनन्त आकाशके मध्यमें लोकाकाश है जो छः द्रव्यमयी है। काल—कालाणु असख्यात है या काल द्रव्य द्रव्योके परिवर्तनमें मदद देता है।

(३) आस्रव तत्व—इसके दो भेद हैं—भावास्रव, द्रव्यास्रव। जिन आत्माके अशुद्ध परिणामोसे कर्मोंका आना या बन्धके सम्मुखपना होता है उनको भावास्रव कहते हैं तथा कर्म वर्गणाओके आनेको द्रव्यास्रव कहते हैं। भावास्रवके चार मूल भेद हैं—मिथ्यादर्शन, अविरति, कषाय, योग। इसीके ५७ भेद हो जाते हैं।

मिथ्यात्व पाँच + अविरत बारह + कषाय पचीस + योग पन्द्रह = सत्तावन मिथ्यात्व व एकान्त—१ वस्तुमें नित्य, अनित्य, एक, अनेक आदि स्वभाव होने पर भी एक ही मानना अन्यका निषेध करना, २ विपरीत—अधर्मको धर्म मानना जैसे पशुबलि धर्म है, ३. संशय—सत्य, असत्य तत्वमें निश्चय न करना, ४. विनय—सर्व धर्मोंको बिना विचारे समान मानके विनय करना, ५. अज्ञान—तत्वके जाननेमें निरादर।

अविरत १२—पांच इन्द्रिय व मनको वश न रखना व पाँच स्थावर व त्रसकी दया न पालना।

कषाय २५—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादि ४, प्रत्याख्यानावरण क्रोधादि ४, संज्वलन क्रोधादि ४ और नौ नोकषाय—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद।

योग १५—पहले बता चुके हैं।

(४) बन्ध तत्व—जिस समय कर्म आते हैं उसी समय बँधते हैं। बन्ध चार प्रकारका एक ही समयमें होता है। प्रकृति बन्ध—कर्म वर्गणाओमें ज्ञानावरणादि

स्वभाव पडना। प्रदेश बन्ध–किस प्रकृतिके कितने कर्म वर्गणा बंधे। ये दोनो बन्ध मन, वचन, कायके अनुसार होते हैं। स्थितिबन्ध–कर्म कितने कालतक बन्ध अवस्थाको न छोड़ेंगे, उस कालकी मर्यादा–आयु कर्मको छोड़कर सातो ही कर्मोके तीव्र कषायसे अधिक स्थिति व मन्द कषायसे कम स्थिति पड़ती है। नरकायुको तरफसे अधिक व मन्दसे कम, शेष तीन आयुकी मन्दसे अधिक व तीव्रसे कम पड़ती है। अनुभाग बन्ध–तीव्र या मन्द फलदान शक्ति पड़ना। चार घातीय कर्म व आस्रवादि पापरूप अघातीयमें तीव्र कषायसे अधिक व मन्द कषायसे कम अनुभाग पडता है। सातावेदनीय आदि पुण्य कर्मोमें मन्द कषायसे अधिक व तीव्र कषायसे कम अनुभाग पडता है। कर्म स्वय बँधते है, स्वय पक कर फल देते व गिर जाते हैं। आस्रव बन्धके कारण भाव एक ही प्रकारके होते हैं।

(५) संवर तत्त्व—जिन भावोसे कर्म आते है उनको रोकना भाव सवर है। कर्मोंको आने न देना द्रव्य सवर है। भावास्रवके विरोधी भाव सो भाव सवर है। मिथ्यात्वका विरोधी सम्यक्त्व, अविरतिका विरोधी व्रतपालन, कषायका विरोधी वीतरागभाव, योगका विरोधी निष्कम्पभाव। संवरके कारण विशेष भाव हैं— ५ महाव्रत, ५ समिति, ३ गुप्ति, १० उत्तम क्षमादि धर्म, १२ अनित्यादि भावना, २२ परीषह जय, ५ प्रकारके चारित्र।

(६) निर्जरा तत्त्व—कर्म पक कर अपने समय पर झड़ते हैं सो सविपाक निर्जरा है। तपादिके कारण शीघ्र कर्मोंको दूर करना सो अविपाक निर्जरा है। निर्जराका उपाय वीतरागभाव है जो ध्यानसे प्राप्त होता है।

(७) मोक्ष तत्त्व—सर्व कर्मोंसे छूटकर आत्माका अकेले रह जाना सो मुक्ति है। शुद्धात्मा मोक्ष दशामें अपने स्वभावका आनन्द नित्य लेता रहता है।

जितने आकाशको एक पुद्गल अविभागी परमाणु रोकता है उसे प्रदेश कहते हैं। यह एक प्रकारका माप है जिससे छः द्रव्योको मापा जावे तो जो द्रव्य बहुत प्रदेशवाले हैं उनको काय कहते हैं। काल द्रव्यका एक प्रदेश है। असंख्यात कालाणु लोकाकाशमें पृथक्-पृथक् हैं। वे कभी मिलते नहो, इससे कायवान नहीं हैं। जीव द्रव्यके असंख्यातप्रदेश हैं, पुद्गलके स्कन्धकी अपेक्षा संख्यात, असंख्यात, अनन्त प्रदेश हैं। धर्मास्तिकायके असंख्यातप्रदेश होते हैं, अधर्मास्तिकायके भी असंख्यात-

प्रदेश होते है, आकाशके अनन्तप्रदेश होते हैं। इसलिये जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश काय हैं—पञ्चास्तिकाय हैं।

इन सात तत्त्वोंमें व्यवहारनयसे जीव, संवर, निर्जरा, मोक्ष ग्रहण करने योग्य हैं; आस्रव, बन्ध, त्यागने योग्य हैं। निश्चयनयसे एक शुद्धात्मा ही ग्रहण करने योग्य है।

नव पदार्थ या तत्त्वमें एक जीव ही हमें प्राप्त हो ऐसी भावना श्री समय-सारकलशामें की गई है—

एकत्व नियतस्य शुद्धनयता व्याप्तुर्यदस्यात्मन , पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्य पृथक् ।
सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयम् ।
तन्मुक्त्वा नवतत्त्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु न ॥ ६–१ ॥

भावार्थ—शुद्धनयकी अपेक्षा अपने एक स्वभावमें स्थित, अपने गुणोंमें व्याप्त, पूर्ण ज्ञान समूह इस आत्माको अन्य द्रव्योंसे भिन्न अनुभव करना सो ही निश्चयसे सम्यग्दर्शन है। आत्मा भी उतना ही बडा है। इसलिये नवतत्त्वकी कल्पनाको छोड़-कर हमें एक अपना आत्मा ही प्राप्त हो।

---

१५. समय, सुद्ध, सार्थ—ये तीन भाव

१६. समय, सार्थ, ध्रुव—ये तीन भाव

समयं दर्सनं न्यानं, चरनं सुद्ध भावना।
सार्थं सुद्ध चिद्रूपं, तस्य समय सार्थं ध्रुवं ॥ ६३ ॥

अन्वयार्थ—(समय दर्सन न्यान) समय जो आत्मा पदार्थ है वह दर्शन-ज्ञान स्वरूप है (चरन सुद्ध भावना) उसी दर्शन-ज्ञानमयी आत्मामें चलना व उसका ही अनुभव करना यह शुद्ध भावना है (सुद्ध चिद्रूप सार्थं) शुद्ध चैतन्य रूप आत्मा ही परम पदार्थ है (तस्य समय सार्थं ध्रुव) उसी आत्माको ही समय कहते हैं, प्रयोजन-भूत पदार्थ कहते हैं, उसीको ध्रुव अविनाशी निश्चल पदार्थ कहते हैं।

भावार्थ—आत्मा निश्चयसे समय है, अपने स्वरूपमें एक भावसे परिणमन करनेवाला तथा जाननेवाला है। यह अपने ही स्वभावमें रमणशील होनेसे यही स्व समय है जब यह स्वभावमें रमता है तब इसमें शुद्ध तत्त्वकी ही भावना होती है।

स्वभावमें रमणरूप आत्माका परिणमन होना सो ही सार्थक है क्योंकि उस समय निश्चय रत्नत्रयका लाभ है। आप ही सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप हो रहा है, यही एक स्वानुभवमयी मोक्षमार्ग है। यही धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान है, यही कर्मोंका क्षयकारक भाव है। यह आत्मा निश्चयसे समय है, परम पदार्थ परमात्मा है व यही ध्रुव है, सदा एक रूप है, निश्चल है। शुद्धात्मामयी परिणमन होना परमानन्दको प्रदान करता है। द्वादशांग वाणीका सार एक अपने ही शुद्धात्माका अनुभव है। अनादिकालसे अज्ञानीको अनुभूति रागद्वेषमयी मैली हो रही है। इसलिये उसको रागद्वेषका ही मलीन स्वाद आता है, वीतराग स्वरूप निज आत्मीक भावका स्वाद नही आता है। क्योकि इसको यह पता नही चला कि मैं तो एक आत्मा द्रव्य हूँ, परसे भिन्न हूँ। अपने स्वरूपको शुद्ध सिद्धसम जानकर निश्चय हुए बिना अपने स्वरूपमें रमण होना असभव है। जैन सिद्धान्तका सार यही है जो अपने आत्माका ही स्वाद लें। सर्व परसे उदासीन हो जावे।

अतीन्द्रिय आनन्दका अद्‌भुत स्वाद स्वरूप रमणमें आता है। आत्माकी सुन्दरता स्वरूप रहनेमें है, पर समय रूपमें रहना ही अज्ञान है, मोह है, भ्रम है। जिसने अपने घरको पहचान लिया वह अब क्यो दूसरेके घरमें रमण करेगा। धर्म आत्माका स्वभाव है, नित्य स्वभावमे रमण होना ही स्वात्मानुभव है। मुमुक्षुको योग्य है कि शुद्ध निश्चयनयको आश्रय लेकर आत्माको सिद्ध समान अमूर्तीक ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यमय जाने, माने व ऐसा ही निरन्तर मनन करे। भावना करनेसे एकाग्रता प्राप्त होती है। एकाग्रतामे ही स्वानुभव है। निजानन्दका भोग है। यही आस्रवोको रोकनेके लिये दृढ़ आर्गल है। स्वानुभव दशामे मनके विचार, वचनके आलाप व कायका हलन-चलन सर्व बन्द हो जाता है। एक ऐसे अनिर्वचनीय भावमें पहुँच जाता है जहाँ भावना भी बन्द हो जाती है। इसीको अद्वैत अनुभव कहते हैं। आपसे ही आपमें आपके लिये आपमेंसे ही आपको आप ही ध्यावे। इन छः कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरणमें आप ही रहे। कहनेके लिये छः विकल्प है। अद्वैत अनुभवमें षट्कारकका भी विकल्प नही है। इस स्वानुभवमें सर्व चिन्ताएँ डूब जाती है। निर्मल शान्त रसका ही स्वाद आता है। बिना प्रयत्नके सवर, निर्जरा होती हैं। समयसारमें कहा है—

जीवो चरित्तदसणणाणट्ठिदो त हि ससमय जाणे। पुग्गल कम्मुवदसट्ठिद च त जाण परसमय ॥ २॥

भावार्थ—जब यह जीव आपहीका श्रद्धान, ज्ञान व आचरण करता रहता है तब इसको स्वसमय रूप जानो। जब यह पर पुद्गलके उदयके भीतर ठहरता है तब इसे पर समय जानो।

णाणह्मि भावणा खलु कादव्वा दसणे चरित्ते य।
ते पुणु तिण्णि वि आदा, तम्हा कुण भावण आदे॥ ११॥

भावार्थ—भेद रूप अपने ज्ञानमें, दर्शनमें व चारित्रमें भावना करनी चाहिये परन्तु निश्चयसे ये तीनों ही आत्मा हैं इसलिये एक आत्माकी ही भावना करनी चाहिये।

परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी।
तह्मि ठिदा सभावे मुणिणो पावंति णिव्वाण॥ १५८॥

भावार्थ—परमार्थ या उत्तम पदार्थ एक आत्मा है, वह एक साथ अपने आपमे रमण करनेवाला है इसलिये समय है, सर्व नयोके विकल्पोसे अतीत परम शुद्ध है, केवल चेतन्य वस्तु है इससे केवली है, स्वानुभवमें स्थित है इससे मुनि है, ज्ञान स्वरूपसे ज्ञानी है, अपने ही स्वभावमे रहता है इससे स्वभाव रूप है। जो कोई मुनिगण ऐसे आत्माके भीतर स्थिर होकर स्वानुभव करते हैं वे ही निर्वाणको पाते हैं।

मूलाचारमे वट्टकेरस्वामी प्रत्याख्यान अधिकारमें कहते हैं—

ममत्ति परिवज्जामि णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो। आलंबण च मे आदा अवसेसाइ वोसरे॥ ४५॥

भावार्थ—मै सबसे ममता त्यागता हूँ, निर्ममत्वभावसे स्थिर होता हूँ। मैने अपने ही आत्माका आलम्बन लिया है, और सबका त्याग किया है।

---

१७. सम्यक्त्व, वंदना, स्तुति—ये तीन भाव

सम्यक्त्व सुद्ध दृष्टि च, वंदना नित्य सास्वतं।
स्तुतिं सुद्ध द्रव्यस्य, त्रिभंगी दल निरोधनं॥ ६४॥

अन्वयार्थ—(सम्यक्त्व सुद्ध दृष्टि च) शुद्ध आत्माका श्रद्धान सम्यग्दर्शन है (वंदना नित्य सास्वतं) इसी अपने शुद्धात्माको नित्य अविनाशी ध्याना निश्चयसे वन्दना है (स्तुतिं सुद्ध द्रव्यस्य) शुद्ध द्रव्यकी ही व्यवहारसे स्तुति करते हुए निश्चयसे उसी शुद्ध द्रव्यमे तन्मय होना निश्चय स्तुति है (त्रिभंगी दल निरोधनं) सम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन सहित वन्दना, सम्यग्दर्शन सहित स्तुति कर्मास्रवके रोकनेवाले हैं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन संसारका नाश करनेवाला गुण है, जिसको यह गुण प्राप्त हो जाता है वह मानो मोक्षरूप हो हा जाता है, वह सदा अपने शुद्धात्माको उसी तरह कर्म व शरीरादिसे भिन्न देखता है जैसे जलके ऊपर पड़ी हुई चिकनई अलग दिखती है। स्वात्मानुभवकी शक्ति सम्यग्दर्शनसे पैदा हो जाती है। सम्यक्त्व होनेपर फिर कोई जाव दुर्गतिमें नहीं जाता है। सम्यक्त्वके साथमें स्वर्गकी देवायुका या उत्तम मानव आयुका ही बन्ध होता है। जिसने सम्यक्त्व होनेके पहले आयु बन्ध किया हो वह भी पहले नर्कसे और नर्कमे नही जाता या भोगभूमिका पशु या मानव पैदा होता है।

सम्यग्दर्शनके साथ तीर्थंकरादि व पाँच परमेष्ठी आदि महान् आत्माओकी जो वन्दना की जाती है वह यद्यपि शुभोपयोग है, परन्तु सम्यग्दर्शनके साथ होनेसे उससे भी पापोका क्षय होता है। वह वन्दना वीतरागता मिश्रित सराग भाव है। वन्दना व स्तुतिके दो भेद हैं। जहाँ वचन व कायसे शब्द व विनय हो वह तो द्रव्य वन्दना व द्रव्य स्तुति है। जिसकी वन्दना व स्तुति की जावे उसके गुणोको मनमें विराजमान किया जावे वह भाव वन्दना व स्तुति है। भाव सहित द्रव्य वन्दना व स्तुतिकी सफलता है। सिद्धात्माको अपने भावोमें स्थापित करना निश्चय वन्दना है। मस्तक झुकाना, हाथ जोडना, द्रव्य वन्दना है। वचनोसे स्तुति पढ़ना द्रव्य स्तवन है। सिद्धोका शुद्ध स्वरूप मनमें अकित करना भाव स्तुति है। सम्यग्दृष्टी ज्ञानी जीव जब अपना उपयोग स्वात्मानुभवमें नही जोड सकते हैं तब शुद्धात्माओको स्तुति व उनको वन्दना करके उपयोगको शुद्ध भावमें ले जानेकी चेष्टा करते हैं। शुद्धात्माकी तरफ परिणमन होनेसे वन्दना व स्तवन करते हुए बहुत पापोका क्षय होता है। महान् पुरुषोके शरीराश्रित गुणोकी महिमा गाना व्यवहार स्तुति है। केवल आत्माको लक्ष्यमे लेकर आत्मीक गुणोका गाना निश्चय स्तुति है। यही स्तुति सच्ची स्तुति है व शुद्धोपयोगमें पहुँचानेवाली है।

व्यवहार स्तवनका दृष्टान्त यह है—समयसारकलशमे कहा है—

कान्त्यैव स्नपयन्ति ये दशदिशो धाम्ना निरुन्धति ये।
धामोद्दाममहस्विना जनमनो मुष्णन्ति रूपेण ये।
दिव्येन ध्वनिना सुखं श्रवणयो साक्षात्क्षरन्तोऽमृतम्।
वन्द्यास्तेऽष्टसहस्रलक्षणधरास्तीर्थेश्वरा सूरयः ॥ २४-१ ॥

भावार्थ—वे तीर्थंकर महाराज वन्दनीय है, जिनकी शरीरकी कांति दशो

दिशाओमे फैल रही है, जो अपने तेजसे बडे-बडे ज्योतियोके तेजको रोक रहे हैं, जो अपने रूपसे मनुष्योके मनको हरण कर रहे है, जो अपनी दिव्यध्वनिसे कानोमें धर्मामृतका सिंचन कर रहे हैं।

निश्चय स्तुतिका दृष्टान्त यह है—समयसारमें कहा है—

जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया विंति ।। ३७ ।।

भावार्थ—जो कोई मोहको जीत कर ज्ञान स्वभावसे पूर्ण अपने आत्माका अनुभव करता है उसे परमार्थके ज्ञाता जित मोह साधु कहते हैं। इस स्तुतिमें लक्ष्य आत्मा ही पर जाता है यह निश्चय स्तुति है।

श्री समन्तभद्राचार्य स्वयम्भूस्तोत्रमे कहते है—

यस्य च मूर्तिः कनकमयीव स्वस्फुरदाभाकृतपरिवेषा।
वागपि तत्त्वं कथयितुकामा स्यात्पदपूर्वा रमयति साधून् ।। १०७ ।।

भावार्थ—व्यवहार स्तवनका दृष्टान्त—जिस मल्लिनाथ स्वामीकी कनकमयी मूर्ति अपनी शोभासे भामण्डल बना रही है व जिनकी वाणी तत्त्वको कथन करती हुई स्यात् पदसे विभूषित हो साधुओंके मनको रमा रही है।

यस्य च शुक्लं परमतपोऽग्निर्ध्यानमनन्तं दुरितमधाक्षीत्।
तं जिनसिंहं कृतकरणीयं मल्लिमशल्यं शरणमितोऽस्मि ।। ११० ।।

भावार्थ—यह निश्चय स्तुति है—जिस मल्लिनाथ भगवान्ने शुक्लध्यानकी बडी तेज तपरूपी अग्निको जलाकर अनन्त पाप कर्मोंको जला डाला और जिनका आत्मा सिंह समान जिनेन्द्र हो गया, कृतकृत्य हो गया, सर्व शल्यरहित हो गया, ऐसे परमात्मा श्री मल्लिनाथकी शरणमे मैं प्राप्त होता हूँ।

---

१८ पदार्थ, व्यञ्जन, स्वरूप—ये तीन भाव

पदार्थ पद विंदन्ते, विंजन न्यान दृष्टि तं।
स्वरूपं सर्व चिद्रूपं, विंजनं पद विंदकं ।। ६५ ।।

अन्वयार्थ—(पदार्थं पद विंदन्ते) परमात्मा पदार्थसे परमात्माके पदका अनुभव होता है (विंजन न्यान दृष्टि तं) उसका लक्षण या चिह्न शुद्ध ज्ञान व शुद्ध दर्शन है (स्वरूपं सर्व चिद्रूपं) उसका स्वरूप सर्वांग चैतन्यमय है, अमूर्तीक है (विंजन पद विंदकं) ज्ञान दर्शन लक्षणके द्वारा परमात्मा पदार्थका अनुभव होता है।

भावार्थ—नौ पदार्थोंमें जीवनामा पदार्थका अनुभव करना चाहिये। लक्षणसे लक्ष्यको ग्रहण किया जाता है। जीव पदार्थका लक्षण शुद्ध ज्ञान व शुद्ध दर्शन है। यह लक्षण अव्याप्ति, अतिव्याप्ति व असंभव दोषोंसे रहता है। सर्व ही जीवोंका निज गुण ज्ञान दर्शन है। जीवके सिवाय किसी भी अजीवमें वे ज्ञानदर्शन नहीं पाये जाते हैं। यह लक्षण असंभव भी नहीं है स्वयं प्रगट है। हर एक ज्ञानीको अनुभव है कि मैं देखता जानता हूँ। जो स्व परको देखने जाननेवाला है या जो निश्चयसे आपसे आपको देखने जाननेवाला है वही जीव है। उस जीवका सर्वांग स्वरूप चैतन्यमय है। पुद्‌गलमयी उसका स्वरूप नहीं है वह अनन्त गुणपर्यायका धारी होकर भी चैतन्यभावसे सर्व प्रदेशोंमें पूर्ण है। इस तरह वह जीव पदार्थ स्वय परमात्मा, परमेश्वर, जिन, अरहन्त, सिद्ध, निरजन, निर्विकार, वीतरागी, कृतकृत्य, परमानन्दी है वही मैं हूं, ऐसा लक्ष्यमें लेकर अपने जीव पदार्थका ध्यान व अनुभव करके परमानन्दका लाभ लेना चाहिये। कर्म संयोग जनित सर्व पर्यायोंसे वह भिन्न है। अकेले जीव पदार्थका स्वाद लेना ही हितकर है। तब ही सच्चा स्वाद आयेगा। कर्म मिश्रित भावका स्वाद अशुद्ध स्वाद है।

समयसारकलशमें कहा है—

परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावादविरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः।
मम परम विशुद्धिः शुद्धचिन्मात्रमूर्तेर्भवतु समयसार व्याख्ययैवानुभूते.॥ ३-१॥

भावार्थ—यद्यपि निश्चयसे मैं शुद्ध चैतन्यमयी मूर्ति हूँ तो भी मेरी अनुभूति अनादिकालसे पर परणतिको करनेका कारण जो मोह नामकर्म इसके उदयसे रागद्वेषमयी होकर मलीन हो रही थी। मुझे मलीन ही स्वाद आता था। जब मैं समयसारका व्याख्यान करता हूँ। इससे मेरी यह अनुभूति परम शुद्ध हो जावे। मैं शुद्धात्माका ही निर्मल आनन्दमयी स्वाद लूँ ऐसी भावना करता हूँ। और भी कहा है—

वर्णाद्यैः सहितस्तथा विरहितो द्वेधाऽस्त्यजीवो यतो, नामूर्तत्वमुपास्य पश्यति जगज्जीवस्य तत्त्व ततः।
इत्यालोच्य विवेचकैः समुचित नाव्याप्यतिव्यापि वा,
व्यक्त व्यञ्जितजीवतत्त्वमचल चैतन्यमालम्ब्यता ॥ १०-२॥

भावार्थ—अजीव दो प्रकार है—एक पुद्‌गल जो वर्णादिकी मूर्ति रखते हैं। दूसरे धर्माधर्म, आकाश, काल जो वर्णादि रहित अमूर्तीक है। इसलिये जगत्‌के विद्वान् जीवका अमूर्तीक लक्षण मानके नहीं ध्याते हैं। क्योंकि इसमें अतिव्याप्ति आदि दोष होता है। न रागी-द्वेषी लक्षण मानके ध्याते हैं, क्योंकि इसमें अव्याप्ति

दोष आता है। सिद्धोंमें रागद्वेष नहीं है। इसलिये अतिव्याप्ति दोषोसे रहित प्रगट चैतन्यमयी लक्षणको ध्यानमें लेकर जीव तत्त्वका विचार करते हैं इससे जीव तत्त्व स्पष्ट लक्ष्यमें आ जाता है।

शुद्ध निश्चयनयसे अपने आत्माको अभेद, शुद्ध, एक, केवल, निश्चल, ज्ञाता-दृष्टा, परमानन्दी ध्याना चाहिये। यही ध्यान कर्मोंके बन्धनको काटनेवाला है। जो शुद्ध स्वरूपको ध्यावे वही परमात्मा हो जावे। आप ही परमात्मा है, परसे मोह छोड़नेसे ही बन्धन गल जाते है। अपना पद झलक जाता है। जीव पदार्थका ही अनुभव आस्रव निरोधक है।

---

१९. नन्द आनन्द, सहजानन्द सुद्ध—ये तीन भाव

आनन्द नन्द रूवेन, सहजानन्द जिनात्मनं।
सुद्ध स्वरूप तत्त्वानं, नन्त चतुष्टय संजुतं ॥ ६६ ॥

अन्वयार्थ—(आनन्द नन्द रूवेन) **आत्मीक आनन्दमें मगन होना** (सहजानन्द जिनात्मन) **जितेन्द्रिय आत्माके भीतर सहजानन्दका प्रकाश होना** (सुद्ध स्वरूप तत्त्वान नन्त चतुष्टय सजुत) **इसीके कारण शुद्ध स्वरूप जो आत्माका तत्त्व है सो प्रगट होता है, जहाँ अनन्त चतुष्टय प्रकाशमान हो जाते हैं।**

भावार्थ—आनन्दसे आनन्दकी वृद्धि होती है, जैसे दोयजका चन्द्रमा स्वयं पूर्णमासीका चन्द्र हो जाता है। जब सम्यग्दर्शन प्रगट होता है तब स्वानुभवके जागृत होनेसे आत्मानन्दमें मगनता होती है। चौथे, पाँचवें, छठें गुणस्थानमें उपयोग प्रमाद सहित हो जाता है तब आत्मानुभव हर समय नही रहता है। साधकको बुद्धिपूर्वक निमित्त मिलाकर उपयोगको शुद्धात्माके अनुभवमें जोड़ना पड़ता है। इस प्रकार स्वात्मानन्दमें मगन हो जानेसे कर्मकी निर्जरा होती है, फिर अप्रमत्त गुणस्थानमें होकर क्षीणमोह बारहवें गुणस्थान तक सहजानन्दका प्रकाश रहता है। बिना प्रयत्न के सहज ही शुद्ध ध्यान होता है व सहज ही में आनन्दका स्वाद आता है। श्रेणी पथ पर चलनेसे विशेष करके क्षपकश्रेणी पर चलनेसे विशेष कर्मोंका क्षय होता है। इस कर्मके क्षयमें सहजानन्दका भोग कारण है इसीसे चारो घातीय कर्मोंका क्षय होकर केवलज्ञान प्रगट हो जाता है। शुद्धात्माका प्रत्यक्षरूप झलक जाता है। अरहन्त पर-

मात्माका पद हो जाता है तब अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, अनन्त चतुष्टय प्रगट हो जाते हैं ।

यह अरहन्त तेरहवें सयोग, चौदहवें अयोग गुणस्थानमें होते हैं। यहाँके शुद्ध भावोसे भी कर्मोंकी निर्जरा होती है । आयुके अन्तमें शेष अघातीय कर्म भी क्षय हो जाते हैं और सिद्धपद जो अपना स्वभाव है सो प्रगट हो जाता है। श्री तारणस्वामी का यह अभिप्राय है, जब आत्मानन्दका स्वाद आवे तब ही आत्मानुभव या आत्म-ध्यान या रत्नत्रयकी एकतारूप मोक्षमार्ग समझना चाहिये। उसी समय आत्मतल्ली-नतासे जो वीतरागता होती है उसीसे कर्मोंका क्षय होता है तथा वह आनन्द जितनी जितनी ज्ञानकी व वीतरागताकी वृद्धि होती है उतना-उतना बढ़ता जाता है। सयोग-केवली अरहन्तके अनन्त सुख रूप हो जाता है, फिर वह कभी मिटता नहीं है, सदा बना रहता है । वास्तवमें जैनधर्म आनन्दमयी है । वर्तमानमें भी आराधकको आनन्द आता है व उसका अन्तिम फल भी अनन्त सुख है ।

इष्टोपदेशमें कहा है—

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहिःस्थिते । जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिनः ।। ४७ ।।
आनन्दो निर्दहत्युद्ध कर्मेन्धनमनारत । न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतन ।। ४८ ।।

भावार्थ—जब योगी योगबलसे आत्माके स्वरूपमें तन्मय हो जाता है व सर्व व्यवहारके विकल्पोसे रहित हो जाता है तब कोई अद्‌भुत आनन्दका स्वाद आता है । यही आनन्द निरन्तर कर्मोंके ईंधनको प्रचुरतासे जलाता है । उस समय योगीको बाहर दुःखोकी तरफ लक्ष्य नही रहता है। इसलिये ध्यानमें कोई खेद अनु-भवमें नही आता है । समयसारमें कहा है—

एदह्मि रदो णिच्चं सतुट्ठो होहि णिच्चमेदह्मि । एदेण होहि तित्तो होदि तुह उत्तम सोक्ख ।। २१९ ।।

भावार्थ—आत्मा हीमें नित्य रत रहो, आत्मामे ही नित्य सन्तोष मानो, आत्मामें ही नित्य तृप्तिको पाओ तो उत्तम सुख प्राप्त होगा । योगसारमें योगेन्द्रदेव कहते हैं—

वज्जिय सयलवियप्पह परमसमाहि लहंति । ज वेददि साणद फुडु सो सिवसुक्ख भणति ।। ९६ ।।

भावार्थ—जो सर्व विकल्पोंको त्याग कर परम समाधिका लाभ करते हैं वे जिस आनन्दको भोगते हैं उसीको मोक्षका सुख कहते हैं । तत्त्वज्ञानतरंगिणीमें ज्ञान-भूषण भट्टारक कहते हैं—

युगपज्जायते कर्म मोचन तात्त्विक सुख । तयाच्च शुद्ध चिद्रूपे निर्विकल्पस्य योगिन ।। ५-१२ ।।

भावार्थ—जब योगी विकल्प रहित होकर शुद्ध चैतन्यके स्वभावमें लय हो जाता है तब सच्चा सुख भी होता है, उसी समय कर्मकी निर्जरा भी होती है। ज्ञानार्णवमें शुभचन्द्रजी कहते हैं—

तस्यैवाविचल सौख्य तस्यैव पदमव्ययम् । तस्यैव वन्धविश्लेष समत्व यस्य योगिन. ॥ १२-१४ ॥

भावार्थ—जो योगी समभावसे लीन होता है उसीके निश्चल सुख है। उसीको अविनाशी पद होता है उसीके कर्मबन्धका क्षय होता है।

---

२०. व्यवहार, निश्चय, ध्रुव—ये तीन भाव

विवहार दर्सनं न्यानं, चारित्रं सुद्ध दृष्टिनः।
निश्चये सुद्ध बुद्धस्य, दिष्टते स्वात्म दर्सनं ॥ ६७ ॥
आचरनं दर्सनं सारं, न्यानस्य चरन वीर्य जं।
तपाचार चारित्रं, दर्सनं सुद्धात्मनः ॥ ६८ ॥
एतत्तु भावनं कृत्वा, त्रिभंगी दल निरोधनं।
सुद्धात्मा स्वस्वरूपेन, उक्तं च केवली जिनं ॥ ६९ ॥
जिनवानी हृदयं चिंते, जिन उक्तं जिनागमे।
भव्यात्मा भावये नित्यं, पंथं मुक्ति श्रियं ध्रुवं ॥ ७० ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध दृष्टिन) सम्यग्दृष्टी जीवके भीतर या शुद्धात्माके अनुभवीके भीतर (विवहार) व्यवहार या भेददृष्टिसे (दर्सन न्यान चारित्र) सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र ये तीन गुण दीखते हैं (निश्चये) निश्चय नय या अभेददृष्टिसे (सुद्ध बुद्धस्य स्वात्म दर्सन दिष्टते) शुद्ध तत्त्वके अनुभवीके भीतर एक स्वात्मानुभव या स्वात्मदर्शन ही दिखलाई पडता है (दर्सन आचरन सार) दर्शनाचार सार है (न्यानस्य चरन) इसी तरह ज्ञानाचार है (वीर्य ज) इसी तरह वीर्याचार है (तपाचार चारित्र) इसी तरह तपाचार है व चारित्राचार है। व्यवहारसे ये पॉच प्रकार आचार हैं, निश्चयसे (सुद्धात्मन दर्सन) एक शुद्धात्माका दर्शन या अनुभव सार है (एतत्तु भावन कृत्वा) इस प्रकार भावना करते-करते (त्रिभगी दल निरोधन) ऊपर कहे हुए सर्व आस्रव त्रिभगीके दल रुक जाते हैं (सुद्धात्मा स्वस्वरूपेन) शुद्धात्मा अपने स्वरूपमें ठहर जाता

है (उक्त च केवली जिन) ऐसा जिनेन्द्र केवलज्ञानीने कहा है (जिनवानी हृदय चिंते) जिनवाणीको मनमें चिंतवन करना चाहिये (जिनागमे जिन उक्त) जिनागममें जिनेन्द्र भगवान्का ही कथन है (भव्यात्मा मुक्ति श्रिय पथ ध्रुव नित्य भावये) भव्य जीवको उचित है कि वह मोक्ष स्त्रीके इस निश्चय या ध्रुव मार्गकी नित्य भावना करें।

भावार्थ—इन चार गाथाओंमें यह बताया है कि मोक्षका मार्ग केवल स्वात्मानुभव है या स्वात्मदर्शन है जो अनुभवगम्य है। जहाँ नय, निक्षेप, प्रमाणका कोई विचार नहीं है वह निश्चय व्यवहार दोनोसे परे है, इसलिये वही ध्रुव है व स्थिर है। उसकी साक्षात् प्राप्तिके लिये निश्चय नयसे आत्माके शुद्ध स्वरूपका मनन है। इस निश्चयका भी निमित्त साधक भेदरूप व्यवहार है।

व्यवहारमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र मोक्षका मार्ग है, निश्चयसे एक अपना आत्मा ही है। ऐसा ही श्री नेमिचन्द्रजी महाराजने द्रव्यसंग्रहमें कहा है—

सम्मद्दसणणाण चरणं मोक्खस्स कारण जाणे।
ववहारा णिच्चयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा ॥ ३९ ॥
रयणत्तय ण वट्टइ अप्पाण मुयत्तु अण्णदवियम्हि।
तम्हा तत्तियमइओ होदि हु मोक्खस्स कारण आदा ॥ ४० ॥

भावार्थ—व्यवहार नयसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, मोक्षका मार्ग है। निश्चयसे इन तीनोसे पूर्ण अपना आत्मा ही मोक्षमार्ग है। रत्नत्रय आत्मा द्रव्यको छोड़कर और किसी पुद्गलादि द्रव्यमें नही रहते हैं इसलिये रत्नत्रयमयी आत्मा ही मोक्षका कारण है। व्यवहार नयसे ही साधुके लिये पाँच प्रकारका आचार मोक्षका साधन बताया है, क्योंकि यह स्वात्मानुभवकी प्राप्तिमे निमित्त कारण ह।

१. दर्शनाचार—सम्यग्दर्शनका आचार यह है कि आठ अग सहित तत्त्वोकी श्रद्धाको दृढ रक्खें व श्रद्धापूर्वक आचरण करें।

वे आठ अंग हैं—(१) निःशंकित अग—तत्त्वोमे शका न रखना तथा निर्भय रहना। इस लोक भय, परलोक भय, वेदना भय, अरक्षा भय, अगुप्ति भय, मरण भय व अकस्मात् भय न रखना। प्रयत्न यथायोग्य करते हुए कर्मोंके उदय पर व आत्माके अजर-अमर स्वरूप पर दृढ रहना। (२) निःकांक्षित अग—पराधीन अतृप्तिकारक विषय सुखमें सुखपना न मानना, अतीन्द्रिय सुखको ही सुख जानना, भोगोमें आसक्त न होना। चारित्र मोहके उदयसे गृहस्थके भोगादि भोगने पड़ते है। गृहस्थी

उनको कर्मोदयका रोग जानकर त्यागबुद्धि रखता है, सम सुखकी ही भावना करता है। (३) निर्विचिकित्सित अंग--किसीको दुःखी रोगी देखकर घृणा नहीं करता है, कर्मोंका उदय विचार कर दयाभाव रखता है। (४) अमूढदृष्टि अंग—मूढतासे देखादेखी कोई भी अधर्मको धर्म नही मानता है, वीतराग विज्ञानको या उसके साधक कार्यको ही धर्म जानता है। (५) उपगूहन अंग या उपबृंहन अंग—अपने गुणोंको घटाता है, दोषोंको घटाता है, पराई निन्दाके भाव नही रखता है। (६) स्थितिकरण अंग— आपको व दूसरोको मोक्षमार्ग पर स्थिर रखता है। (७) वात्सल्य अंग--धर्मात्माओं-से गौ वत्सके समान प्रीति रखता है, उनके काममें सहाई होता है (८) प्रभावना अंग— जैनधर्मकी उन्नतिका उपाय करता है व जैनधर्ममें आरूढ़ कर जीवोका कल्याण करता है। इन आठ अंगोका पालन करना ही दर्शनाचार है।

२. ज्ञानाचार--ज्ञानके बढ़ानेका प्रयत्न करना। इसके भी आठ अंग है—

१. कालाध्ययन--ठीक उचित समय पर जिनवाणीको पढ़ना, २. शब्द शुद्धि—शब्दोको शुद्ध पढ़ना, ३. अर्थ शुद्धि—शब्दोका अर्थ ठीक करना, ४. उभय शुद्धि—शब्द व अर्थ दोनो शुद्ध पढ़ना, ५ विनय—बड़े आदरसे पढ़ना, ६. बहु मान—बहुत सन्मानके साथ पढना, ७ उवधान—धारण करते हुए पढना, ८ अनिह्नव—अपने ज्ञानको व गुरुको न छिपाना। इन आठ बातोको पालनेसे ज्ञानका आराधन भले प्रकार होता है।

३ चारित्राचार--साधुके चारित्रको उत्तम प्रकारसे पालना। इसके तेरह भेद है। ५ महाव्रत--अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग, ५ समिति—१ ईर्या (देखके चलना), भाषा (शुद्ध बाणी बोलना), एषणा (शुद्ध आहार लेना), आदाननिक्षेपण (शास्त्रादि देखके रखना उठाना), प्रतिष्ठापना (मलमूत्र निर्जन्तु भूमि पर करना), ३ गुप्ति—मन, वचन, कायको सम्हालना, धर्ममार्गमें उपयुक्त रखना।

४ तपाचार—तपको भले प्रकार पालना। इसके बारह भेद हैं: छः बाहरी तप—१ अनशन (उपवास), २. अवमोदर्य (भूखसे कम खाना), ३ वृत्तिपरिसंख्यान—(भिक्षाको जाते हुए नियम लेना), ४. रस परित्याग—(दूध, दही, घी, तेल, लवण, मिष्ट रस इनमेंसे त्यागना) ५. विविक्तशयनासन—(एकान्तमे शयन आसन करना), ६ कायक्लेश—(कायका सुख या स्वभाव मेटना)।

छः अन्तरग तप---१. प्रायश्चित (दोषोको शोधना), २. विनय (रत्नत्रयमें

व धारकोंमें आदरभाव), ३. वैय्यावृत्य (धर्मात्माओंकी सेवा), ४. स्वाध्याय (स्वस्वरूपके ज्ञानका मनन), ५. व्युत्सर्ग (ममताका त्याग), ६. ध्यान । इन तपोंके कारण इच्छा निरोध होकर उपयोग ध्यानके सम्मुख होता है ।

५. वीर्याचार—आत्माके बलको प्रगट करके ऊपरके चारो आचारोंको पालना, आलसी न होना, उत्साही रहना ।

जिनवाणीका भले प्रकार अभ्यास करके पाँचो प्रकारके आचरणको भले प्रकार समझ लेना चाहिये । व्यवहार पाँच प्रकारके आचरणके द्वारा निश्चय चारित्र पर आरूढ़ होनेका उपाय रखना चाहिये । निश्चयचारित्र स्वात्मानुभव ही है । वास्तवमें आप ही साधन है, आप ही साध्य है, आपसे ही आत्मा आप ही पवित्र होता है । ज्ञानार्णवमें कहा है—

आत्मनोवात्मनात्माय स्वयमेवानुभूयते । अतोऽन्यत्रैव मा ज्ञातु प्रयास कार्यनिष्फल ॥ ४१-३२ ॥

भावार्थ—यह आत्मा आत्मामें ही आत्माके द्वारा स्वयमेव अनुभव किया जाता है, आत्माको छोड़कर अपने स्थानमें आत्माके जाननेका खेद ह सो निष्फल ही है ।

आत्मार्थं श्रय मुञ्च मोहगहन मित्र विवेक कुरु, वैराग्य भज भावयस्व नियत भेद शरीरात्मनो ।
धर्म्यध्यानसुधासमुद्रकुहरे कृत्वावगाह पर, पश्यानन्तसुखस्वभावकलित मुक्तेर्मुखाम्भोरुहम् ॥२-४२॥

भावार्थ—हे आत्मन् ! तू आत्मारूपी पदार्थका ही आश्रय कर, मोहरूपी भयानक वनको छोड, विवेकको मित्र बना, वैराग्यको भज, निश्चयसे शरीर और आत्माके भेदकी भावना कर । इस तरह धर्मध्यानरूपी अमृतके समुद्रके मध्यमें अवगाहन करके अनन्त सुखसे पूर्ण मुक्तिरूपी स्त्रीके मुखकमलको देख । मोक्षपाहुड़में श्री कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं—

जो इच्छइ णिस्सरिदु ससारमहण्णवस्स रुद्दस्स । कम्मिधणाण डहण सो झायइ अप्पय सुद्ध ॥ २६ ॥

भावार्थ—जो कोई महात्मा भयानक ससाररूपी महासमुद्रसे निकलना चाहता है उसे उचित है कि कर्मरूपी इंधनको जलानेके लिये अपने शुद्धात्माको ध्यावे ।

अन्तिम गाथा

जिन उत्तं सुद्ध तत्वार्थं, सुद्ध सम्यक्दर्सनं ।
किंचित् भाव उवस्सं च, जिन तारन मुक्ति कारनं ॥ ७१ ॥

अन्वयार्थ—(जिन उत्त सुद्ध तत्वार्थं) **जिनेन्द्र भगवान्ने शुद्ध तत्त्वके स्वरूपको कहा है** (सुद्ध सम्यक्‌दर्सन) **व शुद्ध सम्यग्दर्शनको बताया है** (जिन तारन मुक्ति कारन किंचित् भाव उवम्स न) **श्री जिन तारणस्वामीने मोक्षके लाभके लिये कुछ थोड़ा-सा उपदेश किया है ।**

भावार्थ—**श्री जिन तारणस्वामीने जिनवाणीमें अपनी गाढ़ श्रद्धा प्रगट की है व यह झलकाया है कि जो कुछ मैंने लिखा है वह जिनागमके अनुसार लिखा है । जिनवाणीमें शुद्धात्मानुभवको शुद्ध सम्यग्दर्शन कहा है यही साक्षात् मोक्षका उपाय है । जो इस तत्त्वका अनुभव करेंगे वे मोक्षके भागी होंगे ।**

इति श्री त्रिभगीसार ग्रन्थ जिन तारन विरचित समउत्पन्नता ।

---

५७ आस्रव त्रिभंगी गुणस्थानापेक्षया

कर्मोंके आस्रवके कारण मूल भाव चार है—मिथ्यात्व, अविरत, कषाय, योग ।

५ मिथ्यात्व—एकान्त, विपरीत, सशय, अज्ञान, विनय ।

१२ अविरत—पाँच इन्द्रिय व मनको वश न करना, छ· कायोकी दया न पालनी ।

२५ कषाय—चार अनन्तानुबन्धी, चार अप्रत्याख्यान, चार प्रत्याख्यान, चार सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ । ऐसे १६ कषाय और ९ नोकषाय—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पु वेद, नपु सकवेद ।

१५ योग—सत्य मन, असत्य मन, उभय मन, अनुभय मन ।

= ४ मन—सत्य वचन, असत्य वचन, उभय वचन, अनुभय वचन ।

= ४ वचन—औदारिक औदारिक मिश्र, वैक्रियिक वैक्रियिक मिश्र, आहारक आहारक मिश्र, कार्मण ।

= ७ काय ।

१५

५७ आस्रव भाव

गुणस्थानापेक्षा विभाग

गुणस्थान नाम	आस्रवाभाव	कौन ?	आस्रव कितने	आस्रव व्युच्छित्ति =आस्रव आगे नही	कौन ?
१ मिथ्यात्व	२	आहारक, आहारक मिश्र	५५	५	५ मिथ्यात्व भाव आगे नही
२ सासादन	७	५ मिथ्यात्व + २ आहारक	५०	४	४ अनतानुबधी कषाय
३ मिश्र	१४	११ + औदारिक मिश्र, कार्मण, वैक्रियिक मिश्र	४३	०	
४ अविरत स०	११	५ मिथ्यात्व + ४ अ०के० + २ आहा०	४६	९	औदारिक मिश्र, वैक्रियिक मिश्र कार्मण, ४ अप्र० कषाय + वैक्रियिक त्रस अविरत = ९
५ देशविरत	२०	११ + ९	३७	१५	४ प्र० क + ११ अविरत
६ प्रमत्त	३३	२० + १५ – आहारक २ = ३३	२४	२	आहारक, आहारक मिश्र
७ अप्रमत्त	३५	३३ + २	२२	०	
८ अपूर्व०	३५	.	२२	६	हास्यादि ६ नोकषाय
९ अनिवृत्ति०	४१	३५ + ६	१६	६	३ वेद + ३ कषाय लोभ विना
१० सूक्ष्म०	४७	४१ + ६	१०	१	लोभ
११ उपशान्त मोह	४८	४७ + १	९	०	
१२ क्षीण मोह	४८		९	४	असत्य, उभय मन वचनके ४
१३ सयोगकेवली	५०	५२–औदारिक मिश्र व कार्मण	७	७	२ मन + २ वचन + ३ काय औदारिक २ व कार्मण
१४ अयोगकेवली	५७	०	०	०	

हिन्दी टीकाकारकी प्रशस्ति

दोहा

मङ्गल श्री अरहन्त है, मङ्गल सिद्ध महान। आचारज उवझाय मुनि, मङ्गलमय सुखदान ॥ १ ॥
युक्त प्रांत लखनौ नगर, अग्रवाल कुल जान। मङ्गलसैन महा गुणी, जिनधर्मी मतिमान ॥ २ ॥
जिन सुत मक्खनलालजो, गृही धर्म लवलीन। तृतीय पुत्र सीतल यही जैनागम रुचि कीन ॥ ३ ॥
विक्रम उन्निस पैतिसे, जन्म सु कार्तिक मास। बत्तिस वय अनुमानमे, घरसे भये उदास ॥ ४ ॥
श्रावक धर्म सम्हालते, विहरे भारत ग्राम। उन्निससै तैरानवे, दाहोदे विश्राम ॥ ५ ॥
शत घर जैन दिगम्बरी, दसा हूमड जाति। त्रय मदिर उत्तम लसै, शिखरबद बहु भाति ॥ ६ ॥
नशिया लसत सुहावनी, शाला बाला बाल। सतोषचद जीतमल, लूणजी चुन्नीलाल ॥ ७ ॥
सूरजमल और राजमल, उच्छवलाल सुजान। पन्नालाल चतुर्भुज, आदि धर्मिजन जान ॥ ८ ॥
सुखसे वर्षा कालमे, ठहरा शाला धर्म। ग्रन्थ कियो पूरण यहा, मगल दायक पर्म ॥ ९ ॥
वीर चौवीस त्रेसठे, आश्विन सुदि छठ जान। रवि दिन टीका पूर्ण को, घर मनमे जिन ध्यान ॥ १० ॥
तारण स्वामी बहुगुणी, श्री जिनके सत भक्त। सार त्रिभगी ग्रंथमे, लिखो तत्त्व परमत्थ ॥ ११ ॥
स्वामी चरण प्रसादसे, भाव शब्द पहचान। अल्प बुद्धिसे लिख दियो, होवे जन कल्याण ॥ १२ ॥
विद्वानोसे प्रार्थना, भूल चूक जो होय। क्षमा करे सोधे तुरत, तत्त्वसार अवलोय ॥ १३ ॥

दाहोद (पचमहल)
१०-१०-१९३७

ब्रह्मचारी सीतल

आध्यात्मिक चौबीस ठाणा टीका

[अन्वयार्थ, भावार्थ और विशेषार्थ सहित]

श्री तारणतरण स्वामी विरचित

चौबीस ठाणा टीका

प्रथम अध्याय

मंगल अर्हंत् सिद्ध मुनि, जिन भाषित जिनधर्म।
लोकोत्तम रक्षक परम, नमहुं कटैं सब कर्म ॥ १ ॥

ॐ उवन उवन विंद विंद भवनं, विन्यान विनयं सुयं।
उत्पन्नंतानन्त सुयं च सुरयं, सुद्धं च सुद्धात्मनं ॥
उवन उवन सुभाव मनस्य ममलं, मय मूर्ति न्यानं सुयं।
लोकालोक सुयं सुरं च सुरयं, सुन्नं सहावं सुरं ॥ १ ॥

अन्वयार्थ—(ॐ उवन उवन विंद विंद भवन) ॐ मंत्र द्वारा प्रकाशित परमात्मा ज्ञानमयी है व ज्ञानमें रमण कर रहे हैं (विन्यान विनय सुय) जो स्वयं आप अपने ज्ञानकी विनय कर रहे हैं अर्थात् ज्ञानाराधनमें तत्पर हैं (उत्पन्नतानंत सुय च सुरय) जहाँ अनन्तानन्त प्रकाश धारी ज्ञान सूर्य स्वयं उत्पन्न हो रहा है (सुद्ध च सुद्धात्मन) जो कर्म रहित शुद्ध आत्मा है (उवन उवन सुभाव मनस्य ममल) जहाँ स्वभावका प्रकाश है व जहाँ शुद्धोपयोग है (मय मूर्ति न्यान सुय) जो ज्ञान मूर्ति है, स्वयं ज्ञान स्वरूप है (लोकालोक सुय सुर च सुरय) लोकालोकको दिखानेके लिये स्वयं सूर्य हैं (सुन्न सहाव सुर) वे सर्व पर भावोंसे शून्य स्वभावधारी हैं व परम सूर्य हैं।

भावार्थ—इसमें ॐ शब्द द्वारा श्री अरहन्त परमात्माका स्मरण किया गया है जो केवलज्ञानमयी वीतराग स्वभावमें है व स्वानुभवमें तत्पर है।

मनुव मन उववन्न उवन उवनं, विंद्स्य त्रितियं सुयं।
आचरनं तं न्यान सुद्ध विमलं, दर्स च अदरसं सुयं ॥

दर्सं नन्त नन्त सुद्ध विमलं, आचर्नं दर्सं सुयं।
मननं तं विसेष सुद्ध विमलं, परमप्प परमं ध्रुवं ॥ २ ॥

अन्वयार्थ—(मनुव मन उववन्न उवन उवन) मनके द्वारा शुक्लध्यानका मनन करनेसे जहाँ केवलज्ञानका उदय हो गया है (विंदस्य त्रितिय सुय) जो तीसरा ज्ञान नेत्र स्वयं प्रकाशित होता है (आचरन त न्यान सुद्ध विमल) वह परमात्मा निर्मल शुद्ध ज्ञानमें रमण कर रहे हैं (दर्सं च अदरस सुय) उन्होने स्वयं ही आत्माके दर्शनको देख लिया है (दर्सं नन्त नन्त सुद्ध विमल) वहाँ शुद्ध आचरण रहित अनन्त दर्शन प्रकाशित है (आचर्न दर्सं सुय) वे स्वय अपने दर्शन गुणमें आचरण कर रहे हैं (मनन त विसेप सुद्ध विमल) वहाँ शुद्ध निर्विकार शुद्धोपयोग है (परमप्प परम ध्रुव) वे ही अविनाशी उत्तम परमात्मा है।

भावार्थ—अरहन्त परमात्माके अनन्त ज्ञान व अनन्त दर्शन गुण हैं, वे अपने ही ज्ञान दर्शनमें ही रमण कर रहे हैं।

आचरनं तं मान सुयं च सुरयं, विंदस्य रमनं परं।
न्यानं न्यान विन्यान न्यान ममलं, अंतर सुरं अंतरं ॥
विंद त्रितिय त्रिसेष सुयं च रमनं, सद्भाव भावं सुरं।
संसारं सुरयंति सहस रवनं, आचर्नं न्यानं परं ॥ ३ ॥

अन्वयार्थ—(आचरन त मान सुय च सुरय) वह केवलज्ञान प्रमाण स्वयं सूर्यके समान आप ही शोभायमान है (विंदस्य रमन पर) वहाँ उत्कृष्टपने ज्ञानमें ही रमण है (न्यान न्यान विन्यान न्यान ममल) वह निर्मल ज्ञान परम विज्ञान है जो सूक्ष्मसे सूक्ष्म पर्यायको जानता है (अतर सुर अतर) वह अन्तरंगमें प्रकाशित सूर्य है (विंद त्रितिय विसेष सुय च रमन) वह तीसरा ज्ञान नेत्र है जो आपमें रमण कर रहा है (सद्भाव भाव सुर) वह स्वभावसे प्रकाशित सूर्य है (ससार सुरयति सहस रवन) हजार किरणधारी सांसारिक सूर्य है (आचर्न न्यान पर) वह ज्ञान उत्कृष्ट सूर्य है आपमें ही आचरण कर रहा है।

भावार्थ—यहाँ भी केवलज्ञानका ही माहात्म्य है।

उवनं उवन स विंद विंद भवनं विन्यान न्यानं मयं।
उत्पन्नं उववन्न उवन उवनं, उत्पन्नं श्रियं सास्वतं ॥

उत्पन्नं हिय हेय एय ममलं, हितकारं श्रीयं सुरं।
उत्पन्न सहयार रंज रमनं, सहयार श्रीयं परं ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ—(उवन उवन स विंद विंद भवन) **स्वानुभवमें परिणमन करता हुआ प्रकाशका उदय हो रहा है** (विन्यान न्यान मय) **यह केवलज्ञान प्रमाण है** (उत्पन्न उववन्न उवन उवन) **जो कुछ प्रकाश झलकना था सो झलक गया है कोई अन्धकार नहीं है** (उत्पन्न श्रिय सास्वत) **अविनाशी ज्ञान-लक्ष्मीका उदय हो गया** है (उत्पन्न हिय हेय एय ममल) **उस शुद्ध ज्ञानमें उपादेय हेय व ज्ञेय सब झलक रहा है। क्या ग्रहण करने योग्य है, क्या त्यागने योग्य है, क्या जानने योग्य है** (हितकार श्रीय सुर) **यह सूर्यके समान हितकारी ज्ञानका ऐश्वर्य है** (उत्पन्न सहयार रज रमन) **इसीकी सहायतासे आनन्दमें रमण हो रहा है** (सहयार श्रीय पर) **यह आत्माका हितकारी ईश्वर स्वरूप ज्ञान है।**

भावार्थ—केवलज्ञानका माहात्म्य है कि उसमें कोई आवरण नहीं है, वह अविनाशी है, सर्व हेय, उपादेय, ज्ञेय तत्वोंको बतानेवाला है। यह स्वानुभव रूप है, परमानन्दमय है।

उत्पन्नं तं न्यान नन्त विमलं, पयं च पद विंदं सुरं।
उत्पन्नं तं दिष्ट इष्ट ममलं, सब्दं असब्दं सुरं ॥
उत्पन्नं उत्पन्न प्रान ममलं, इन्द्री अतिन्द्री सुरं।
उत्पन्नं नन्त विसेष भाव सहजं, सहजं सहावं परं ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ—(उत्पन्न त न्यान नत विमल) **निर्मल अनन्तज्ञान पैदा हो गया है** (पय च पद विंद सुर) **जो प्रत्येक पदमें स्वानुभव रूप है व सूर्यके समान है** (उत्पन्न त दिष्ट इष्ट ममल) **निर्मल प्रिय अनन्तदर्शनका प्रकाश हो गया है** (सब्द असब्द सुर) **उस केवलज्ञानीके जो शब्द प्रगट होता है वह शब्द रहित सूर्यसम ज्ञानको ही बतानेवाला है** (उत्पन्न उत्पन्न प्रान ममल) **अरहंत भगवानके सुख, सत्ता, चैतन्य, बोध इन शुद्ध आत्मीक प्राणोंका विकास हो गया है** (इन्द्री अतिन्द्री सुर) **केवलीके अतीन्द्रिय ज्ञान सूर्यसम प्रगट है, ज्ञान ही इन्द्रिय है और स्पर्शनादि पाँच इन्द्रियोंकी सहायता नहीं है** (उत्पन्न नत विसेष भाव सहज) **केवलीके सहज स्वाभाविक अनन्त-**

शक्तिधारी विशेषभावकी शुद्धि प्रगट है (सहजं सहाव पर) अरहन्तका आत्मा सहज स्वरूपमें है व परम उत्कृष्ट है ।

भावार्थ—यहाँ भी अरहन्त भगवान्‌की स्तुति है ।

उत्पन्नं गय इंद्रि काय रवनं, जोगं च वेयं सुरं ।
उववन्नं कषाइ न्यान ममलं, दर्सं अदर्सं परं ॥
दंसन संजम लेस्य भव्य भवनं, भयं सि विलयं परं ।
सम्मत्तं सहकार नंत ममलं, सैनी असयनी सुरं ॥ ६ ॥
आहारं गुनठान न्यान ममलं, जीवस्य पज्जय परं ।
मन विगयं तं नंत नंत चपलं, कम्मस्य रमनं परं ॥
ज्ञानं चि पच्चय विहं च रवनं, जायं कुल कोटि सुरं ।
सुर विंजन संजोय ऐत वैन ममलं, चौवीसठाणं सुरं ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ—(उत्पन्न गय इद्रि काय रवन) केवली भगवान्‌के मनुष्यगति उत्पन्न हो चुकी है । पाँच इन्द्रियाँ हैं, त्रस काय सुन्दर है (जोग च वेय सुर) मन, वचन, कायके १५ योगोंमेंसे सत्य व अनुभय मन, सत्य अनुभय वचन, औदारिक काय, औदारिक मिश्रकाय, कार्माण काय ऐसे सात योग हैं । वेद तीनो नही हैं ज्ञानका ही वेद है, काय वेद नही है (उववन्न कषाइ न्यान ममल) कषाय चार या पच्चीस पहले थे अब ज्ञान कषाय रहित निर्मल है, मात्र एक केवलज्ञान है (दर्सं अदर्स पर) जिस ज्ञानसे अतीन्द्रिय उत्कृष्ट आत्माको देख रहे हैं (दसन सजम लेस्य भव्य भवन) चार दर्शनमेंसे केवलीके अनन्त दर्शन है, सात सयममेंसे एक यथाख्यात संयम है, छः लेश्यामेसे एक शुक्ल लेश्या है, भव्य भावका व्यवहार है (भय सि विलय परं) केवलज्ञानीके कोई भय नही रहा । वे परमात्मा हो गए (सम्मत्त सहकार नन्त ममल) छः सम्यक्त्वमेंसे क्षायिक अनन्त शुद्ध सम्यक्त्व परम सहकारी है (सैनी असयनी सुर) सैनी असैनीसे रहित ये निर्मल ज्ञान सूर्य हैं (आहार गुनठान न्यान ममल) सयोग गुणस्थानमे केवली आहारक है, कर्म नोकर्म ग्रहण करते है इसतरह चौदह मार्गणाओके स्थान हे । गुणस्थान तेरहवां सयोगकेवली जिन शुद्ध ज्ञानमय है यह पन्द्रहवा स्थान है (जीवस्य पजय पर) सोलहवा स्थान जीव समास है, केवली पर्याप्त पञ्चेन्द्रिय सैनी हैं । १७ वा स्थान पर्याप्ति है केवली पर्याप्त है । १८ वां स्थान प्राण है । केवलीके

वचनबल, कायबल, आयु, श्वासोच्छ्वास चार प्राण हैं। १९ वां स्थान संज्ञा है, केवलीके कोई नहीं है। २० वां स्थान उपयोग है केवलीके केवलज्ञान, केवलदर्शन उपयोग है (मन विगयं त नन्त नन्त चपल) चचल मन जो अनन्तानन्त विकल्पोंका करनेवाला है, केवलीके नहीं है (कम्मम्य ग्मन पर) केवल अघातीय कर्मोंका सम्बन्ध है (ज्ञान चि पच्चय विह च रवन) २१ वा स्थान ध्यान है, केवलीके शुक्लध्यान होता है। २२ वां स्थान प्रत्यय या आस्रव है, केवलीके ५७ आस्रवोंमेंसे ७ योग ही आस्रव है (जाय कुल कोटि सुर) २३ वा स्थान योनि ८४ लाख हैं केवलीके यथा-सम्भव मनुष्य योनि है। कुल कोटि १९७॥ लक्ष कोटि कुलमेंसे केवलीके मनुष्य सम्बन्धी कुल है। यह २४ वा स्थान है (सुर विजन स जोय ऐत वेन ममल चौवीसठाण सुर) ऐसे २४ स्थानके धारी केवलीके सुरव्यंजनके संयोग रहित शुद्ध निरक्षर वचन निकलते हैं।

भावार्थ—जिन स्थानोमें संसारी जीवोकी अवस्थाओको जाना जावे ये स्थान कुल चौवीस हैं उनको चौवीस ठाणा या चौवीस स्थान कहते हैं। इनका विस्तारसे कथन गोम्मटसार जीवकाडमें है।

चौवीस स्थानोंका विस्तार

(१) गति ४—प्राणीके शरीरादि अवस्था विशेष। वे चार हैं—नरक, तिर्यंच, देव, मनुष्य। संसारी जीव इनमेंसे किसी गतिमें मिलेगा।

(२) इन्द्रिय ५—जिनके द्वारा मतिज्ञान स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण शब्दको जान सके। ये पाँच हैं—स्पर्शन इन्द्रिय, रसना इन्द्रिय, घ्राण इन्द्रिय, चक्षु इन्द्रिय, कर्ण इन्द्रिय। संसारी जीव कोई एकेन्द्रिय है, कोई दो, कोई तीन, कोई चार, कोई पाँच इन्द्रिय धारी हैं।

(३) काय ६—शरीरकी रचनाकी अपेक्षा संसारी प्राणियोंके जाति भेद—ये छः हैं—पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रस काय।

(४) योग १५—आत्माके कर्म नोकर्म पुद्गल ग्रहण करनेकी शक्तिको योग कहते हैं। जब आत्माके प्रदेश चञ्चल होते हैं तब यह योगशक्ति काम करती है। आत्माके प्रदेश पन्द्रह योगोंमेंसे किसी एक योगके निमित्त होनेपर हिलते हैं। एक समयमें कोई एक योग होता है। चार मनके—सत्य (जहाँ सच्चा विचार हो),

असत्य, उभय (जहाँ सच्चा झूठा मिला हुआ विचार हो, अनुभय (ऐसा विचार जिसके सत्य या असत्य कुछ भी नहीं कह सकते हैं, जैसे विचार करना वह क्या पूछते थे, वे क्यो बुलाते थे), इसी तरह चार वचनके–सत्य असत्य, उभय, अनुभय। कायके योग सात–औदारिक काय (मनुष्य व तिर्यंचोंके) औदारिक मिश्रकाय (इनहीके अपर्याप्त अवस्थामें) वैक्रियिककाय (देव नारकियोंके) वैक्रियिक मिश्रकाय (इनहीके अपर्याप्तपदमें) आहारक काय (मुनिके मस्तकसे आहारक शरीर निकलता है तब) आहारक मिश्रकाय (आहारक शरीरके बनते हुए) कार्माण काययोग विग्रह गतिमें सबके होता है समुद्घात केवलीमें भी होता है।

(५) वेद ३—कामभावको वेद कहते हैं। स्त्री वेद, पुंवेद, नपुंसक वेद। जहाँ तक वेदका अभाव न हो वहाँतक कोई न कोई वेद रहेगा।

(६) कषाय २५—जो आत्माके ज्ञानको मैला, कलुषित, कलंकी व कषायला कर दे। वे कषाय कुल पच्चीस हैं।

४ अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ—जो सम्यग्दर्शन व स्वरूपाचरणचारित्रको रोके, न होने दे।

४. अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ—जो श्रावकके बारह व्रतरूप देश चारित्रको न होने दे, रोके। अप्रत्याख्यानका अर्थ कुछ त्यागके हैं।

४ प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, मान, माया, लोभ–जो साधुके महाव्रतको रोके। प्रत्याख्यान नाम पूर्ण त्यागका है, उसको जो न होने दे।

४ सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ–जो सयमको घात न करे, संयमके साथ साथ रह सके। परन्तु यथाख्यातचारित्र व वीतरागताको रोके।

९. नोकषाय, कुछ कषाय–जो कषायकी सहायताके बिना काम न कर सके। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा (घृणा), स्त्रीवेद, पुवेद, नपुंसक वेद। इनमेंसे ससारी जीवोके यथासंभव कषायें एक समयमें पाई जाती हैं। जैसे किसी जीवको अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, सज्वलन चारो ही कषायोंके साथ अरति, शोक, भय, जुगुप्सा व पुवेद हो अर्थात् एक साथ ९ कषायें उदयमें रह सकती है।

(७) ज्ञान ८—तीन कुज्ञान–कुमति, कुश्रुति, कुअवधि। पांच सम्यग्ज्ञान—मति श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान।

सम्यक्त्व सहित ज्ञानको सम्यग्ज्ञान कहते हैं, मिथ्यात्वसहित ज्ञानको कुज्ञान कहा है। इन्द्रियोसे या मनसे सोधा किसी पदार्थको जानना मतिज्ञान है।

मतिज्ञान द्वारा जाने हुए पदार्थके द्वारा दूसरे पदार्थको जानना श्रुतज्ञान है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी मर्यादापूर्वक रूपी पदार्थोंको आत्माके द्वारा प्रत्यक्ष जानना अवधिज्ञान है।

दूसरोके द्वारा विचार किये जानेवाले रूपी पदार्थोंको आत्मा द्वारा प्रत्यक्ष जानना मन:पर्ययज्ञान है।

सर्व द्रव्योंकी सर्व गुण पर्यायोको एक काल प्रत्यक्ष क्रम रहित जानना केवलज्ञान है। एक अकेला केवलज्ञान होता है। मति, श्रुत दो किसी जोवके होते हैं, किसोके अवधि या मन:पर्यय सहित तीन या दोनो सहित चार ज्ञान एक साथ होते हैं।

(८) संयम ७—पाँच अहिंसादि व्रतोको पालना, इन्द्रियोको व मनको रोकना संयम है। उसके सात भेद हैं—

१ असंयम—संयमका बिलकुल न होना। चार गुणस्थान तक असयम रहता है।

२. देश सयम—श्रावकका चारित्र पालना। पाँचवाँ गुणस्थान।

३. सामायिक—समभावसे ध्यानमें रहना।

४. छेदोपस्थापन—समभावसे गिरकर फिर समभावमें स्थिर होना।

५ परिहारविशुद्धि—जिस संयममें विशेष जीव हिंसाका त्याग हो।

६. सूक्ष्मसापराय—केवल सूक्ष्म लोभके होते हुए सयम रहना।

७. यथाख्यात—नमूनेदार वीतराग चारित्र।

एक समयमें एक जीवके एक प्रकार सयम मिलेगा। पिछले पॉच मुनियोके होते हैं।

(९) दर्शन ४—विशेष रहित सामान्य ग्रहणको दर्शन कहते हैं। इसके चार भेद हैं—

१. चक्षु दर्शन—आँखके द्वारा सामान्य ग्रहण।

२. अचक्षु दर्शन—आँखके सिवाय अन्य चार इन्द्रिय व मनसे सामान्य ग्रहण।

३. अवधि दर्शन—जो सम्यक्त्वोके अवधिज्ञानसे पहले होता है।

४. केवल दर्शन—सबको ग्रहण करना। केवलीके होता है।

१८

तीन इन्द्रिय तक अचक्षु दर्शन चार व पाँच इन्द्रियोंके चक्षु, अचक्षु दोनो दर्शन होते हैं। अवधिदर्शन सहित तीन दर्शन अवधिज्ञानीको होगे, केवलीके एक केवलदर्शन होगा।

(१०) लेश्या ६—जिन भावोंसे पाप या पुण्यका बन्ध हो। ऐसे भाव लेश्या कहलाते हैं, आत्म प्रदेश कम्पन रूप योग कषाय सहित या कषाय रहितको लेश्या कहते हैं। ये छः हैं—

१. कृष्णलेश्या–अशुभतम भाव–मूलसे नाश करनेवाले भाव।

२. नील–अशुभतर भाव–मूल रखकर नाश करनेवाले भाव।

३. कापोत–अशुभ भाव–कुछ बिगाड करनेवाले भाव।

४. पीत–शुभ भाव–परोपकारके भाव।

५. पद्म–शुभतर भाव–अपनी हानि सह कर परोपकारके भाव।

६. शुक्ल–शुभतम भाव–रागद्वेष रहित समभाव या वैराग्य भाव, नि:पक्षपात भाव। एक काल, एक लेश्या, एक जीवके पायी जाती है।

(११) भव्य २–जो सम्यक्त्वको प्राप्त कर सके वह भव्य, जो सम्यक्त्वको न प्राप्त कर सके वह अभव्य। ऐसे दो भेद।

(१२) सम्यक्त्व ६–जीवके श्रद्धानको सम्यक्त्व कहते है। इसके छ भेद है।

१. मिथ्यात्व–मिथ्या श्रद्धान।

२. सासादन–सम्यक्त्वसे छूट कर मिथ्यात्वमें आते हुए भाव।

३. मिश्र–सम्यक्त्व व मिथ्यात्वके मिश्रभाव।

४. उपशम–चार अनन्तानुबन्धी कषाय व दर्शनमोहके उपशम या दबनेसे जो सम्यक्त्व हो। इसका काल अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नही है।

५. वेदक या क्षयोपशम–चार अनन्तानुबन्धी कषाय, मिथ्यात्व, मिश्र इन ६ के उदय न होने पर केवल सम्यक्त्व प्रकृतिके उदय होनेपर जो मलीन श्रद्धान हो वह वेदक सम्यक्त्व है। जघन्य अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट ६६ सागर काल है।

६ क्षायिक–सातो प्रकृतियोंके क्षयसे जो हो, अनन्त कालतक रहनेवाला, एक कालमें एक जीवके छः मेंसे एक भाव होगा।

(१३) सैनी २–मन सहित सैनी, मन रहित असैनी कहलाते है। हृदयमें आठ पत्तेके कमलाकार द्रव्य मन द्वारा तर्क करनेकी जो शक्ति धरे उसे सैनी कहते हैं।

(१४) आहारक २–औदारिक, वैक्रियक व आहारक। किसी भी शरीरके योग्य आहारक वर्गणाको जो ग्रहण करे वह आहारक है। जो इनको न ग्रहण कर सके वह अनाहारक है। जैसे विग्रहगतिका जीव, अयोगकेवली।

(१५) गुणस्थान १४–मोहनीय कर्मके उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम तथा योगके निमित्तसे होनेवाले जीवके भावोको गुणस्थान कहते हैं। वे चौवह इस क्रमसे है कि एकसे दूसरेमें ऊपर-ऊपर भावोकी निर्मलता है। इन चौदह सीढ़ियोको पार कर जीव सिद्ध परमात्मा होता है।

१. मिथ्यात्व—जहाँ आत्माका श्रद्धान न हो, मोहमें भूला हुआ हो।

२ सासादन—सम्यक्त्वसे गिर कर मिथ्यात्व गुणस्थानमें पड़ते हुए बीचके भाव, कुछ देर मात्र, उत्कृष्ट छ. आवली। यहाँ अनन्तानुबन्धी कषायका उदय रहता है, मिथ्यात्वका नहीं।

३. मिश्र—सम्यक्त्व व मिथ्यात्वके मिले भाव। अन्तर्मुहूर्त तक।

४ अविरत सम्यक्त्व—सयम रहित तत्त्वका श्रद्धान जहाँ हो, यहाँ अनन्तानुबन्धी चार कषाय व मिथ्यात्व व मिश्रका छः का उदय नहीं होता है। उपशम या क्षायिक सम्यक्त्वीके सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय भी होता है जब कि क्षयोपशम या वेदकके सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होता है।

५ देशविरत—श्रावकके व्रतोको पालनेवाला, दर्शन आदि ग्यारह प्रतिमाओके पालनेवाला। यहाँ चार अप्रत्याख्यानावरण कषायोका उदय भी नहीं होता है।

६ प्रमत्तविरत—साधुके महाव्रतोको पालनेवाला। प्रमाद सहित इस गुणस्थानमें साधु आहार, विहार, उपदेशादि करते हैं। इसके आगेके सब गुणस्थान ध्यानमयी अप्रमत्त है। यहाँ प्रत्याख्यानावरण चार कषायका उदय नहीं होता है।

७. अप्रमत्तविरत—यहाँ चार सज्वलन कषाय व नौ नोकषायोका मन्द उदय होता है।

८. अपूर्वकरण—अपूर्व शुद्ध भाव। यहाँ भी १३ कषायोंका मंदतर उदय है।

९. अनिवृत्तिकरण—खास शुद्ध भाव। यहाँ चार संज्वलन व तीन वेदका उदय रहता है सो धीरे-धीरे मिटता जाता है।

१०. सूक्ष्म लोभ या सूक्ष्मसांपराय—यहाँ मात्र सूक्ष्म लोभका ही उदय है।

११. उपशान्त मोह या उपशान्त कषाय—यहाँ सर्व कषाय शान्त हैं। यहाँ

वही आता है जो कषायोंको उपशम करता हुआ उपशम श्रेणीसे चढ़ता है। यहाँसे गिरता अवश्य है, फिर सातवें तक क्रमसे लौट जा सकता है।

१२ क्षीण मोह---यहाँ सर्व मोह क्षय हो चुका है। यह क्षपकश्रेणीसे मोहको क्षय करता हुआ ८, ९, १० गुणस्थानसे १२वें में आता है।

१३. सयोगकेवली जिन---चार घातीय कर्म रहित विहार करनेवाले केवली अरहन्त भगवान्।

१४ अयोगकेवली जिन---योग क्रिया रहित केवली। कुछ देरमें ही चार अघातीय कर्मका क्षय करके फिर सर्व शरीर रहित सिद्ध हो जाते हैं।

एक कालमें जीवके एक गुणस्थान ही होता है।

(१६) जीव समास १९—जहाँ जीवोंको जातिकी अपेक्षा संग्रह किया जाय ऐसे जीव समास १४ प्रसिद्ध हैं—

१. पृथ्वीकाय सूक्ष्म, २. पृथ्वीकाय बादर। ३. जलकाय सूक्ष्म, ४ जलकाय बादर। ५. अग्निकाय सूक्ष्म, ६. अग्निकाय बादर। ७. वायुकाय सूक्ष्म, ८ वायुकाय बादर। ९ नित्य निगोद साधारण वनस्पति सूक्ष्म, १०. नित्य निगोद बादर। ११. इतर निगोद सूक्ष्म (निगोद सहित), १२ इतर निगोद बादर। १३ द्वेन्द्रिय, १४. तेन्द्रिय, १५. चौन्द्रिय, १६ पचेन्द्रिय असैनी, १७. पचेन्द्रिय सैनी। पर्याप्त अपर्याप्तके भेदसे ३८ भेद हो जायेंगे। कोई जीव किसी समासमें गर्भित होगा।

(१७) पर्याप्ति ६---शरीरादि बननेकी शक्तिको पर्याप्ति कहते हैं। ये छः हैं---१ आहार पुद्गलको मोटा महीन करनेकी शक्ति, २. शरीर, ३ इन्द्रिय, ४. श्वासोच्छ्वास, ५. भाषा, ६. मन।

एकेन्द्रियमें पहली चार, २ से पंचेन्द्रिय असैनी तक पहली ५, सैनीके छहों होती हैं।

(१८) प्राण १०---जिनके कारण जीव वर्ताव कर सके, काम कर सके वे प्राण हैं। वे १० होते हैं : ५ इन्द्रिय प्राण, ३ बल, मन, वचन, काय, १ आयु, १ श्वासोच्छ्वास।

एकेन्द्रियके स्पर्शनेन्द्रिय, काय बल, आयु, श्वास, चार प्राण।

द्वीन्द्रियके–रसना इन्द्रिय वचनबल अधिक छः प्राण।

त्रीन्द्रियके–घ्राणेन्द्रिय सहित सात प्राण।

चउइन्द्रियके–चक्षु इन्द्रिय अधिक आठ प्राण ।

पंचेन्द्रिय असैनीके–कर्ण इन्द्रिय सहित नौ प्राण ।

पंचेन्द्रिय सैनीके–मन बल सहित दस प्राण होते है ।

(१९) संज्ञा ४–कर्मोंके उदयसे विशेष प्रकारकी इच्छाओंको संज्ञा कहते हैं। ये चार हैं : १ आहार संज्ञा–भोजनकी इच्छा, २ भय संज्ञा–भयका भाव, ३ मैथुन संज्ञा–काम विकार, ४ परिग्रह सज्ञा–मूर्च्छाभाव । ये सर्व संसारी जीवोके होती हैं, साधुओंके कम होती जाती हैं ।

(२०) उपयोग १२—चेतना गुणके परिणमनको, जो वस्तुको जाननेमें लगे उपयोग कहते हैं, बारह भेद हैं । ज्ञान आठ, दर्शन चार, पहले पढ चुके हैं ।

(२१) ध्यान १६—दुःखरूप परिणाम आर्त्तध्यान है, उसके चार भेद हैं : १. इष्टवियोगज, २. अनिष्ट सयोगज, ३ पीडाजनित, ४. निदान (भोग वांछा) दुष्ट परिणाम रौद्रध्यान है, इसके भी चार भेद हे ।

५--हिंसानन्दी, ६--मृषानन्दी, ७ -चौर्यानन्दी, ८--परिग्रहानन्दी । धर्मका चिन्तवन सो धर्मध्यान है । इसके चार भेद हैं ।

९–आज्ञा, १०–अपाय (कर्मनाश विचार), ११–विपाक (कर्मफल), १२–सस्थान (आत्मा व लोकका स्वरूप) । शुद्ध ध्यान शुक्लध्यान है, इसके भी चार भेद हैं—

१३--पृथक्त्व वितर्क वीचार (जहाँ पलटन हो), १४--एकत्व वितर्क अवीचार (जहाँ थिरता हो), १५--सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति (सूक्ष्म काययोग हो), १६--व्युपरत-क्रियानिवृत्ति (योग रहित हो जावे) ।

कोई ध्यान एक जीवके पाया जायेगा ।

(२२) प्रत्यय या आस्रव ५७—मिथ्यात्व पाँच प्रकार—

१--एकान्त मिथ्यात्व—वस्तुमें अनेक स्वभाव होने पर भी एक ही मानना।

२--विनय—निर्णय न करके सत्य असत्यको एक-सा मानना ।

३--विपरीत–असत्यको सत्य मानना ।

४--संशय–शकाशील रहना । ५--अज्ञान–जानना ही नही ।

१२ अविरति भाव–पाँच इन्द्रिय व मनको वश न रखना तथा छः कायके प्राणियोंकी दया न पालना ।

२५ कषाय--पहले कह चुके, १५ योग पहले कह चुके। इस तरह १२ + २५ + १५=५७ आस्रव हैं।

(२३) योनि ८४ लाख---जिन स्थानोमे जीव जन्मते हैं उनके गुण अपेक्षा भेदोको योनि कहते है। वे ८४ लाख नीचे प्रमाण है---

१. नित्य निगोद सात लाख, २. इतर निगोद ७ लाख, ३. पृथ्वी ७ लाख, ४. जल काय ७ लाख, ५. अग्नि काय ७ लाख, ६. वायु काय ७ ल ७. प्रत्येक वनस्पति १० लाख, ८. दोइन्द्रिय २ लाख, ९. तेइन्द्रिय २ लाख, चौन्द्रिय २ लाख, ११ पंचेन्द्रिय तिर्यंच ४ लाख, १२. देव ४ लाख, १३ ना ४ लाख, १४. मनुष्य १४ लाख = ८४ लाख।

(२४) कुल १९७॥ लाख कोड--एक प्रकारकी योनिसे जितने प्रका जीव जन्मते है उन प्रकारोको कुल कहते हैं। जैसे एक खेतकी मिट्टीसे जौ, घने होना। ऐसे कुल एकसौ साढे सतानवें लाख कोड नीचे प्रकार है---

१. पृथ्वी काय	२२ लाख कोड कुल
२. जल काय	७ ,, ,,
३. अग्नि काय	३ ,, ,,
४. वायु काय	७ ,, ,,
५. वनस्पति काय	२८ ,, ,,
६. दोइन्द्रिय	७ ,, ,,
७ तेइन्द्रिय	८ ,, ,,
८. चौइन्द्रिय	९ ,, ,,
९ पंचेन्द्रिय तिर्यंच	४३॥ ,, (जलचर १२॥ लाख, थल १९ लाख, नभचर १२ ला
१०. नारक	२५ ,, ,,
११. देव	२६ ,, ,,
१२ मनुष्य	१२ ,, ,,
	१९७॥ लाख कोड कुल

चार गतियोंके २४ स्थान

कुल स्थान	नरक गतिमे	तिर्यंच गतिमे	देव गतिमे	मनुष्य गतिमे
(१) गति ४	१ नरक	१ तिर्यंच	१ देव	१ मनुष्य
(२) इन्द्रिय ५	१ पचेन्द्रिय	पाँचो इन्द्रियवाले	१ पचेन्द्रिय	१ पचेन्द्रिय
(३) काय ६	१ त्रस काय	छहो काय	१ त्रस काय	१ त्रस काय
(४) योग १५	११ (४ मन ४ वचन वै० २) १ कार्मण	११ (४ म + ४ व + औदा० २ कार्मण १)	११ (४ म + ४व + वै० २ + कार्मण १)	१३ (वै० २ विना)
(५) वेद ३	१ नपुमक	तीनो वेद	२ स्त्री पुवेद	तीनो वेद
(६) कषाय २५	२३ (स्त्री पुवेद नही)	२५ कषाय	२४ (नपुमक वेद विना)	२५ कषाय
(७) ज्ञान ८	६ (कुज्ञान ३ सुज्ञान ३)	६ (कुज्ञान ३ + सुज्ञान ३)	६ (कुज्ञान ३ + सुज्ञान ३)	८ ज्ञान
(८) सयम ७	१ असयम	२ असयम, देश सयम	१ असयम	७ सयम
(९) दर्शन ४	३ (केवल विना)	३ (केवल विना)	३ (केवल विना)	४ दर्शन
(१०) लेश्या ६	३ (कृष्ण, नील, कापोत)	छहो लेश्या	पर्याप्त अपेक्षा ३ पीत पद्म शुक्ल अपर्याप्तके छहो	छहो लेश्या
(११) भव्य २	दोनो	दोनो	दोनो	दोनो
(१२) सम्यक्त्व ६	छहो	६ सम्यक्त्व	६	६
(१३) सैनी २	सैनी	२ सैनी, असैनी	सैनी	सैनी
(१४) आहारक २	दोनो	दोनो	दोनो	दोनो
(१५) गुणस्थान १४	पहले ४	पहले ५	पहले ४	सब १४
(१६) जीव समास १९	पचेन्द्रिय सैनी	सब १९	पचेन्द्रिय सैनी	पचे० सैनी
(१७) पर्याप्ति ६	६ पर्याप्ति	६ तक	६	६
(१८) प्राण १०	१० प्राण	१० तक	१०	१०
(१९) सज्ञा ४	४	४	४	४
(२०) उपयोग १२	९ (ज्ञान ६ दर्शन ३)	९ (ज्ञान ६ दर्शन ३)	९(ज्ञान ६ + दर्शन ३)	१२
(२१) ध्यान १६	९ (आर्त्त ४ + रौद्र ४ + धर्म १)	११ आर्त्त ४ + रौद्र ४ + धर्म ३)	१०(आर्त्त ४ + रौद्र ४ + धर्म २)	१६
(२२) आस्रव ५७	५१ (स्त्री, पुवेद औदा० २ + आहारक २ = ६ छोडकर)	५३ (आहारक + वै० २ = ४ विना)	५२(नपु० वेद औदा० २ आहारक २ = ५ विना)	५५ (वै० २ विना)
(२३) योनि ८४ लाख	४ लाख	६२ लाख	४ लाख	१४ लाख
(२४) कुल १९७॥ लाख कोड	२५ लाख कोड	१३४॥ लाख कोड	२६ लाख कोड	१२ लाख कोड

उत्पत्तिं तं षिपत्ति मुक्ति रवनं, न्यानं च उवनं सुरं।
उत्पन्नं तं न्यान नन्त विमलं, उत्पन्न कम्मं विलं ॥
भुक्तं न्यान विसेष नन्त विमलं, भुक्तस्य कम्मं गलं।
संसारे सरयं विनन्द विलयं, न्यानं च न्यानं सुरं ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ—(उत्पत्ति त षिपति मुक्ति रवन) जब मोक्षका लाभ होता है तब फिर संसारमें जन्मका अभाव हो जाता है (न्यान च उवन सुर) वहाँ सूर्यके समान ज्ञान प्रगट रहता है (उत्पन्न त न्यान नन्त विमल) वह ज्ञान अनन्त है वह शुद्ध है सदा प्रकाशरूप है (उत्पन्न कम्म विल) जो संचित कर्म थे ये सब क्षय हो गये हैं (भुक्त न्यान विसेष नन्त विमल) मोक्ष प्राप्त परमात्मा अनन्त शुद्ध ज्ञान स्वभावका हो भोग करते हैं (भुक्तस्य कम्म गल) कर्मोंके फलका भोग उनके क्षय हो गया है (ससारे सरय विनन्द विलय) ससारके भ्रमणका सर्व कष्ट नाश हो गया है (न्यान च न्यान सुरं) ऐसा ज्ञानमयी सूर्य झलकता है।

भावार्थ—सिद्ध परमात्मा कर्म रहित हो जाते है, शुद्ध ज्ञान स्वभावमें लीन होकर ज्ञानानन्दका भोग करते हैं। उनका भव भ्रमण बन्द हो गया है। वे परम सुखी हैं। कोई सांसारिक दुःख नही है।

उववन्नं उववन्न न्यान रवनं, उत्पन्न कम्मं विलं।
उववन्नं हिययार न्यान रवनं, हिययार कम्मं विलं ॥
उववन्नं सहकार न्यान चरनं, सहयार कम्मं गलं।
उववन्नं तं जान न्यान उवनं, जानं अनिष्टं विलं ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ—(उववन्न उववन्न न्यान रवन) सिद्ध भगवान्में रमणीक प्रकाशका ज्ञानका उदय रहता है (उत्पन्न कम्म विल) जन्मके कारण सर्व कर्म क्षय हो गए हैं (उववन्न हिययार न्यान रवन) यह सुन्दर ज्ञान बड़ा ही हितकारी है (हिययार कम्म विल) आत्माको शुभ संयोगोमें रखनेवाला हितकारी पुण्यकर्म गल गया है (उववन्न सहकार न्यान चरन) सिद्धोके सदा आत्माको सहकारी ज्ञानमें चलनारूप ज्ञानाचार प्रगट है (सहयार कम्म गल) ससारमें सहायकारी पुण्यकर्मका क्षय हो गया है (उववन्न त जान न्यान उवन) सिद्धोके ज्ञानमयी रथका आरोहण है (जान अनिष्ट विल) मरण-रूप क्षणिक चार गतिरूपी रथका चढ़ना बन्द हो गया है।

भावार्थ—सिद्धोंके शुद्ध ज्ञानका प्रकाश है इससे सिद्धोके परम निराकुलता है, बाधक सर्व कर्म क्षय हो गये हैं, पुण्य भी कोई नहीं है इसलिये स्वाभाविक ज्ञान परिणतिमें रमण करते हैं। क्षणिक चार गतिमें गमनसे सदाके लिए छूट गये हैं।

उववन्नं पय पंच न्यान विमलं, पयं च कम्मं विलं।
उवन्नंत सुकिय सुभाव षिपनं, कम्म सुभावं विलं॥
उवन्नंत विसेष न्यान रवनं, कम्म स्वनन्तं विलं।
जं जं कम्म उवन्न असेस रवनं, न्यानस्य नन्तं विलं॥ १०॥

अन्वयार्थ—(उववन्न पय पच न्यान विमल) निर्मल पंचम केवलज्ञानका प्रकाश परमात्मामें रहता है (पय च कम्म विल) ज्ञानावरण पाँचों कर्म क्षय हो गए हैं (उवन्नत सुकिय सुभाव षिपन) सिद्धोके अपना ही क्षायिक स्वभाव प्रगट हो गया है (कम्म सुभाव विल) कर्मोंकी सब प्रकृतियाँ विला गयी हैं, न भावकर्म है, न द्रव्यकर्म है, न नोकर्म है (उवन्नत विसेष न्यान रवन) उनके रमणीक अनन्तज्ञानका प्रकाश है (कम्म स्वनन्त विल) अनन्त कर्मोंका क्षय हो गया है (ज ज कम्म उवन्न असेस रवन न्यानस्य नत विल) जो जो कर्म ससारी गतिमें उत्पन्न होते थे वे सब अनन्त कर्म शुद्ध रमणीक ज्ञानके प्रतापसे विला गए हैं।

भावार्थ—सिद्धोके स्वरूपकी महिमा है। वे कर्म रहित स्वभावसे ही बिराजित हैं। वे परम निराकुल हैं, क्षायिक शुद्ध स्वभावमें लीन है, शरीरादि रहित अमूर्तीक हैं।

अन्मोयं तं न्यान नन्त अचलं, विषयस्य विलयं सुयं।
जं जं विषय चरन सहाव उवनं, अन्मोय न्यानं विलं॥
न्यानं न्यान सुयं सुरं च रवनं, बाधस्य विलयं सुयं।
अव्याबाह अनन्त न्यान रवनं, चरनं सुयं सासुतं॥११॥

अन्वयार्थ—(अन्मोय त न्यान नन्त अचल) वे सिद्ध भगवान् अनन्त ज्ञानमें निश्चल रहते हुए परमानन्दमय है (विषयस्य विलय सुय) उनके पाँच इन्द्रिय व मनका विषय सुख सब नाश हो गया है (जं ज विषय चरन सहाव उवन) विषयोंके भीतर भोग करनेसे जो जो विभाव पैदा होते हैं (अन्मोय न्यान विल) वे सब ज्ञानानन्दमें मगन होनेसे विला गए हैं (न्यान न्यान सुयं सुर च रवन) वे स्वयं ज्ञान सूर्यके होते हुए अपने ही

ज्ञानमें रमण करते हैं (बाधम्य विलयं सुय) सुखके बाधाकारक कर्म या भाव स्वयं विला गए हैं (अव्याबाह अनन्त न्यान रवन) उनके रमणीक अव्याबाध व बाधा रहित अनन्त ज्ञान है (चरन सुयं सासुत) तथा उनके स्वयं ध्रुव रूपसे अपने ही स्वभावमें आचरण है ।

भावार्थ—सिद्धोंके अतीन्द्रिय बाधा रहित स्वाभाविक आनन्द है सांसारिक विषय सुखकी न वांछा है, न भोग है । वे शुद्ध ज्ञानमें ही रमण करते हुए ज्ञानानन्दका ही स्वाद लेते हैं । वे शाश्वत् स्वरूप रमण चारित्रके धारी हैं ।

अर्कं तु जु विसेष नन्त विमलं, सुद्धं च सुद्धात्मनं ।
न्यानं न्यान सुयं समं च ममलं, चरनं च सुद्धं धुवं ॥
तत्कालं रवनं तवं च ममलं, सम्यक्त्व सार्धं सुयं ।
नन्तानन्त चतुष्टयं सु समयं, अन्मोय मुक्तिं धुवं ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ—(अर्कं तु जु विसेष नन्त विमल) वे सिद्ध भगवान् विशेष अपूर्व सूर्य हैं जो मल व आवरण रहित अनेक काल तक उदय रहते हैं (सुद्ध च सुद्धात्मन) वे कर्म रहित शुद्ध परमात्मा हैं (न्यान न्यान सुय सम च ममल) उनके भीतर स्वय प्रकाशित ज्ञान है व समभाव परम शुद्ध है (चरन च सुद्ध धुव) व उनमें शुद्ध अविनाशी चारित्र है या वीतराग भाव है (तत्काल रवन तव च ममल) वे सदाकाल अपने स्वभावमें तपते रहते है यही निर्मल तप हैं (सम्यक्त्व सार्धं सुय) वे स्वयं क्षायिक शुद्ध सम्यग्दर्शनके धारी है (नन्तानन्त चतुष्टय सु समय) वे अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्यके धारी स्वसमय या स्वात्मरमण रूप परमात्मा हैं (अन्मोय मुक्ति धुव) वे सदाकाल मुक्तिके आनन्दका विलास करते है ।

भावार्थ—सिद्ध भगवान् अपूर्व व अनुपम सूर्य हैं जो सदा वीतराग भावसे प्रकाशित रहते हैं । वे रत्नत्रयके स्वामी सदा मोक्षमें रहते हुए आनन्द भोगते हैं ।

(आगे गद्य है उसको लिखकर अर्थ किया गया है ।)

गति चारि ४ नर्क गति, तिर्यंच गति, देवगति, मनुष्य गति नर्कगति निरूपनं ।

अर्थ—गति चार हैं—नर्क, तिर्यंच, देव, मनुष्य । उनमेंसे नर्कगतिका विवरण करते हैं—

अर्क न दिस्यते नर्क, अर्कस्य नन्त सुभावं, अर्क उत्पन्न अर्क १, कंठ कमल ठहकार अर्क २, हितकार अर्क ३, गहिर अर्क ४, गुपित गुहिज अर्क ५ ।

अर्थ—यहाँ अध्यात्मदृष्टिसे वर्णन है । नर्क वही है जहाँ आत्मारूपी सूर्यका या शुद्ध ज्ञान सूर्यका प्रकाश न दिखलाई पडे अर्थात् मिथ्यादृष्टीका आत्मा नर्कके समान दुःख भोगता है । वह घोर अज्ञानके अन्धकारमे पड़ा हुआ इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, पीड़ा सम्बन्धी दुःख व विषय भोगोकी तृष्णाकी दाहमें जलता हुआ महा दुःखी है । इस शुद्धात्मा रूपी सूर्यके अनन्त स्वभाव हैं । सूर्यके ध्यानसे सूर्यका प्रकाश हो जाता है । जो कोई अशुद्धात्मा शुद्धात्माका ध्यान करता है वह स्वय शुद्धात्मा हो जाता है ॥ १ ॥ कण्ठमें कमलको विराजित करके उसके मध्यमे ॐ या श्री मन्त्रको रखकर उसके द्वारा शुद्धात्म सूर्यका ध्यान किया जाता है ॥ २ ॥ शुद्धात्मा ही सर्व हितकारी सूर्य है । जो मनन करता है उसको सच्ची सुख शांति मिलती है, पाप क्षय होता है, पुण्य बन्धता है ॥ ३ । शुद्धात्मा परम गम्भीर सूर्य है जिसमे सब लोकालोकका ज्ञान व्याप्त है ॥ ४ ॥ शुद्धात्मा हरएक आत्मामें गुप्त गुफामे विराजित सूर्य है अर्थात् हरएक आत्माका स्वभाव शुद्ध है । हरएकमें परमात्माकी शक्ति भरी है ॥ ५ ॥

अर्कस्य विसेष—उत्पन्न अर्क १, उत्पन्न उत्पन्न नो उत्पन्न २, दर्स उत्पन्न ३, न्यान विन्यान उत्पन्न ४, उत्पन्न सूषम सुभाव ५, सूषम क्रांति ६, सुषेन रमन ७, सुषेन षिपक ८, दुषेन विलयं गत ९ ।

अर्थ—आत्मीक सूर्यका विशेष वर्णन करते हैं । वह ज्ञानमयी शुद्धात्मारूपी सूर्य सदा उदयरूप है ॥ १ ॥ वह शुद्धात्मा व्यवहारनयसे या पर्यायार्थिकनयसे तो, भव्यके भीतर उत्पन्न होकर उदय होते है परन्तु द्रव्यार्थिकनयसे सदा ही हैं, कभी नये उत्पन्न नही होते है ॥ २ ॥ उनमें अनन्तदर्शन प्रकाशित रहता है ॥ ३ ॥ उनमें अनन्तज्ञान झलकता रहता है ॥ ४ ॥ उनमें अतीन्द्रिय सूक्ष्म स्वभाव प्रगट रहता है ॥ ५ ॥ उनमें सूक्ष्म अतीन्द्रिय ज्ञानमयी ज्योतिका प्रकाश है ॥ ६ ॥ वे

आनन्दसे आपमें ही रमण करते हैं ।। ७ ।। वे अदृश्य होते हुए कर्मरहित क्षायिक भावमें लीन है ।। ८ ।। उनके सर्व दुःख व चिन्ताएँ व वाछाएँ विलय हो गई है ।। ९ ।।

उत्पन्न न्यान मिलन रञ्ज रमन भय विनस्य नन्द सनन्द रूत्र ।। १० ।। उत्पन्न न्यान अपर सुर विंजन पद अर्थति अर्थ समय अर्थ सहकार सदर्थ अवकास अन्मोद दिस्टि, अदिस्टि दिस्टि इष्टि अइष्टि, इष्टि इष्टि ।। ११ ।।

अर्थ—सिद्ध भगवान्में ज्ञानके साथ आनन्द मिला है। वे ज्ञानानन्दमे मगन है, सर्व भयोसे रहित है, परमानन्द स्वरूप है ।। १० ।। सिद्धमें अविनाशी ज्ञान है तथा अक्षर स्वर व्यंजन पदके द्वारा उसी ज्ञानका ग्रहण होता है । वे रत्नत्रयमयी पदार्थ हैं, वे समय या आत्मारूप पदार्थ समयसार है, आपमें ही रमणरूप है व बडे सहकारी सत्य पदार्थ है । उनके ध्यानसे हित होता है । उनके अनन्त दर्शन, आनन्द रूप विराजित है । उन्होने इन्द्रिय अगोचर तत्त्वको देख लिया है । जो ससारियोको विषयभोग इष्ट है वह उनको इष्ट नही है । जो अतीन्द्रिय सुख इष्ट है वह उनको उपादेय है ।। ११ ।।

उत्पन्न इस्ट दर्स १, उत्पन्न दर्स इस्ट इस्ट २, उत्पन्न इस्ट सब्द ३, उत्पन्न इस्ट सब्द असब्द ४, उत्पन्न असब्द गुपित ५, उत्पन्न गुपित सब्द हितकार गुपित सब्द हितकार इस्ट हितकार ६ ।

अर्थ—सिद्धोके प्रिय सम्यग्दर्शनका प्रकाश है ।। १ ।। सिद्धोके परमप्रिय आत्मदर्शनका प्रकाश है ।। २ ।। अरहन्त परमात्माके प्रिय दिव्यवाणीका प्रकाश होता है ।। ३ ।। उस इष्ट दिव्यवाणीसे शब्द रहित आत्मतत्त्वका प्रकाश होता है ।। ४ ।। उससे गुप्त शब्द रहित आत्मतत्त्व झलकता है ।। ५ ।। अरहन्तोसे गम्भीर गुप्त शब्द प्रगट हाते हैं, वे हितकारी गुप्त शब्द हितकारी इष्ट आत्म लाभमे सहायक होते है ।। ६ ।।

उत्पन्न हितकार लष्य इष्ट लष्य १, उत्पन्न लष्य इस्ट जीवस्य अहवानं २ ।

अर्थ—हितकारी जानने योग्य निश्चय तत्त्वका प्रकाश हुआ है ॥ १ ॥ यह जानने योग्य तत्त्व प्रिय जीव पदार्थका स्वरूप अपनेमें लानेवाला है, झलकानेवाला है ऐसा प्रगट हुआ है ॥ २ ॥

तत्काल रमन १, दर्स अदर्स दर्स २, सब्द असब्द, सब्द ३, वयन अवयन वयन ४, इच्छ अइच्छ इच्छ ५, लष्य अलष्य लष्य ६, पेष्य अपेष्य पेष्य ७, रमन अरमन रमन ८, गहन अगहन गहन ९, धरन अधरन धरन १०, सहन असहन सहन ११, साहन असाहन साहन १२, अवकास अनन्त १३, अवकास समय १४, असमय समय १५, अन्मोद परम १६, अन्मोद षिपक १७, पर्म षिपक १८, मुक्ति १९, परम मुक्ति २०, सुख २१, परम सुख २२ ।

अर्थ—जब जीव तत्त्व अनुभवमे आता है तब उसी समय उसमें रमण हो जाता है ॥ १ ॥ तब इन्द्रिय अगोचर आत्माका दर्शन देख लिया जाता है ॥ २ ॥ शब्दोके द्वारा शब्द रहित आत्माका भाव प्रगट होता है ॥ ३ ॥ वाक्योके द्वारा वाक्य रहित आत्माका मनन होता है ॥ ४ ॥ भावना करनेसे भावनासे अगोचर आत्मीक तत्त्व मिल जाता है ॥ ५ ॥ जीव तत्त्वपर लक्ष्य देनेसे जिसका कोई इन्द्रिय व मनमें स्वरूप प्रगट नहीं होता है उस आत्माका स्वरूप जान पड़ता है ॥ ६ ॥ जीव तत्त्वका दर्शन करनेसे अनुभवगम्य आत्माका दर्शन होता है ॥ ७ ॥ जीव तत्त्वमे रमण करनेसे जो सिवाय आपके किसीमे रमण नही करता है, उसमें रमण हो जाता है ॥ ८ ॥ जीव तत्त्वका ग्रहण करनेसे जो इन्द्रिय व मनसे ग्रहण योग्य नहीं है उसका ग्रहण हो जाता है ॥ ९ ॥ जीव तत्त्वको धारणामे लेनेसे जो मनकी धारणासे रहित है उसका धारण हो जाता है ॥ १० ॥ जिस तत्त्वपर आत्मबल लगानेसे जो मन व इन्द्रियोंसे नही जाना जाता है वह तत्त्व जम जाता है ॥ ११ ॥ जिसका साधन करनेसे जो किसी बाहरी साधनसे नही सिद्ध होता है वह साध लिया जाता है ॥ १२ ॥ उस जीव तत्त्वमें अनन्त ज्ञानका प्रकाश है ॥ १३ ॥ वह जीव-तत्त्व ज्ञानमय है ॥ १४ ॥ वह आत्मा ऐसा है जिसके समान दूसरा पदार्थ नहीं है व जिसमें दूसरा आत्मा नहीं है ॥ १५ ॥ यह परमानन्दनय है ॥ १६ ॥ यह आनन्दमय क्षायिक भाव सहित है ॥ १७ ॥ वह परम क्षायिक भाव धारी है ॥१८॥

वही मुक्ति है ।। १९ ।। वही परम मुक्ति है ।। २० ।। वह सुख है ।। २१ ।। वही परम सुख है ।। २२ ।।

तत्काल उत्पन्न न्यान विन्यान भय विनस्य भय सल्य संक विलयंति १, दिस्टि इस्टि भय विलयंति उत्पन्न भय विलयंति झडव भय विलयंति २, चेत अचेत अचेत ३, गम्य अगम्य गम्य ४, अनन्त गुप्ति रमन ५, सर्वार्थ ६ सर्वन्य ७, सर्वदिष्टि ८, अर्थ ९, अर्थस्य सब्द अर्थ १०, विन्यान विंद सहकार ११, सुन्य प्रवेस १२, मुक्ति सुयं १३ ।

अर्थ—जिस काल आत्माके ज्ञानमे रमण होता है सर्व भय नाश हो जाते हैं, सर्व शकाएं व सर्व माया मिथ्या निदान शल्यें चली जाती हैं ।। १ ।। परम प्रिय आत्माका दर्शन होते ही भय दूर हो जाते हैं, उदय हानेवाले भय भी चले जाते हैं, शीघ्र ही सर्व भय लुप्त हो जाते है ।। २ ।। वह आत्मा चेतन अचेतन सर्वका चेतनेवाला है ।। ३ ।। स्थूल सूक्ष्म सबका जाननेवाला है ।। ४ ।। वह अनन्त सूक्ष्म आत्मीक गुफामें रमण करनेवाला है ।। ५ ।। वह परम कृतार्थ है, सर्व आत्म प्रयोजनको सिद्ध कर चुका है ।। ६ ।। वह सर्वज्ञ है ।। ७ ।। वह सर्वदर्शी है ।। ८ ।। वही एक पदार्थ है ।। ९ ।। सर्व पदार्थोंमे वही एक सत्य पदार्थ है ।। १० ।। आत्मज्ञानके अनुभवमें वह सहकारी है ।। ११ ।। वह निर्विकल्प भावमें, पर रागादिमें शून्यभावमें सदा प्रवेश करता है ।। १२ ।। वह स्वय मोक्षमार्ग है, आत्मा स्वय ही आपमें रमण करनेसे परमात्मा होता है ।। १३ ।।

अर्कस्य अर्क सुभाव १, सुयं रमनं २, सुयं दर्स ३, सुयं दिष्टि ४, सुयं इष्टि ५, सुयं न्यान ६, सुयं विन्यान ७, अर्क मुक्ति सुभाव सुयं ८, अर्क प्रगट ९, कमल अर्क १०-१ ।

अर्थ—आत्मा अनुपम सूर्य है, प्रकाशमान वीतराग स्वभाव सूर्य समान रखता है ।। १ ।। वह स्वय आपमे रमणशील है ।। २ ।। वह स्वय आपको देखता है ।।३।। वह स्वय आप ही दृष्टि है जिससे आपको देखता है ।। ४ ।। वह स्वयं आपको प्यारा है ।। ५ ।। वह स्वय ज्ञान स्वरूप है ।। ६ ।। वह स्वयं भेदविज्ञान स्वरूप है ।। ७ ।।

वह स्वयं सूर्यसम मोक्षका स्वभाव धारक है ।। ८ ।। वह प्रगट सूर्य सदा प्रकाशमान है ।। ९ ।। वही कमल समान शांत व प्रफुल्लित सूर्य है ।। १० ।।

कमल सहकार कण्ठ अर्क १, ठहकारस्य मुक्ति २, सूक्ष्म परिणाम ३, सुकीय सुभाव ४, सुयं दर्स ५, उत्पन्न दर्स ६, मुक्ति सुभाव दर्स ७, मुक्ति रमन दर्स ८, उत्पन्न श्रीदर्स ९, उत्पन्न मुक्तिश्री दर्स १०, समय सहकार ठहकार ११, मुक्ति सुभाव दर्स १२, कललंकृत कम्म विली १३, कमल ठहकार मुक्ति सुभाव सुर्क १४, सूक्ष्म सुयं कलन ठहकार मुक्ति अर्क १५, सुद्ध सुभाव उत्पन्न १६, इष्ट उत्पन्न प्रमाण १७, उद्देस परिणै प्रमाण १८, उत्पन्न उद्देस १९, उत्पन्न परिणै २०, उत्पन्न प्रमाण २१, गम्य अगम्य प्रमाण २२, गम्य अर्क २३, इस्ट अर्क २४, उत्पन्न अर्क २५, प्रमाण अर्क २६, अर्कस्य कण्ठ अर्क २७-२ ।

अर्थ—कण्ठमें कमलको विराजमान करके उसके भीतर परमात्माका तत्त्व सूर्यके समान चमकता है ।। १ ।। जो स्वरूपमें स्थित होता है उसीको मुक्ति प्राप्त होती है ।। २ ।। मुक्ति अतीन्द्रिय सूक्ष्म आत्माका परिणाम है ।। ३ ।। मुक्ति अपना ही स्वभाव है ।। ४ ।। वह स्वय देख ली जाती है ।। ५ ।। वहाँ आत्माका दर्शन प्रगट रहता है ।। ६ ।। मुक्तिका स्वभाव स्वयं दिखलाई पड़ता है ।। ७ ।। वहाँ दृष्टि मुक्तिमें ही रमण रूप रहती है ।। ८ ।। परमैश्वर्यका दर्शन मुक्तिमें होता है ।।९।। परसे मोक्षरूप स्वयंका ऐश्वर्य वहाँ दिखता है ।। १० ।। जब शुद्धात्माकी सहायतासे स्वरूपमें ठहरना होता है ।। ११ ।। तब मोक्षका स्वभाव दीख पड़ता है ।। १२ ।। तब सर्व शरीर व कर्म क्षय हो जाते हैं ।। १३ ।। आत्मारूपी कमलमें ठहरनेसे मोक्षका स्वभाव अनुपम सूर्यसम झलक जाता है ।। १४ ।। आत्मा सूक्ष्म है, अतीन्द्रिय है, जब कोई स्वय उसमें ठहर जाता है व अनुभव करता है तब मुक्ति सूर्य प्रगट होता है ।। १५ ।। तब शुद्ध स्वभाव प्रकाशमान हो जाता है ।। १६ ।। परमप्रिय केवलज्ञान प्रमाण प्रगट हो जाता है ।। १७ ।। वही उद्देश्य अर्थात् प्राप्त योग्य पदार्थ है, यही परिणमन रहने योग्य है, यही प्रमाण है ।। १८ ।। मोक्ष स्वरूपमें उद्देश्य झलक जाता है ।। १९ ।। शुद्ध परिणमन रह जाता है ।। २० ।। सत्य ज्ञान

या सत्य पदार्थ रह जाता है ।। २१ ।। शुद्धात्माका प्रमाण ज्ञान स्थूल सूक्ष्म सबको जानता है ।। २२ ।। वही अनुभव करने योग्य सूर्य है ।। २३ ।। वही प्रिय सूर्य है ।। २४ ।। वही सूर्यका प्रकाश है ।। २५ ।। वही प्रमाणिक सत्य सूर्य है ।। २६ ।। वही सर्व सूर्योंमें महान् श्रेष्ठ सूर्य है ।। २७ ।।

हितकार अर्क १, हितमित परिणै कोमल अर्क २, सुभाउ अर्क ३, हितकार अर्क अर्क ४, विंद विन्यान अर्क ५, आगन्तु अर्क ६, अर्घ ऊर्घ अर्क अर्क ७, हितकार अर्क ८, हुंतकार अर्क ९, रमन अर्क १०, अर्क सुभाव हितकार अर्क ११, रंज हितकार रंज १२, जिन रमन १३, अमिय रमन १४, जिननाथ नन्द आनन्द परमानन्द अर्क १५, सुभाव सहकार दिस्टि १६, हितकार उत्पन्न रमन हितकार अर्क १७, हितकार मुक्ति १८, हितकार सिद्धि १९, हितकार सिद्ध बुद्ध २०, हितकार अर्क केवल सुभाव २१, हितकार तव २२, तत्काल उत्पन्न न्यान हितकार २३, धृति उत्पन्न न्यान हितकार २४, परम तत्तु तिअर्क प्रमाण दिस्टि हितकार २५, दर्स अदर्स दस हितकार २६, दिस्टि अदिस्टि दिस्टि हितकार २७, इस्टि अइस्टि इस्टि २८, लब्धि अलब्धि लब्धि २९, अर्क सुभाव केवल लब्धि ३०, लब्धि मुक्ति ३१, लब्धि अर्कस्य हितकार अर्क ३२-३ ।

अर्थ—आत्मारूपी सूर्य हितकारी है ।। १ ।। यह ज्ञान सूर्य आत्मा कोमल स्वभावी स्वहितमें व अपनी मर्यादामें लीन है ।। २ ।। यह स्वभाव ही से ज्ञान सूर्य है ।। ३ ।। यह हितकारी सब सूर्योंमे प्रधान ज्ञानमयी सूर्य है ।। ४ ।। यह स्वानुभव रूप सूर्य है ।। ५ ।। सम्यग्दृष्टीके भीतर अकस्मात् प्रकाशमान होनेवाला सूर्य है ।।६।। आत्माके नीचेसे ऊपर तक सर्व प्रदेशोंमें ज्ञान सूर्यका प्रकाश है ।। ७ ।। यह आत्माको सुखदाई ज्ञान सूर्य है ।। ८ ।। यह कर्मोंको होम करनेवाला सूर्य है ।। ९ ।। यह आपसे आपमें रमण करनेवाला ज्ञान सूर्य है ।।१०।। यह ज्ञान स्वभावी आत्मा हितकारी सूर्य है ।। ११ ।। इसमें आनन्दवर्द्धक आनन्द है ।। १२ ।। यह कर्म विजयी भावमें रमण करता है ।। १३ ।। यह आनन्दामृतमें रमण करता है ।। १४ ।। यही आत्मा जिनेन्द्र है व आनन्दमग्न परमानन्दमयी सूर्य सम प्रकाशित है ।। १५ ।। आत्मदृष्टि

या समदृष्टि स्वभावके प्रकाशमें सहकारी है ।। १६ ।। शुद्ध हितकारी भावको उदय रूप है, उसमें रमण करनेवाला वह हितकारी ज्ञान सूर्य है ।। १७ ।। इसीमें हितकारी मुक्ति रहती है ।। १८ ।। यहीं हितकारी सिद्धि बसती है ।। १९ ।। यह आत्मा हितकारी है सिद्ध है व ज्ञानी है ।। २० ।। यह हितकारी सूर्य केवलज्ञान स्वभावी है ।। २१ ।। उसीमें तपना हितकारी तप है ।। २२ ।। इसीमें रमण करनेसे उसी समय स्वात्म ज्ञान हितकारी झलकता है ।। २३ ।। इसीमें धैर्य या थिरता रखनेसे हितकारी ज्ञान प्रगट होता है ।। २४ ।। यही परम तत्त्व है, रत्नत्रयमयी है, यही सम्यग्ज्ञानकी प्रमाण दृष्टि है, यही मोक्षमार्गमें हितकारी है ।। २५ ।। इन्द्रिय मनसे देखनेयोग्य व न देखनेयोग्य पदार्थोंके दर्शनमें यही हितकारी है ।। २६ ।। यही सम्यग्दृष्टि व मिथ्यादृष्टि भावके देखनेमें हितकारी है ।। २७ ।। इसीके प्रेमसे उस तत्त्वमें प्रेम होता है जो अज्ञानियोंको इष्ट नहीं है ।। १८ ।। इसीके लाभसे अपूर्व लाभका लाभ होता है ।। २९ ।। यह ज्ञान सर्व स्वभाव हीसे केवलज्ञानकी लब्धिको रखनेवाला है ।। ३० ।। इसीसे मुक्तिको प्राप्ति होती है ।। ३१ ।। इसीको प्राप्तिसे आत्मारूपी सूर्यको हितकारी ज्ञानका प्रकाश होता है ।। ३२ ।।

अर्कस्य गहिर अर्क १, गम्य अगम्य गम्य अर्क २, इच्छ अइच्छ इच्छ अर्क ३, ग्रहण अग्रहण ग्रहण अर्क ४, लष्य अलष्य लष्य अर्क ५, ध्रुवस्य उत्पन्न ध्रुव अर्क ६, रहण उत्पन्न रहण अर्क ७, सहन असहन सहन उत्पन्न अर्क ८, साहन असाहन साहन उत्पन्न अर्क ९, रिष्टि अरिष्टि उत्पन्न अर्क १०, रिष्टि अरिष्टि रिष्टि अर्क समय ११, इष्टि असमय इष्टि समय इष्टि अर्क १२, सहइष्टि असह इष्टि सहइष्टि उत्पन्न अर्क १३, उत्पन्न इष्टि उत्पन्न अर्क २४, उत्पन्न इष्टि अर्क पद १५, अपद पद उत्पन्न अर्क १६, अर्थति अर्थ अर्थ उत्पन्न अर्क १७, अर्थ समर्थ अर्थ उत्पन्न अर्क १८, अर्थ समय अर्थ असमय समय उत्पन्न अर्क १९, सहकार अर्थ असहकार सहकार उत्पन्न अर्क २०, अर्थ अवकास अनन्त अवकास उत्पन्न अवकास अर्थ २१, तदर्थ उत्पन्न सदर्थ अर्क २२, अर्थ अर्थ अन्मोद अर्थ २३, अर्थ अन्मोद अन्मोद अर्थ उत्पन्न अर्क २४,

अर्थ षिपक अर्क २५, षिपक उत्पन्न षिपक उत्पन्न अर्क २६, मुक्ति हितकार उत्पन्न मुक्ति उत्पन्न अक २७, हितस्य उत्पन्न हित अर्क हितकार अर्क २८—४ ।

अर्थ—आत्मारूपी सूर्य गम्भीर ज्ञानका धारी है ॥ १ ॥ यह ऐसा ज्ञान सूर्य है जिसमें स्थूल सूक्ष्म सर्व पदार्थ एक साथ झलकते हैं ॥ १ ॥ यह ऐसा ज्ञान सूर्य है जिसमें जगतको इष्ट व अनिष्ट सर्व ही समभावसे इष्ट रूप वस्तु स्वभावसे झलक रहा है ॥ ३ ॥ यह ऐसा ज्ञान सूर्य है जिसमे जगतको हेय या उपादेय सर्व पदार्थ समरूपसे झलक रहे हैं ॥ ४ ॥ यह ऐसा ज्ञान सूर्य हे जिसमें इन्द्रियोसे देखने योग्य व न देखने योग्य सब प्रकाशमान है ॥ ५ ॥ अविनाशी आत्माके भीतर ही अविनाशो ज्ञान सूर्य झलकता है ॥६॥ परसे भिन्न परम शुद्ध आत्माके अनुभवसे ही परसे भिन्न शुद्ध ज्ञान सूर्यका प्रकाश होता है ॥ ७ ॥ जो योगी महने योग्य व न सहने योग्य सर्व उपसर्गोको सहन करता है, उसीके ज्ञान सूर्यका प्रकाश होता है ॥ ८ ॥ जो योगी सुगम साधन व कठिन साधन दोनोको समभावसे साधन करता है उसीके ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ९ ॥ जो अनुपम आत्मध्यान रूपी तलवार चलाते हैं वे ही कर्मोका नाश करके ज्ञान सूर्यको प्रगट करते हैं ॥ १० ॥ यह आत्मा रूपी सूर्य स्वय तलवार रूप है। साधन अवस्थामे कर्म काटनेका काम करती है, साध्य अवस्थामें तलवारका काम न करके भी बनी रहती है ॥ ११ ॥ यह वह प्यारा ज्ञान सूर्य है जो अपने सर्व ज्ञेयोको झलकानेमे इष्ट है, चाहे वह आत्मा हो व अनात्मा हो ॥ १२ ॥ जो योगी सहने योग्य व असहने योग्य सबमें एक साथ समभाव रखता है उसीके ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ १३ ॥ जब हितकारी शुक्ल-ध्यान होता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ १४ ॥ जब इष्ट शुद्धोपयोग प्रगट होता है तब ही आत्मसूर्यका पद झलकता है ॥ १५ ॥ सर्व पदोमें अनुपम पद जो शुद्धात्म पद है उससे ही ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥१६॥ नौ पदार्थ व रत्नत्रय धर्ममें निश्चय करनेसे व उनमें झलकते हुए शुद्धात्माके अनुभवसे ज्ञान सूर्यका प्रकाश होता है ॥ १७ ॥ जो समर्थ कारण रूप शुद्ध कारण समयसारका लाभ है उससे ज्ञान सूर्य झलकता है ॥ १८ ॥ आत्मा पदार्थको अनात्मा पदार्थसे भिन्न करके शुद्धात्मा-नुभवसे ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ १९ ॥ यद्यपि नौ पदार्थका विचार सहकारी है परन्तु इसका भी सहकारित्व छोड़कर जो केवल शुद्धात्माका अनुभव है उसीसे ज्ञान

सूर्य प्रगट होता है ।। २० ।। आत्मा पदार्थमें केवलज्ञान शक्तिरूप रहता है, उसीका प्रकाश होना ज्ञान सूर्यका उदय हे ।। २१ ।। सत्य आत्मा पदार्थका अनुभव करनेसे सच्चा ज्ञान सूर्य झलकता है ।। २२ ।। आत्मामें बारबार आनन्दका अनुभव होनेसे आत्माका प्रकाश होता है ।। २३ ।। आत्मारूपी पदार्थमें आनन्द लेते-लेते परमानन्द भावसे ही ज्ञान सूर्य झलकता हे ।। २४ ।। आत्माके द्वारा क्षायिक भाव प्रगट होता है तब क्षायिक ज्ञान सूर्य प्रगट होता ह ।। २५ ।। क्षायिक सम्यक्त्वी क्षपकश्रेणीपर चढ़कर चार घातीय कर्मोंको क्षय करके ज्ञान सूर्यको झलकाता है ।। २६ ।। यह केवलज्ञान सूर्य ही मुक्ति लाभमे हितकारी है, इसीसे मुक्ति प्रगट होती है ।। २७ ।। यह ज्ञान सूर्य परम हितकारी ह ।। २८–४ ।।

सहकार गुपित अर्क १, गुहित गुपित न्यान उत्पन्न अर्क २, गुपित विन्यान उत्पन्न अर्क ३, गुपित कमल उत्पन्न अर्क ४, गुपित रमण रंज नंद चिदानन्द परम परमानन्द उत्पन्न अर्क ५, जिन रमण जिन रंज जिननाथ रमण उत्पन्न अर्क ६, तीर्थंकर प्रभाव तिअर्थ आयरन रमण अन्मोय अवलवली इस्टि परमिस्टि चौवीस चतुष्टे चौवीस अन्मोद रमन अवल विषय अनन्तविली उत्पन्न अर्क ७, सहकार सहजोपनीत सहज सुकीय सूक्ष्म उत्पन्न अर्क ८, आचरण चरण न्यान चरण दस अवहि सम्मत उवसम बीज अनन्त उत्पन्न अर्क ९, विन्यान वीय पय पदार्थ वीय उत्पन्न अर्क १०, अंगदि अंग स्थान दिस्टि उत्पन्न अर्क ११, दिप्ति अनन्त विसेष दिस्टि अनन्त विसेष उत्पन्न अर्क १२, लष्य अलष्य लष्य उत्पन्न अर्क १३, तिअर्थ अर्थ उत्पन्न तीर्थंकर सुभाइ अर्क १४, पदवी सुद्ध उत्पन्न अर्क १५, योग आचरण उत्पन्न अर्क १६, श्री अनन्त श्री सम्यक्चरण उत्पन्न अर्क १७, अर्कस्य गुपित गुहित अर्क १८–५ ।

अर्थ—जब सूर्य आत्मा गुप्त अनुभवगम्य मोक्षमार्गमें सहकारी है ।। १ ।। जो अपने ज्ञानको आत्माकी गुफामें लीन कर देता है, आत्मामय हो जाता ह, वही ज्ञान सूर्य उत्पन्न होता है ।। २ ।। जो भेदविज्ञान द्वारा आत्मामें लीन होता है उसीके ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। ३ ।। जो कमल समान प्रफुल्लित शुद्ध आत्मामें गुप्त

हो जाता है, वहीं ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। ४ ।। जो तीन गुप्तिको रोककर आपमें रमण करता है तब आनन्द होता है । यह ज्ञानादि बढ़ते हुए परमानन्द या अनन्त सुख हो जाता है तब ज्ञान सूर्य उत्पन्न होता है ।। ५ ।। जो वीतरागभावमें रमण करता है वहीं आनन्द मानता है । शुद्ध परमात्मामें रमण करता है उसीके ज्ञान सूर्य उत्पन्न होता है ।। ६ ।। जो तीर्थंकरके प्रभावसे रत्नत्रय धर्मको समझकर उनमें आचरण करता है, रम जाता है, आनन्द पाता है तथा अनन्तबली प्रिय परमेष्ठी, चौवीस तीर्थंकरोंके अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य, अनन्तसुख इन चार चतुष्टय व अन्य चौवीसों तीर्थंकरोंके गुणोंका स्मरण कर आनन्द भोगता है उसमें मगन होता है उसके भीतरसे अत्यन्त बलवती विषयवासनाकी अनन्तशक्ति क्षय हो जाती है तब ज्ञान सूर्यका प्रकाश होता है ।। ७ ।। सहकारी ऐसा जो सहजमें झलकनेवाले स्वाभाविक अपने ही सूक्ष्म अतीन्द्रिय भावमें जो ठहरता है उसके ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। ८ ।। जो चारित्रमें आचरण करता है, ज्ञानमें आचरण करता है, उसे अवधिदर्शन हो जाता है, वही सम्यग्दर्शन होता है, शातभाव होता है, तब वीर्य अनन्त प्रगट होता है, तब ही केवलज्ञान सूर्य चमकता है ।। ९ ।। भेदविज्ञानके बीजसे व श्रुतज्ञानके पद द्वारा आत्मा पदार्थके अनुभवसे ज्ञान सूर्य उत्पन्न होता है ।।१०।। द्वादशांग वाणीके मनन करनेसे ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। ११ ।। जब अनन्तज्ञान व अनन्तदर्शन प्रगट होता है तब आत्मा सूर्यमय हो जाता है ।। १२ ।। जब इन्द्रिय व मनसे जानने योग्य स्थूल व न जानने योग्य सूक्ष्मको जान लिया जाता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। १३ ।। रत्नत्रयमें रमण करनेसे तीर्थंकरके स्वभावके समान ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। १४ ।। जब शुद्धोपयोगकी पदवीपर पहुँचता है तब ज्ञान सूर्य झलकता है ।। १५ ।। जब योगाभ्यास किया जाता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। १६ ।। जब आत्माके अनन्त ऐश्वर्यमें भले प्रकार आचरण होता है तब ज्ञान सूर्य उत्पन्न होता है ।। १७ ।। सूर्यके समान आत्माकी गुप्त गुफामें जब थिरता होती है तब ज्ञान सूर्य उत्पन्न होता है ।। १८—५ ।।

अर्कस्य पंच अर्क १, सुभाव उत्पन्न अर्क २, अर्क सुभावेन अनन्त चतुष्टय छयालीस गुण सिद्ध सुद्ध तीर्थंकर उत्पन्न अर्क सुभाव ।

अर्थ—आत्मारूपी ज्ञान सूर्यके पाँच तरहके विवेचन ऊपर किये गये । यह

ज्ञान सूर्य स्वयं स्वभावसे पैदा होता है। आत्मारूपी सूर्यके स्वभावसे अनन्त चतुष्टय सहित छियालीस गुण सिद्ध स्वभावी शुद्ध वीतराग तीर्थंकर भगवान्‌में प्रगट होते हैं, वे सूर्य स्वभावको झलका चुके हैं।

अर्क न द्रिस्यते सुभाव सव सुभाव अर्क न द्रिस्यते नर्क गत पंचम छठम सप्तम नर्क गति नीची इतर सुभावे नरक प्रथम द्वितीय तृतीय चतुर्थ प्रभावना भवति। नर्क।७।

अर्थ—जहाँ ज्ञान सूर्य नही दिखलाई पडे वही नर्क है, जहाँ आत्माका सर्व स्वभाव न दिखलाई पड़े वही नर्क है। पांचमा, छठा, सातमा नर्क बहुत नीच है क्योकि वहाँसे निकल कर कोई मोक्ष नहीं जा सकता। पहले, दूसरे, तीसरे व चौथेसे निकल कर मोक्ष जा सकता है, इसलिये ये चार उच्च हैं। सर्व नर्क ७ हैं।

अर्क सुभाव दिष्टि, इष्टि सुभाव, अनन्त दिस्टि एको उद्देस महूर्त समय भय सल्य संक आसा स्नेह लाज लोभ भय गारव आलस प्रपञ्च विभ्रम जनरञ्जन कलरञ्जन, मनरञ्जन दर्सन मोहंध आवर्ण न्यान दर्सन मोह अन्तर सुभाव सहित जेनं केनापि अर्क सुद्ध औकास संक सल्य एको उद्देस न द्रिस्यते सर्व भाव सहित एको उद्देस सहित प्रथम नरय प्रवेसं भवति। सुद्ध दिस्टि अर्क पंचमओ संपूर्ण महूर्त्त भय विलीय कछु संका जे जीव असुद्ध दिस्टि अर्क सुभाव एको उद्देस न द्रिस्यते। सर्व सहकार महुर्त समय प्रथम नरय।

अर्थ—ज्ञान सूर्य स्वभावका दर्शन अपना प्रिय स्वभाव है, अनन्त दर्शन सहित है, एक देश दो घडी भी जिनको नही दिखता है, जो भय, शल्य, शंका, आशा, स्नेह, लाज, लोभ, घमण्ड, आलस्य, जगप्रपञ्च, भ्रमजाल, मानवोको रागी करनेका भाव, शरीरके सुखमें मगन रहनेका भाव, मनको राजी रखनेका भाव, दर्शनमोहसे अज्ञान भाव, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, चारित्रमोह व अन्तरायके उदयका स्वभाव। इत्यादिके वशीभूत है, उनको शुद्ध ज्ञान सूर्य शङ्का व शल्यके कारण कुछ भी नही दिखता है, वे जीव प्रथम नरकमें जाते हैं। शुद्ध सम्यग्दर्शन सहित पाँच प्रकार ज्ञान सूर्य पूर्ण स्वभाव भय रहित है, उसको जो शंकाशील होनेसे संयमी भी

एक देश नहीं अनुभव कर सकते है, क्योंकि वे मिथ्यादृष्टि हैं। इसलिये वे ऊपर कथित भावोंके कारण मुहूर्तके भीतर नरकायु बाँधकर प्रथम नर्क जाते हैं।

नोट—यहाँ नर्कगति सम्बन्धी २४ स्थान कहे हैं जिनको हम पहले नकशेमें दे चुके हैं।

सुद्ध दृष्टि क्षीन सुभाई अर्क सुभाव अनन्त अन्तर रहित दुःष असहनी सुभाइ अर्क न दृश्यते नर्क।

अर्थ—नर्क वही है जहाँ शुद्ध सम्यग्दर्शन सहित क्षायिक स्वभावधारी सूर्य स्वभावके समान, वीतराग, अन्तर रहित अनन्त कालतक दुःखको नही प्राप्त करनेका स्वभाव अर्थात् अनन्तसुख स्वभावी सूर्यसम आत्माका अनुभव नहीं होता है।

जे जीवा अर्क अनत सुभाव सुद्ध दिस्टि एकोद्देसन द्रिस्यते ते नर्क।

अर्थ—जिन जीवोंको अनन्त स्वभावधारी शुद्ध दर्शन सहित ज्ञान सूर्यमयी आत्मा नही दिखलायी पडता है, वे ही नर्कमे रहनेवाले जीव हैं, नारकोंके समान है।

नर्क गति आउ गलण तुच्छ रहै आगतस्य दिष्टि आउ क्षीण मनुष्य गति।

अर्थ—नर्कगतिमे आयुके भीतर जब छः मास शेष रहते है, तब वहाँ यदि मनुष्य आयु बाँध लें तो वहाँसे निकल कर नरकायु क्षय होनेपर मनुष्य गतिमे जीव आ सकता है।

अर्क सुभाव ग्रहण अनन्त विसेष न्यान प्रकारेण न्यान विसेष सुयं सद्भाव निरूपणं।

अर्थ—जिसको ज्ञान सूर्य स्वभावी आत्माका ग्रहण या अनुभव हो जाता है उसमें अनन्त विशेष होते है, ज्ञानके अनेक भेदोमें ज्ञानके विशेष होते हैं। उसका स्वय यथार्थ स्वभाव कहा जाता है।

अर्क सुभाव दर्स १, अदर्स दर्स उत्पन्न अर्क २, दर्स सर्व परिणाम उत्पन्न अर्क ३, दर्स कमल सुभाव उत्पन्न अर्क ४, भय विनस्य परिणाम सुभाव उत्पन्न अर्क ५, दर्स कमल कन्द अग्र उत्पन्न अर्क ६, दर्स गिरिकन्द अग्र परिणाम उत्पन्न अर्क ७, दर्स अंगदि

अंग सर्वन्य परिणाम सुभाव उत्पन्न अर्क ८, दर्स कमल कलन न्यान विन्यान परिणाम उत्पन्न अर्क ६, न्यान योग उत्पन्न दिस्टि उत्पन्न अर्क १०, इस्ट परमेस्टि उत्पन्न अर्क ११, अवधिले उत्पन्न अर्क १२ अन्यान अन्मोय उत्पन्न षिपक अर्क १३, अन्यान विरोधक दिस्टि अर्क १४, अन्यान विलयन्ती उत्पन्न अर्क १५, न्यानेन न्यान अन्मोद् रमण कम्म विलयं गत १६, उत्पन्न मिलि उत्पन्न कम्म विली उत्पन्न अर्क सुभाइ १७, उत्पन्न दर्स हितयार सहकार दिस्टि उत्पन्न अर्क १८, मनपर्जय सुभाव उक्त दर्स उत्पन्न अर्क १६, लब्धि केवलन्यान विमल अर्क २०, न्यान अनन्त दर्स अनन्त लब्धि उत्पन्न अर्क २१, दान लाभ लब्धि अनन्त उत्पन्न अर्क २२, भोग उपभोग लब्धि उत्पन्न अर्क २३, वीर्ज विन्यान समकित सुभाव समय सह-कार समय बाधा रहित २४।

अर्थ—ज्ञान सूर्यमें आत्माके स्वभावका दर्शन होता है ।। १ ।। जब इन्द्रिय व मनसे न देखने योग्य आत्माका अनुभव होता है तब ज्ञान सूर्यका प्रकाश होता है ।।२।। जब सर्व गुण व पर्यायोका समूह रूप आत्माका दर्शन होता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। ३ ।। जब प्रफुल्लित कमलके समान स्वभाव धारी आत्माका दर्शन होता है तब ज्ञान सूर्यका उदय होता है ।। ४ ।। जब सर्व भयरहित निर्भय स्वभावमें परि-णमन होता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। ५ ।। जब आत्मारूपी कमलके मूल स्वभावका अनुभव होता है तब ज्ञान सूर्य झलकता है ।। ६ ।। जब आत्माके सम्यग्-दर्शन रूपी पर्वतकी गुफामे विश्राम होता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। ७।। जब द्वादशांग वाणीके द्वारा सर्वज्ञ स्वभावी आत्माका अनुभव होता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। ८ ।। जब आत्मारूपी कमलमें ठहर कर भेद विज्ञानके द्वारा आत्मानुभव होता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। ९ ।। ज्ञान योगके द्वारा आत्मदर्शन होनेसे ज्ञान सूर्य प्रकाश होता है ।। १० ।। पाँच परमेष्ठियोंके स्वरूपके ध्यानसे ज्ञान सूर्य झलकता है ।। ११ ।। अवधिज्ञानको लेकर ज्ञान सूर्य एक देश प्रगट होता है ।।१२ ।। अज्ञानमें रमण भाव जो पैदा होता है उसके क्षय कर देनेसे ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। १३ ।। जब मिथ्या ज्ञानको रोकनेवाली सम्यग्ज्ञानकी दृष्टि पैदा होती है तब

ज्ञान सूर्यका उदय होता है ।। १४ ।। अज्ञानका क्षय होनेपर ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। १५ ।। ज्ञानसे ज्ञानके भीतर आनन्दित होकर रमण करनेसे कर्मोंका क्षय होता है ।। १६ ।। जैसे-जैसे ज्ञानकी शुद्धि बढ़ती है कर्मोंका आस्रव दूर होता है व ज्ञान सूर्यका स्वभाव प्रगट होता है ।। १७ ।। सम्यग्दर्शनके प्रकाशसे हितकारी व सहकारी आत्माका दर्शन होता है उससे ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। १८ ।। मनःपर्ययज्ञान स्वभावके प्रगट होनेपर जब आत्म दर्शन होता है उससे ज्ञान सूर्य चमकता है ।।१९।। उस विमल ज्ञान सूर्यमें केवलज्ञानकी लब्धि प्रगट होती है ।। २० ।। उस ज्ञान सूर्यमें अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शनकी लब्धि हो जाती है ।। २१ ।। उस ज्ञान सूर्यमें अनन्त दान व अनन्त लाभकी लब्धि प्रगट होती है ।। २२ ।। उस ज्ञान सूर्यमें अनन्त भोग अनन्त उपभोगकी लब्धि प्रगट होती है ।। २३ ।। उस ज्ञान सूर्यमें अनन्तवीर्य, क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचारित्रकी लब्धि हो जाती है। ऐसी नौ लब्धियोंका धारक ज्ञान सूर्य केवली अरहन्त भगवान बाधा रहित निराकुल रहता है ।। २४ ।।

सहकार उत्पन्न अर्क २५, राग जन रंजन विली उत्पन्न अर्क २६, कलरंजन दोष विली उत्पन्न अर्क २७, मनरंजन गारव विली उत्पन्न अर्क २८, न्यान आवर्न विली उत्पन्न अर्क २९, दर्सन आवर्न विली उत्पन्न अर्क ३०, मोहन आवर्न विली उत्पन्न अर्क ३१, न्यान अन्तराय विली उत्पन्न अर्क ३२, आशा स्नेह लाज लोभ गारव आलस प्रपञ्च विभ्रम विलयं गत उत्पन्न अर्क ३३, मिथ्या कषाय मल दोष विली उत्पन्न अर्क ३४, भय सल्य संक विलयन्ति उत्पन्न अर्क ३५, दर्स अनन्त दर्स सुभाव उत्पन्न अर्क ३६, अनंत सुभाव दर्स नृत अन्मोद न्यान उत्पन्न अर्क ३७, अनन्त दर्स विसेष नृत अन्मोद न्यान उत्पन्न अर्क ३८, लष्य अलष्य लष्य अन्मोय न्यान उत्पन्न अर्क ३९, जीवंता अनन्त परिणाम नृत ध्रुव न्यान अन्मोद तदि अनंत न्यान अन्मोद चरण सुभाव अर्क ४०, दर्सन न्यान चरण भेद उत्पन्न अर्क ४१, सम्यक् दर्स लोय अवलोक सम्यक् उत्पन्न अर्क ४२, लोकालोक नृत ध्रुव न्यान सम्यक् उत्पन्न अर्क ४३, लोक नृत आचरण न्यान अन्मोद उत्पन्न अर्क ४४, सम्यक

अवलोक नृत्य चरण अनन्त दर्स अर्क ४५, अनन्तानन्त दर्स नृत अनन्त न्यान उत्पन्न अर्क ४६, अनन्त नृत सुभाव आचरण चरण न्यान अन्मोद अवल वली विषय गलिणं न्यान चरण वीर्ज विन्यान उत्पन्न अर्क ४७, श्री अनन्तानन्त उत्पन्न श्री हितकार श्री सहकार श्री मुक्ति श्री समदर्स श्री समकित दर्स उत्पन्न अर्क ४८, श्री समकित ध्रुव रमण न्यान जिननाथ अन्मोद न्यान उत्पन्न न्यान अर्क ४९, श्री सम्यक् चरण चरिय गुपित न्यान अन्मोद अवल चरण श्री सम्यक् चरण नंतानत चतुष्टय सहित उत्पन्न अर्क ५०, विमल केवल न्यान विमल सुभाव अर्क ५१, श्री मुक्ति श्री अन्मोद न्यान श्री सुभाव मुक्ति ५२, श्री अर्थ तिअर्थ श्री अन्मोद न्यान तीर्थंकर भवति तिअर्थ आयरेण तीर्थंकर मुक्ति प्रवेस सिद्ध तीर्थंकर अर्क ५३, सुभावेन न्यान विन्यान सुद्ध अर्क ५४, सुयं षिपक भावेन उत्पन्न नंतानंत नंत चतुष्टै सहित अर्क ५५, हितकार न द्रिस्यते स नर्क गतिं ५६, अनंतानंत दुःख दारुण असहनी संसारिणो सुभाव नरकादि दुःख संतत अनंत विसेष नरक दुतिय ५७।

अर्थ—ध्यानकी सहायतासे ज्ञान सूर्य प्रकट होता है ॥ २५ ॥ जनसमूहको राजी रखनेका राग जब विला जाता है तब ज्ञान सूर्य उत्पन्न होता है ॥ २६ ॥ शरीरके सुखमे मगनताका दोष जब दूर हो जाता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ २७ ॥ मनके भीतर मद रखके प्रसन्न होनेका भाव जब चला जाता है तब ज्ञान सूर्य झलकता है ॥ २८ ॥ ज्ञानावरण कर्मके क्षय होनेपर ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ २९ ॥ दर्शनावरण कर्मके क्षय होनेपर ज्ञान सूर्य चमकता है ॥ ३० ॥ मोहनीय कर्मके क्षय होनेपर ज्ञान सूर्य झलकता है ॥ ३१ ॥ जब ज्ञानादिमें अन्तराय कारक कर्म क्षय होता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ३२ ॥ भोगोकी आशा, स्नेह, लज्जा, लोभ, माया, घमण्ड, प्रमाद, प्रपंच, भ्रमभाव ये सब जब विला जाते है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ३४ ॥ सात भय, तीन शल्य व शंकाएं जब चली जाती हैं तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ३५ ॥ जब अनन्त दर्शन स्वभाव धारी आत्माका अनुभव होता है तब ज्ञान सूर्य प्रकाश करता है ॥ ३६ ॥ अनन्त दर्शन

स्वभावी आत्माका सत्य स्वरूप अनुभव करते हुए आनन्द झलकता है उससे जो ज्ञान होता है उसमें ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। ३७ ।। अनन्त दर्शनधारी आत्मामें विशेष लीनतासे जो सच्चा आनन्द व ज्ञान होता है उससे ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। ३८ ।। इन्द्रिय मनसे गोचर व अगोचर पदार्थोंको जानते हुए आनन्दमयी ज्ञानसे ज्ञान सूर्य चमकता है ।। ३९ ।। सदा जीनेवाले सत्य अविनाशी अनन्त शक्ति-में परिणमन करनेवाल आत्माका ज्ञानमें जब आनन्दका अनुभव होता है तब अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, वीतराग चारित्र स्वभावधारी ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। ४० ।। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र ऐसे भेदरूप रत्नत्रयके द्वारा ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। ४१ ।। जब सम्यक्दर्शनके प्रकाशसे लोकालोकको द्रव्य दृष्टिसे यथार्थ देखा जाता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। ४२ ।। लोकालोकके भीतर सत्य अविनाशी पदार्थोंका जब ज्ञान होता है तब ज्ञान सूर्य झलकता है ।। ४३ ।। लोकके द्रव्योंको सत्य देखकर स्वरूपमें आचरण करनेसे जो ज्ञानानन्द होता है उससे ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। ४४ ।। सम्यक्चारित्रके द्वारा लोकको सत्य देखते हुए वीत-राग भावसे अनन्तदर्शन गुणधारी ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। ४५ ।। जब यथार्थ अनन्तदर्शन व अनन्तज्ञान प्रगट होते हैं तब ज्ञान सूर्य प्रकाशित होता है ।। ४६ ।। आत्माके अनन्त सत्य स्वभावमें आचरण करनेसे ज्ञानानन्द झलकता है तब बडी बलवती विषयवासना गल जाती है तब ज्ञानका वीर्य सहित अनुभव करनेसे ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। ४७ ।। अनन्तानन्त शक्तिधारी परम हितकारी परम सहकारी परमैश्वर्यधारी मोक्षरूपी लक्ष्मीको समभावसे देखते हुए जब सम्यक् आत्मानुभव होता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। ४८ ।। जब शुद्ध सम्यग्दर्शनमें निश्चित रूपसे रमण करते हुए श्री जिनेन्द्रके स्वभावके भीतर आनन्द सहित ज्ञान रमण करता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। ४९ ।। जब सम्यग्दर्शनका आचरण करते हुए गुप्त आत्मज्ञानमें आनन्द प्रगट होता है, तब अनुपम बल सहित चारित्र होता है, उसीमें भले प्रकार रमण करनेसे अनन्तज्ञानादि चार चतुष्टय सहित ज्ञान सूर्य प्रगट हो जाता है ।। ५० । निर्मल केवलज्ञान स्वभावको रखनेवाला ज्ञान सूर्य है ।।५१।। श्री मोक्ष–लक्ष्मीके आनन्द सहित व ज्ञान सहित आत्माका स्वभाव ही मुक्ति है ।।५२।। रत्नत्रय सहित परम पदार्थ आत्मामें जो आनन्द सहित ज्ञानानुभव करते हैं, वे तीर्थंकर हो जाते हैं, वे ही तीर्थंकर निश्चय रत्नत्रयका आचरण करते हुए मोक्षमें प्रवेश करके सिद्ध तीर्थंकर हो जाते हैं, वे ही ज्ञान सूर्य हैं ।। ५३ ।। शुद्ध ज्ञान सूर्यमें स्वाभाविक

ज्ञान रहता है ।। ५४ ।। स्वय क्षायिक भाव सहित होनेसे उस सूर्यके अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य चतुष्टय प्रकाशमान रहते हैं ।। ५५ ।। ऐसा हितकारी सूर्य जहाँ न दिखलाई पडे वहीं नर्क है ।।५६।। जहाँ अनन्तानन्त भयानक दु:ख हैं जिनका सहन करना कठिन है ऐसी सासारिक अवस्था दु खोकी परिपाटीके अनन्त भेदोको रखनेवाली सो ही दूसरा नर्क है ।। ५७ ।।

भावार्थ—जहाँ आत्मज्ञान नही है वहीं अनन्त क्लेश है, वही नर्क है, नर्क समान असहनीय कष्टोको मिथ्यात्वी जीव पाते हैं ।

जे जीव सुद्ध दिष्टिनो उत्पन्न, अर्कस्य सर्व विसेष अनन्तानन्त हितकार। उत्पन्न न्यान १, सुद्ध न्यान २, समय न्यान ३, परिणै न्यान ४, उत्पन्न न्यान ५, न्यान हितकार ६, न्यान सहकार ७, न्यान विन्यान ८, न्यान पद न्यान ९, अर्थ न्यान १०, तिअर्थ न्यान ११, समर्थ न्यान १२, समय अर्थ न्यान १३, सहकार न्यान १४, अवकास न्यान १५, अन्मोद न्यान १६, कम्म षिपक न्यान १७, मुक्ति सुभाव अर्क विसेष दृष्टते १८, सर्व सर्वेपि हितकार अर्क १९, किछु विसेष किछ ससंक, सत्य, असत्य, आसा, स्नेह, लाज, भय, गारव, आलस, प्रपंच, विभ्रम, जनरंजन. राग कलरंजन दोष मनरंजन गारो दर्सन मोहंध न्यानावर्णि दर्सनावर्णि मोहन आवर्न अंतर सहकार किछ सुभाव अर्क सुभाव महूर्त दोइ अर्क सुभाव विलीयते सभव्य नर्कगता, दुतीय नर्क पतनं भवतिजावत नर्क दूजे तावत व अर्क सुभाव सहित दिष्टि, दुष असहनी सहित स्थिति आउ विलीयते तुच्छ आउ प्रवर्तते आउ गति चय मनुष्य गति ॥ २० ॥

अर्थ—जिस जीवको शुद्ध सम्यग्दर्शनका लाभ नही है वह ज्ञान सूर्यको ठीक नही जानता । ज्ञान सूर्य अनन्तानन्त गुण पर्यायका धारी है, हितकार है, जहाँ यथार्थ ज्ञान झलकता है ।। १ । जो शुद्ध ज्ञान स्वरूप है ।। २ ।। आत्मज्ञान सहित है ।।३।। स्वसवेदन रूप है ।। ४ ।। ज्ञानके प्रकाश सहित है ।। ५ ।। आत्म हितकारी ज्ञान रूप

है ।। ६ ।। केवलज्ञानको सहकारी ज्ञान सहित है ।। ७ ।। भेद विज्ञान मय है ।।८।। जहाँ ज्ञानमें ज्ञानकी स्थिति है ।। ९ ।। जो परम पदार्थके ज्ञान सहित है ।। १० ।। रत्नत्रय सहित ज्ञानमय है ।। ११ ।। समर्थ ज्ञानमय है ।। १२ ।। परमात्म ज्ञान सहित है ।। १३ ।। आत्माको सहायक ज्ञानमय है ।। १४ ।। अनन्त ज्ञान शक्ति धारक है ।। १५ ।। आनन्द सहित ज्ञानमय है ।। १६ ।। कर्म क्षयकारी ज्ञान सहित है ।। १७ ।। जहाँ मोक्षका स्वभाव विशेष ज्ञान सूर्य अनुभवमें आता है ।। १८ ।। सर्व प्राणियोका हितकारी सूर्य जाननेमें आता है ।। १९ ।। ऐसे ज्ञान सूर्य आत्माका स्वरूप कुछ विशेष जान ले कि यह तो जगत रूप है, जड़ कुछ है ही नही, या कुछ शकारूप जाने कि आत्मा है या नहीं या कैसा ह, सत्य असत्य मिला हुआ जाने। ऐसा मिथ्यादृष्टी जीव आशा, स्नेह, लज्जा, भय, मद, प्रमाद, प्रचञ्च, भ्रम, जन रजन राग, शरीर रजन दोष, मन रजन भेदमें फँसा, दर्शनमाहके उदयसे अन्ध ज्ञानावर्ण, दर्शनावर्ण, चारित्र मोह, अन्तरायके उदय सहित होता हुआ दो घड़ी भी ज्ञान सूर्यके स्वभावको अनुभव नही करता है। उसका ज्ञान स्वभाव मलीन होता है। वह भव्य जोव नर्क जाता है, दूसरे नर्कमें पतन पाता है। जबतक दूसरे नर्कमे है तबतक मिथ्यात्व भावमें ज्ञान सूर्यके स्वभावको अनुभव नहीं कर सकता है, असह्य कष्ट भोगता है। स्थिति पूरी करके जब छ मासकी आयु शेष रहती है तब मनुष्य आयु बाँधकर आयुके क्षयके पोछे मनुष्यगतिमें आकर जन्म धारण करता है ।।२०।।

अवधिलै उत्पन्न अर्क सुभाव १, सर्व हितकार न्यान अन्मोद २, सुयं उत्पन्न न्यान अन्मोद ३, षिपक अन्यान विरोध दिस्टि ४, न्यान अन्मोद अवलवली विषय गली ५, अन्मोद अन्मोद न्यान ६, अवलवली न्यान ७, अन्मोद न्यान समय न्यान ८, अवगाहन न्यान बाधा रहित ९, अवगाहन अगुरुलघु सुकीय सुभाव समय सहकार १०, तारणतरण हित मित परिनै ११, कोमल विसेष अर्क सुभाव १२, उक्त अन्मोद अनन्तानन्त १३, सल्य संक विवर्जित राग विगत दुष्य विली गारौ षिपक १४, दर्स अदस दर्स १५, माया मिथ्या निदान सल्य रहित १६, कषाय मल विली १७, कषाय जिन १८, कषाय राग जनरंजन रमण आनन्द सहित विषय मन विली १९, दर्स

अनन्त दर्स न्यान अनंत नृत चरण अनंत चरण चारित्र २०, श्री समय दर्स २१, श्री समय हितकार २२, नृत श्री सम चरण चरित्र हितकार २३, यस्य स्थान कर्मादि सहित तस्य स्थान न्यान अन्मोद कम्म विलयंति २४, हितकार न्यान २५, अन्मोद न्यान २६, दिस्टि न्यान २७, इस्टि न्यान २८, रस्टि न्यान २६, रिस्टि न्यान ३०, सम इस्टि न्यान ३१, सह इस्टि न्यान ३२, उत्पन्न दिस्टि न्यान ३३, सहकार दिस्टि न्यान ३४, अवकास इस्टि न्यान ३५, अनन्त इस्टि न्यान ३६, अन्मोद इस्टि न्यान ३७, कम्म विलीतं मुक्ति इस्टि न्यान ३८, सब्दपर न्यान ३६, असब्दसर न्यान ४०, गुपित सर न्यान ४१, प्रगट सर कमल हितकार ४२, स्थान हितकार ४३, अर्थ हितकार ४४, परिणाम हितकार ४५, उद्देस उत्पन्न हितकार ४६, परिणै उत्पन्न हितकार ४७, प्रमाण उत्पन्न हितकार ४८, उत्पन्न उत्पन्न हितकार ४६, उत्पन्न हितकार हितकार ५०, उत्पन्न सहकार हितकार ५१, उत्पन्न विन्यान हितकार ५२, उत्पन्न सहकार हितकार ५३, उत्पन्न जिन हितकार ५४, उत्पन्न परम जिन हितकार ५५, हितकार कोडाकोडी हितकार ५६, न्याय सुन्य सुन्य प्रवेस ५७, कोडाकोडी सहकार हितकार ५८, कोडि अन्मोद न्यान ५६, संक सल्य भय विली उत्पन्न केवल सुभाइ ६०, मनपर्जय दिसि ६१, केवल अन्मोद न्यान ६२, तिअर्थ आयरन तीर्थङ्कर भवति ६३, तिअर्थ हितकार आयरन तीर्थंकर ६४, सुयं कलित सुक्कलेस्या तीर्थंकर भवति ६५, अर्कस्य अनन्त विसेष दिस्यते न्यान विन्यान अर्क सुभाव ६६, किछु संक सल्य राग दोष वंधान सहकार न्यान उत्पन्न अर्क सुभाव किछु विसेष मुहूर्त त्रितियं अन्तर न्यान उत्पन्न अर्क न दिस्यते विस्मरण भवति तदि त्रितिय नरय पतनं भवति ६७।

अर्थ—मनुष्य जन्ममें कुछ कालकी मर्यादा पीछे सम्यग्दर्शन होता है तब ज्ञान सूर्यका प्रकाश हो जाता है ।। १ ।। सर्व हितकारी ज्ञानमें आनन्द झलक जाता

है ।। २ ।। वह ज्ञानानन्द स्वयं आत्मासे परकी सहायता बिना होता है ।। ३ ।। अज्ञानकी व विपरीत ज्ञानकी श्रद्धा मिट जाती है ।। ४ ।। ज्ञानमें आनन्द अनुभव करनेसे बडी बलवती विषयसुखकी वासना गल जाती है ।। ५ ।। तब ज्ञानमें बार-बार आनन्द आता है ।। ६ ।। ज्ञान अनुपम बलधारी हो जाता है ।। ७ ।। ज्ञानानन्द-में आत्माका ज्ञान होता है ।। ८ ।। यह अनुभव होता है कि ज्ञान अनन्त शक्तिधारी बाधा रहित है ।। ९ ।। आत्माके स्वभावमें अवगाहन गुण है, अगुरुलघु गुण है, यह अगुरुलघु गुण आत्माके स्वभाव परिणमनमें सहकारी है ।। १० ।। इस आत्मा-में अरहन्त पदके होनेकी शक्ति है जो तारणतरण है व हितमित वाणी कहते हैं ।। ११ ।। इस ज्ञान सूर्यका स्वभाव परम कोमल मार्दव गुण सहित है ।। १२ ।। आत्मामें अनन्त आनन्द भरा है ।। १३ ।।

आत्माके स्वभावमें शल्य, शका, भय नही है, न कोई राग है, न दुःख है, न कोई मद है ।। १४ ।। आत्मा अतीन्द्रिय भावको देखनेवाला है ।। १५ ।। इसमें माया, मिथ्या, निदान शल्यें नही हैं ।। १६ ।। कषायका मैल भी नही है ।। १७ ।। यह कषायोको जीतनेवाला है ।। १८ ।। इसके अनुभवसे कषायका राग व लोगोको राजी करनेका आनन्द व विषयोकी इच्छा व मनकी चञ्चलता विला जाती है ।।१९।। अनुभवमे ऐसा आता है कि यह आत्मा अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान व यथाख्यातचारित्र व अनन्त काल तक स्वरूपाचरणचारित्रका धारी है ।। २० ।। यह आत्माके ऐश्वर्य-को आपसे देखनेवाला है ।। २१ ।। आत्माके स्वरूपके प्रकाशके लिये यही आत्मज्ञान हितकारी है ।। २२ ।। यथार्थ परम सम भाव रूप चारित्रमें हितकारी है ।। २३ ।। जिसके प्रदेशोमे कर्मोंकी सत्ता होती है उसके प्रदेशोसे कर्म ज्ञानानन्दके अनुभवसे क्षय हो जाते ह ।। २४ ।। आत्मज्ञान बडा हितकारी है ।। २५ ।। आनन्दमय ज्ञान है ।। १६ ।। यही सम्यग्ज्ञान है ।। २७ ।। यही प्रिय ज्ञान है ।। २८ ।। यही रसीला स्वादिष्ट ज्ञान है ।। २९ ।। यही ज्ञान कर्म क्षयको खड्गके समान है ।। ३० ।। यही समभाव सहित प्रिय ज्ञान है ।। ३१ ।। यह सदा साथ रहनेवाला प्रिय ज्ञान है ।।३२।। इसीसे दर्शन-ज्ञान बढते है ।। ३३ ।। दर्शनज्ञानके प्रकाशको यही सहकारी है ।।३४।। अनन्त ज्ञानके लाभके लिये यही प्रिय ज्ञान है ।। ३५ ।। इसके प्रिय ज्ञानमें अनन्त शक्ति है ।। ३६ ।। यह प्रिय ज्ञान आनन्द सहित है ।। ३७ ।।

यह वह प्रिय आत्मज्ञान है जिससे कर्मका क्षय करके मोक्षका लाभ होता

है ॥ ३८ ॥ शब्दोके द्वारा शब्दोंके सरोवरमें मगन होनेसे यह आत्मज्ञान प्रगट होता है ॥ ३९ ॥ शब्द रहित मनन रूपी सरोवरमें डूबनेसे भी यह आत्मज्ञान प्रगट होता है ॥ ४० ॥ मनन रहित गुप्त आत्मामें लय होनेसे यह आत्मज्ञान प्रगट होता है ॥ ४१ ॥ इसीके द्वारा प्रकाशित आत्मा रूपी सरोवरमें आप ही कमलके समान हितकारी प्रगट होता है ॥ ४२ ॥ जिस पदमे हो वही यह आत्मज्ञान हितकारी है ॥ ४३ ॥ आत्मा पदार्थका यह ज्ञान परम हितकारी है ॥ ४४ ॥ शुद्ध परिणामोंके रखनेमें यह आत्मज्ञान हितकारी है ॥ ४५ ॥ इसीसे अपना मोक्षका हितकारी प्रयोजन सिद्ध होता है ॥ ४६ ॥ इसीसे हितकारी आपसे आपमें परिणमन रहता है ॥४७॥ यही आत्मज्ञान केवलज्ञान आदि प्रमाण ज्ञानोके उत्पन्न करनेमें हितकारी है ॥ ४८॥ इस आत्मज्ञानसे सदा ही हितकारी परिणति होती है ॥ ४९ ॥ इससे बार-बार हित होता है ॥ ५० ॥

यह आत्मज्ञान सर्व हितमें सहायक है ॥५१॥ विशेष ज्ञानके होनेमें यह आत्मज्ञान हितकारी है ॥५२॥ आत्मीक शुद्ध पदके उत्पन्न होनेमें यह ज्ञान हितकारी है ॥५३॥ इसीसे वीतरागी साधुभाव पैदा होता है ॥५४॥ इसी आत्मज्ञानके अनुभवसे जिनेन्द्र अरहन्त होता ह ॥५५॥ करोडो हितकारी ऋद्धियोके उत्पन्न होनेमें यह ज्ञान हितकारी है ॥५६॥ वीतराग शून्य ज्ञानके द्वारा रागादिसे शून्य शुद्ध आत्मामें लीनता होती है ॥५७॥ करोडो प्रकारके हितोमें यह आत्मज्ञान सहायक है ॥५८॥ इसी आत्मज्ञानसे करोड़ शक्तिधारी आनन्द होता है ॥५९॥ इसी आत्मज्ञानके अनुभवसे जब सर्व शकाएँ शल्यें व भय विला जाते हैं, तब केवलज्ञानका स्वभाव प्रगट हो जाता है ॥६०॥ इसी आत्मज्ञानसे मन·पर्यय तक झलक जाता है ॥६१॥ इसीसे शुद्ध केवल आनन्दमय ज्ञान हो जाता है ॥६२॥

इसीके द्वारा रत्नत्रयमें आचरण करनेसे तीर्थंकर कर्मका बन्ध होता है तब ही तीर्थंकर होता है ॥६३॥ इसी आत्मज्ञानसे रत्नत्रयमें यथार्थ आचरण करनेसे तीर्थंकर हो जाता है ॥६४॥ जहाँ स्वयं आपसे आपका अनुभव हो व शुक्ललेश्या हो, ऐसा तेरहवाँ गुणस्थान हो वही तीर्थंकर आत्मज्ञानसे ही होता है ॥६५॥ तब अरहन्त तीर्थंकरमें ज्ञान सूर्यके अनन्त विशेष दिखलाई पड़ते हैं। ज्ञानमयी सूर्यका स्वभाव झलक जाता है ॥६६॥ जब कोई तीर्थंकर नामकर्म बाँधनेवाले भव्यको जो क्षयोपशम सम्यक्त्वी हो, क्षायिक न हो, कोई शंका या शल्य पैदा हो जाती है।

रागद्वेष सहित ज्ञान हो जाता है, सूर्य स्वभाव मलीन हो जाता है। मिथ्यात्वका उदय आ जाता है। तीन मुहूर्त कुछ अधिक तक अंतरंगमें ज्ञान सूर्यका अनुभव नहीं रहता है। वह आत्माके शुद्ध स्वभावको भूल जाता है तब नर्क आयु बांधनेवाला तीर्थंकर नाम कर्मकी सत्तावाला जीव तीसरे नर्क चला जाता है।

भावार्थ—तीसरे नर्कसे निकल कर तीर्थंकर हो सकता है। ऐसा क्षयोपशम सम्यक्त्वी मनुष्य मरनेके मुहूर्त पहले मिथ्यादृष्टी हो जाता है, फिर नर्क जाकर एक अंतर्मुहूर्त अपर्याप्त अवस्थामें रहता है। पर्याप्त होनेपर सम्यक्त्वी हो जाता है। इसी अपेक्षासे यहाँ कहा गया है कि तीन मुहूर्त कुछ अधिक तक वह ज्ञानी अज्ञानी हो जाता है, आत्मा का अनुभव नहीं कर पाता है।

जदि त्रितिय अर्क तदि अर्क सुभाव सहित दुःख दिस्टि उत्पन्न सहित अनन्तानन्त सहित अर्कस्य न्यान सहकार स्थिति आउ बंधान षिपक तुच्छ उत्पन्न मुक्त अर्क सुभावेन चै मनुष्य गति उत्पन्न।

अर्थ—तीसरे नर्क जाकर वहाँ ज्ञान सूर्यका अनुभव सम्यक्त्व होनेपर हो जाता है। तीसरे नर्कका अनन्त दुःख तो वह जीव सहता है परन्तु आत्मज्ञान साथमे रहता है। नर्कको स्थिति पूरी करके छः मास शेष रहनेपर मनुष्य आयु बाँधकर सम्यग्दर्शनके साथ आत्मज्ञानको लिये हुये नर्कसे चयकर मनुष्य गतिमे उत्पन्न होता है।

ते अर्क रमण १, न्यान सहकार अर्क २, न्यान कमल अर्क ३, न्यान उक्त अर्क ४, न्यान परिणै अर्क ५, न्यान प्रमाण अर्क ६, न्यान वयण अर्क ७, न्यान दर्स अर्क ८, न्यान सुभाव अर्क ९, न्यान रंज अर्क १०, न्यान रमण अर्क ११, न्यान आनंद अर्क १२, न्यान अन्मोद अर्क १३, न्यान हितकार अर्क १४, न्यान सहकार अर्क १५, न्यान पयोग अर्क १६, न्यान दिस्टि अर्क १७, न्यान कमल अर्क १८, न्यान कलन अर्क १९, न्यान मिलन अर्क २०, न्यान इस्टि अर्क २१, न्यान रस्टि अर्क २२, न्यान रिस्टि अर्क २३, न्यान सम इस्टि अर्क २४, न्यान सह इस्टि अर्क २५,

न्यान उत्पन्न इस्टि अर्क २६, न्यान सह्कार अर्क २७, न्यान अवकास अर्क २८, न्यान अनंत अर्क २६, न्यान अन्मोद् अर्क ३०, न्यान षिपक अर्क ३१, न्यान लंकृत अर्क ३२, न्यान विन्यान अर्क ३३, न्यान मई अर्क ३४, न्यान अर्क ३५, अर्क नंत प्रकार ३६, अर्क सुयं रमण अर्क ३७, अर्क सुयं मिलन अर्क ३८, अर्क अन्मोद् मुक्ति अर्क ३६, आचरण न्यान अन्तर रहित अर्क ४०, सह्कार रहित अर्क ४१, सल्य रहित अर्क ४२, भय रहित अर्क ४३, मल रहित अर्क ४४, कषाय रहित अर्क ४५, मिथ्या रहित अर्क ४६, त्रिषय रहित अर्क ४७, विली मन त्रिषय अर्क ४८, अन्यान विली अर्क ४६, न्यान अन्मोद् तीर्थंकर ५०, तिअर्थ आयरण तीर्थंकर ५१, सह्कार अर्क तीर्थंकर ५२, त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ५३, अन्मोद् न्यान ५४।

अर्थ—मनुष्य गतिमें तीर्थंकर नामकर्म बन्ध प्राप्त सम्यग्दृष्टी जीव ज्ञान सूर्यमे रमण करते हैं ॥ १ ॥ उनका आत्म सूर्य ज्ञानी होता है ॥ २ ॥ ज्ञानमय प्रफुल्लित कमल समान ज्ञान सूर्य होता है ॥ ३ ॥ जैसा कहा गया है वैसे ज्ञान सहित आत्म सूर्य उनको झलकता है ॥ ४ ॥ उनका ज्ञान सूर्य ज्ञानमें परिणमन करता है ॥ ५ ॥ ज्ञान प्रमाण ज्ञान सूर्य प्रकाशता है ॥ ६ ॥ ज्ञानमें एकमेक सटा हुआ ज्ञान सूर्य झलकता है ॥ ७ ॥ ज्ञान दर्शन सहित ज्ञान सूर्य प्रकाशता है ॥ ८ ॥ ज्ञान स्वभावी सूर्य प्रगट भासता है ॥ ९ ॥ ज्ञानमें रँगा हुआ सूर्य चमकता है ॥१०॥ ज्ञानमें रमण करता हुआ सूर्य दिखता है ॥ ११ ॥ ज्ञानानन्दमयी सूर्य झलकता है ॥ १२ ॥ ज्ञानमें मगन सूर्य प्रकाशता है ॥ १३ ॥ ज्ञानमय हितकारी सूर्य चमकता है ॥ १४ ॥ आत्मज्ञानकी सहायता सहित आत्म सूर्य अनुभवमें आता है ॥१५॥ ज्ञानोपयोगमय आत्मसूर्य रहता है ॥ १६ ॥

ज्ञानकी दृष्टि सहित सूर्य चमकता है ॥ १७ ॥ ज्ञानमय कमल सहित सूर्य झलकता है ॥ १८ ॥ ज्ञानके अनुभव सहित सूर्य होता है ॥ १९ ॥ ज्ञानके साथ मिला हुआ सूर्य दिखता है ॥ २० ॥ ज्ञानका इष्ट रखनेवाला सूर्य होता है ॥२१॥ ज्ञानके आस्वादमें मगन सूर्य होता है ॥ २२ ॥ ज्ञानरूपी खड्ग सहित सूर्य दिखता है ॥ २३ ॥ ज्ञान व समभावको इष्ट रखनेवाला सूर्य चमकता है ॥ २४ ॥ ज्ञान-

का प्रेमी सूर्य होता है ॥ २५ ॥ ज्ञानकी वृद्धि करता हुआ ज्ञान प्रेमी सूर्य होता है ॥ २६ ॥ ज्ञानका सहकारी सूर्य दिखता है ॥ २७ ॥ ज्ञानमें गर्भित सूर्य चमकता है ॥ २८ ॥ अनन्त ज्ञान सहित सूर्य झलकता है ॥ २९ ॥ ज्ञानमें मगन सूर्य चमकता है ॥ ३० ॥ ज्ञानसे कर्मोंका क्षय करनेवाला आत्म सूर्य चमकता है ॥ ३१ ॥ ज्ञानसे भूषित सूर्य दिखता है ॥ ३२ ॥ भेदविज्ञान सहित सूर्य होता है ॥ ३३ ॥ ज्ञानमयी सूर्य चमकता है ॥ ३४ ॥ ज्ञानी सूर्य दिखता है ॥ ३५ ॥

विचार करते हुये आत्मा सूर्यके अनेक प्रकार हो सकते हैं ॥ ३६ ॥ आत्म सूर्य आपमें ही रमण करनेवाला है ॥ ३७ ॥ आत्मा सूर्य आपसे आपमें मिलनेवाला है ॥ ३८ ॥ आत्म सूर्य आनन्द सहित परसे भिन्न दिखता है ॥ ३९ ॥ ज्ञान स्वभावमें निरन्तर आचरण करनेवाला सूर्य झलकता है ॥ ४० ॥ परकी सहायता रहित केवल आत्म सूर्य चमकता है ॥ ४१ ॥ यह ज्ञानमयी आत्म सूर्य शल्य रहित है ॥ ४२ ॥ यह सूर्य भय रहित है ॥ ४३ ॥ यह सूर्य रागादि मल व कर्ममल रहित है ॥ ४४ ॥ यह सूर्य कषाय रहित है ॥ ४५ ॥ यह सूर्य मिथ्यात्व रहित है ॥ ४६ ॥ यह सूर्य विषयवासना रहित है ॥ ४७ ॥ इस सूर्यके पास विषयोंकी चिन्तासे रहित मन है ॥ ४८ ॥ इस सूर्यमें अज्ञान नही है ॥ ४९ ॥ यह तीर्थंकर पदधारी ज्ञानमें मगन है ॥ ५० ॥ यह तीर्थंकर रत्नत्रयमें आचरण करते है ॥५१॥ सहकारी ज्ञान सूर्य सहित तीर्थंकर हैं ॥ ५२ ॥ यह तीन लोकके नाथ तीर्थंकर है ॥ ५३ ॥ आनन्द व ज्ञानमयी हैं ॥ ५४ ॥

भावार्थ—मनुष्य तीर्थंकर सम्यग्दृष्टीका स्वरूप झलकाया है। सम्यग्दृष्टी तीर्थंकर जन्मसे ही स्वात्मानुभवके अतिशय प्रेमी होते हैं, उनको आत्मीक आनन्द निरन्तर रहता है, वे गृहस्थमें निर्लेप रहते हैं। दृष्टि स्वरूपपर रहती है।

अर्कस्य अर्क सुभाव संस्थान विन्यान विंद् अर्क १, षिपक अर्क २, सुयं स्कंध अर्क ३, ध्रुव रमण अर्क ४, कुन्यान विली अर्क ५, स्थान हितकार अर्क ६, पद् उत्पन्न अर्क ७, उत्पन्न उत्पन्न अर्क ८, चेत उत्पन्न अर्क ९, स्थान आयरण अर्क १०, इच्छ गम्य अगम्य गुपित रमण अर्क ११, पद् ईजजाता उत्पन्न तिअर्थ अर्क १२, मध्यपद् षट् रमण अर्क १३, उत्पन्न उत्पन्न न्यान विन्यान

अर्क १४, अर्कस्य इष्ट दर्स अर्क १५, विंद सुभाव इष्ट अर्क १६, तदि उत्पन्न अर्क १७, तदि षिपक अर्क १८, न्यान विन्यान अर्क १९, अर्क सुभाव भय विलय विषय विलय अर्क २०, अर्कस्य मुक्ति अर्क २१, तदि अर्क सुभाव न दिस्टते तदि नर्कस्य वीर्य पततं भवतु। जदि अर्क सुभाव सम्पूर्ण न दिस्टते तदि नर्क अन्तर दुष्य अनन्त सहित संसारिणो जीव २२, जदि अर्क अर्क सुभावेन अनन्त विसेष प्रति पूर्ण दिस्टयन्ति जदि कौन एक सुभाव सम्यक्त्वी जीव सल्यसंक भय कषाय रागदोष गारौ दर्सन मोहंध विसेषं पर्जाय अर्क महूर्त्त ४ चोऊन दिस्टते विस्मर भवति तदि नर्क चौथे पतनं करोति २३।

अर्थ—ज्ञान सूर्यका ज्ञान सूर्यरूप ही स्वभाव होता है, आकार चिदाकार होता है। वह स्वानुभव रूपी सूर्य है ॥ १ ॥ वह कर्म क्षयकारक सूर्य है ॥ २ ॥ स्वय गुण समूह अभेद आत्म सूर्य है ॥ ३ ॥ वह शाश्वत स्वभावमें रमण करनेवाला सूर्य है ॥ ४ ॥ सर्व मिथ्याज्ञानका नाश करनेवाला सूर्य है ॥ ५ ॥ हर जगह या पदमें वह हितकारी आत्म सूर्य है ॥ ६ ॥ परमात्मपदका प्रकाशक ज्ञान सूर्य है ॥ ७ ॥ ज्ञानके अनुभवसे ज्ञान सूर्य उदय होता है ॥ ८ ॥ स्वसवेदन ज्ञानसे ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ९ ॥ वह अपने ही प्रदेशोंमें आचरण करनेवाला सूर्य है ॥ १० ॥ जिसमें स्थूल व सूक्ष्म पदार्थ सब झलकते है, ऐसे गुप्त स्वभावमें रमण करनेवाला आत्म-सूर्य है ॥ ११ ॥ सरल स्वभावके द्वारा प्रगट जो रत्नत्रय स्वभाव उससे प्रगट होनेवाला आत्म सूर्य है ॥ १२ ॥

द्वादशाग वाणीके मध्यम पदोके सार जो छः पद ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौ ह्रः हैं। इस मंत्रके द्वारा आत्मामें रमण करनेवाला सूर्य है ॥ १३ ॥ भेद विज्ञानसे ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ १४ ॥ जब ज्ञान सूर्यको प्रेमसे देखा जाता है तब वह झलकता है ॥ १५ ॥ स्वसंवेदन स्वभावमें मगन सूर्य है ॥ १६ ॥ जब ज्ञान सूर्य झलकता है ॥ १७ ॥ तब कर्मोंको क्षय करता हुआ झलकता है ॥ १८ ॥ वह ज्ञानमयी सूर्य है ॥ १९ ॥

आत्माके स्वभावमें रहनेसे सर्व भय व सर्व पंचेन्द्रियोंके विषयके भाव

विला जाते हैं तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ २० ॥ ज्ञान सूर्यके अनुभवसे ही कर्मोंसे मुक्त सूर्य प्रगट होता है ॥ २१ ॥ जिसको ऐसा शुद्ध ज्ञान सूर्य नहीं दिखलाई पड़ता है वह मिथ्यात्वभावसे नर्ककी आयु बाँधकर नर्कमें गिरता है। जिस किसीको पूर्ण व यथार्थ आत्मारूपी सूर्यका अनुभव नहीं होता है ऐसा नारकी संसारी मिथ्यात्वी जीव नर्कके निरन्तर अनन्त कष्टोंको सहता है ॥ २२ ॥

जिस किसी सम्यक्त्वी जीवको अनन्त गुण पर्यायधारी आत्मसूर्यका दर्शन या अनुभव होता है, वही जीव मिथ्यात्वके उदयसे, शल्यमें, भयमे, शंकामें व अनन्तानुबन्धी कषायमें, रागद्वेषमें, मदमें, दर्शनमोहकी अन्धतामें, अपने परिणामोको चार मुहूर्त तक रखता है, आत्माको भूल जाता है, पहले वह नर्कायु बाँध चुका है, इसलिये मिथ्यात्व अवस्थामें मरकर वह चौथे नर्कमें जाता है ॥ २३ ॥

भावार्थ—यहाँ किसी क्षयोपशम या उपशम सम्यक्त्वीका वर्णन है। जो मिथ्यात्व गुणस्थानमें नर्कायु बाँध चुका है वह नर्क जानेके दो व तीन मुहूर्त मिथ्यात्वी हो जाता है और तब मरकर चौथे नर्क चला जाता है।

अर्क सुभाव दिस्टि सम्पूर्ण लै उत्पन्न नर्क स्थिति क्षीण आउ तुच्छ आऊ मुक्त मानसिक दिस्टि सुभाव द्रव्य सहित चै उत्पन्न मनुष्यगति भवतु १, अर्क सुभाव उत्पन्न उत्पन्न अर्क २, हितकार उत्पन्न उत्पन्न हितकार अर्क ३, कमल ठहकार अर्क ४, षिपक इस्टि अर्क ५, षिपक उत्पन्न अर्क ६, जान इस्टि अर्क ७, जान उत्पन्न अर्क ८, पद परम तत्तु परम उत्पन्न ६, परम तत्त विसेष उत्पन्न १०, अवधि न्यान सुरमण ११, मुक्ति सुभाव संसार सरणि १२, न्यान विन्यान सरयंति सरणि १३, मुक्त सभाव न्यानस्य अंतरं विमुक्त विलयति १४, मुक्ति सुभाव भय सल्य संक राग दोष गारो दस मोहन्ध आवरण घात कम्म मल कषाय मिथ्या विलयंति १५, सुद्ध बुद्ध ममल केवल न्यान विसेष सुभावेन न्यान अन्मोद बंदन युक्त न्यान अन्मोद अवलवली विषय विलय न्यायेन न्यान अन्मोद मुक्ति गत मुक्त सुभाव मुक्ति सिद्धं भवति १६।

अर्थ—नर्कमे जाकर पर्याप्त अवस्थामें कभी सम्यग्दर्शन हो जावे तब ज्ञान

सूर्यका स्वभाव सम्पूर्ण अनुभवमें आ जावे। उस सम्यक्त्वको लिये हुए रहे। आयु क्षय होते हुए जब छः मास बाकी रहें तब मनुष्यायु बाँधकर सम्यग्दर्शन सहित व नर्क दुःख सहित मरकर मनुष्य गतिमें उत्पन्न हो जाता है ।। १ ।। ऐसा सम्यग्दृष्टी जीव मनुष्य गतिमें अपने ज्ञान सूर्यके अनुभवसे ज्ञानका प्रकाश बढ़ाता है ।। २ ।। हितकारी आत्मानुभवसे हितकारी ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। ३ ।। आत्मारूपी कमलमें ज्ञान सूर्यको देखता है ।। ४ ।। कर्मको क्षय करनेवाला क्षायिक सम्यक्त्वरूपी ज्ञान सूर्य हो जाता है ।। ५ ।। इस क्षायिक भावसे ज्ञान सूर्यका प्रकाश चमकता है ।।६।। मोक्षका मार्गरूप हितकारी ज्ञान सूर्य अनुभवमें आता है ।। ७ ।।

उस स्वानुभवके मार्गसे आत्म सूर्यका प्रकाश बढ़ता है ।। ८ ।। परम तत्त्वका अनुभव करते हुए उत्तम भाव झलकता है ।। ९ ।। परम तत्त्वके अनुभवसे विशेष शुद्ध भाव होता है ।। १० ।। अवधिज्ञान प्रगट हो जाता है। सुअवधिकी निर्मलतामें रमण करता है ।। ११ ।। मोक्षका स्वभाव ससार नाशक अनुभवमें आता है ।। १२ ।। ज्ञान स्वभाव बढ़ता जाता है ।। १३ ।। मुक्त स्वभाव प्रगट होता जाता है ज्ञानका विघ्नकारक भाव व सासारिक भाव क्षय हो जाता है ।। १४ ।। मोक्ष स्वभावमें रमणसे भय, शल्य, शका, राग, द्वेष, मद, मोह, कर्म, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय, चारो घातीय कर्म, सब कषाय, मिथ्याभाव सर्व क्षय हो जाता है ।। १५ ।। तब आत्मा शुद्ध निर्मल केवलज्ञान स्वभावसे प्रगट होता है। ज्ञानमें मगन रहता है, सर्व बन्धनसे छूटकर ज्ञानको मगनतासे अनन्तबली होता है। सर्व विषय विला जाते हैं। ज्ञानके द्वारा ज्ञानमें आनन्द भोगता हुआ मोक्षमें जाकर मोक्ष स्वभावमे रहकर मुक्त व सिद्ध हो जाता है।

भावार्थ—चौथे नर्कसे निकलकर सम्यक्त्वी जीव तीर्थंकर नहीं होता है, परन्तु सामान्य केवली होकर सिद्ध गति पा लेता है।

तथाहि अर्क न दिस्यते नर्क जीव अनन्तानन्त संसार भ्रमणं करोति अनन्त दुःख जदि अर्क सुभाव भ्रमत भ्रमत अर्क सुभाव उत्पन्न तदि मनुष्य भवतु। मनुष्य मन षिपन अर्क सुभाव न्यान विन्यान कालंतर विली अर्क सुभाव मुक्ति गमनो भवतु। नरकस्य सुभाव भेद गति–१।

अर्थ—जैसा ऊपर कहा है—इस तरह जिस आत्माको ज्ञान सूर्य आत्माका दर्शन नहीं होता है, वह जीव नर्कमें है। वास्तवमें मिथ्यादृष्टी नारकी समान है वह संसारमें अनन्तानन्त काल तक भ्रमण करता है, अनन्त दुःख सहन करता है। स्वभाव तो आत्माका सूर्यसम बना रहता है। यदि भ्रमण करते करते-कभी मिथ्यात्व-के अन्धकारके हटनेपर आत्म सूर्यका स्वभाव प्रगट हो जाता है, सम्यक्त्वी हो जाता है और मनुष्य जन्ममें होता है तब वह मनुष्य संकल्प विकल्परूपी मनका क्षय करके ज्ञान सूर्यका स्वभाव प्रगट कर देता है। केवलज्ञानी हो जाता है। कालको पूर्ण करके सूर्य स्वभावमें झलकता हुआ मोक्षमें पधार जाता है। इस तरह नर्क अवस्था-का स्वभाव मिट जाता है ॥ १ ॥

एकेन्द्रिय स्थावर चौवीस स्थान

१. गति—तिर्यंच।
२. इन्द्रिय—एकेन्द्रिय।
३. काय—पांच—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति।
४. योग ३—औदारिक, औदारिक मिश्र, कार्मण।
५. वेद १—नपुंसक।
६. कषाय २३—(२५—स्त्रीवेद, पुंवेद)
७. ज्ञान २—कुमति, कुश्रुत।
८. संयम १—असंयम।
९. दर्शन १—अचक्षु।
१०. लेश्या ३—कृष्ण, नील, कापोत।
११. भव्य २—भव्य, अभव्य।
१२ सम्यक्त्व—मिथ्यात्व।
१३. सैनी १—असैनी।
१४. आहारक २—आहारक, अनाहारक।
१५. गुणस्थान १—मिथ्यात्व।
१६. जीव समास—एकेन्द्रिय, बादर सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त।
१७. पर्याप्ति ४, आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वास।
१८. प्राण ४—स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल, आयु, श्वास।
१९. संज्ञा ४—आहार, भय, मैथुन, परिग्रह।
२०. उपयोग ३—२ कुज्ञान + १ दर्शन।
२१. ध्यान ८—आर्त्त ४, रौद्र ४।
२२. आस्रव ३८—मिथ्यात्व ५ + अविरति ७ (स्पर्श १ + प्राण वध ६) + कषाय २३ + योग ३=३८।
२३. योनि—५२ लाख।
२४. कुल कोडि—६७ लाख।

स्थावर स्वभाव विशेष निरूपण—स्थान परिणाम १, अनन्त न्यान मई न्यान २, सुभाव न्यान रमण ३, न्यान नन्द ४, न्यान रंज ५, न्यान लब्धि ६, दर्स अनन्त ७, दर्स न्यान ८, दर्स विन्यान ९, दर्स सुभाव १०, दर्स उत्पन्न ११, दर्स हितकार दर्स सहकार १२, दर्स षिपक १३, दर्स इष्ट १४, दर्स उत्पन्न १५, इष्ट दर्स १६-१, जान दर्स १६-२, पद परम तत्तु दर्स १७, लष्य दर्स १८, अलष्य दर्स १९, गुपित दर्स २०।

चष्य अचष्य अवधि केवल दर्स २१, लब्धि दर्स २२, सूर्य लब्धि २३, नृत न्यान २४, कमल सुभाव २५, कमल रमण २६, कमल उक्त

२७, कमल परिणै २८, कमल प्रमाण २६, कमल अर्थ ३०, कमल तिअर्थ ३१, कमल सम अर्थ ३२, कमल समय अर्थ ३३, कमल सह-कार अर्थ ३४, कमल औकास अर्थ ३५, कमल अन्मोद अर्थ ३६, कमल षिपक अर्थ ३७, कमल मुक्ति अर्थ ३८, कमल रमण ३६, कमल लंकृत ४०, कमल विन्यान ४१, कमलमई कमल ४२, न्यान कमल ४३।

नानाप्रकार कमल ४४, अनन्त कमल ४५, परिणाम कन्द अर्क ४६, गिरा कन्द अग्र परिणाम ४७, भय विलय परिणाम ४८, स्थान अंगदि अंग ४६, स्थान स्थान न्यान ५०, विन्यान उत्पन्न कमल ५१, कण्ठमति कमल ५२, हितकार श्रुत कमल ५३, गुपित अवहि कमल ५४, न्यान मनपर्जय कमल ५५, पय केवल परिणाम ५६, ममल अनन्त ५७, तिअर्थ आयरण ५८, तीर्थंकर तिअथ आय-रण ५६, स्थावर स्थान अर्थ ६०, लोकालोक अनन्त परिणाम ६१, न्यान विन्यान अनन्तानन्त केवल सुभाव ६२, अनन्त चतुष्टै शरीर स्थान परिणाम ६३, दिप्ति अनन्त ६४, जं दिप्ति तं दिष्टि ६५, जं अनन्त दिसि तं अनन्त दिस्टि ६६, तस्य आवरण थावर पञ्च भेद उत्पन्न ६७।

अर्थ—आत्मामे स्थिर परिणामको स्थावर कहते हैं ॥ १ ॥ वह अनन्त ज्ञानमयी है ॥ २ ॥ स्वाभाविक ज्ञानमें रमणरूप है ॥ ३ ॥ ज्ञानमें आनन्दरूप है ॥ ४ ॥ ज्ञानमें मगनरूप है ॥ ५ ॥ अनन्त ज्ञानकी लब्धिरूप है ॥ ६ ॥ अनन्त दर्शनमय है ॥ ७ ॥ ज्ञानका वहाँ दर्शन या अनुभव है ॥ ८ ॥ भेद विज्ञानका जहाँ श्रद्धान है ॥ ९ ॥ स्वभावका जहाँ प्रकाश है ॥ १० ॥ सम्यग्दर्शन झलक रहा है ॥ ११ ॥ हितकारी व सहकारी सम्यग्दर्शन है ॥ १२ ॥ क्षायिक सम्यग्दर्शन रूप है ॥ १३ ॥ निज इष्ट तत्त्वका जहाँ दर्शन है ॥ १४ ॥ ऐसा सम्यक्त्व प्रगट है॥१५॥ प्रिय सम्यग्दर्शन है ॥ १६-१ ॥ मोक्षमार्गको जिसने देख लिया है ॥ १६-२ ॥ पर-मात्म रूप परम तत्त्वका जिसने अनुभव किया है ॥ १७ ॥ देखने योग्यको देख लिया है ॥ १८ ॥ सूक्ष्म अतीन्द्रिय तत्त्वको देख लिया है ॥ १९ ॥ गुप्त आत्म स्वभावका अनुभव किया है ॥ २० ॥

जिसमें चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल, चारो दर्शनोपयोगकी शक्ति है ॥२१॥ आत्मदर्शनकी लब्धि प्रगट है ॥ २२ ॥ स्वयं ही निज स्वरूपकी प्राप्ति है ॥ २३ ॥ वहीं सच्चा ज्ञान है ॥ २४ ॥ वही प्रफुल्लित कमलके समान स्वभावधारी है ॥२५॥ वही आत्मारूपी कमलमें रमण कर रहा है ॥ २६ ॥ वही जैसा कहा गया वैसा कमल है ॥ २७ ॥ वह कमल स्वभावमें परिणमन कर रहा है ॥ २८ ॥ वही कमल प्रमाणीक यथार्थ है ॥ २९ ॥ वही आत्मा कमलरूप पदार्थ है ॥ ३० ॥ वही आत्मा कमल रत्नत्रय स्वरूप है ॥ ३१ ॥ यह कमल समभाव सहित पदार्थ है ॥ ३२ ॥ यह कमल यथार्थ समय पदार्थ या समयसार आत्मा है ॥ ३३ ॥ इस प्रफुल्लित कमल स्वभावसे ही आत्मा पदार्थका सहकार है ॥ ३४ ॥ इस कमलको अनन्त पदार्थोंके जाननेका अवकास है ॥ ३५ ॥

यह कमल आनन्दमय पदार्थ है ॥ ३६ ॥ यह कमल क्षायिक भाव सहित पदार्थ है ॥ ३७ ॥ यही कमल मोक्षरूप पदार्थ है ॥ ३८ ॥ यह कमल आपमें रमण रूप है ॥ ३९ ॥ यह शोभनीक कमल है ॥ ४० ॥ यह कमल ज्ञानमय है ॥ ४१ ॥ यह कमल आपमें आपरूप ही विराजित है ॥ ४२ ॥ यह ज्ञान स्वरूपी कमल है ॥ ४३ ॥ इस आत्मा कमलके नाना भेद हो सकते हैं ॥ ४४ ॥ यह अनन्त गुण पदार्थ धारी आत्मा कमल है ॥ ४५ ॥ यह शुद्ध भावोका धारी सूर्य ही है ॥ ४६ ॥ भगवानकी वाणीका मूल या मुख्य सार यह आत्म कमल है ॥ ४७ ॥ इसके भावो-से सर्व भय विला गए हैं ॥ ४८ ॥ यह कमल अपने मूल स्थान या पदमें विराज-मान है ॥ ४९ ॥ इसके हरएक प्रदेशमें अनन्तज्ञान है ॥ ५० ॥

भेदविज्ञानके द्वारा इस कमलका प्रकाश होता है ॥ ५१ ॥ कंठमें ज्ञान स्वभावी आत्माको धारण करनेसे यह कमल प्रगट होता है ॥ ५२ ॥ हितकारी श्रुतज्ञानके द्वारा इस कमलका विकास होता है ॥ ५३ ॥ इस कमलमें अवधिज्ञान गर्भित है ॥ ५४ ॥ इस कमलमें मनःपर्ययज्ञान गर्भित है ॥ ५५ ॥ यह कमल केवलज्ञान पदमें परिणमनशील है ॥ ५६ ॥ यह अनन्त काल तक शुद्ध रहनेवाला है ॥ ५७ ॥ यह आत्मारूपी कमल रत्नत्रयमें आचरण कर रहा है ॥ ५८ ॥ यही कमल तीर्थंकर रूप हो तो भी रत्नत्रयमें आचरण करता है ॥ ५९ ॥ यह सच्चा स्थावर पदार्थ है जो अपने पदमें स्थिर है ॥ ६० ॥ यह लोकालोकके पदार्थोंके अनन्त परिणामोंको जाननेवाला है ॥ ६१ ॥ यह केवल स्वभावी है, जहाँ अनन्तज्ञान

है ।। ६२ ।। यह अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य चार चतुष्टय धारी अपने अनन्त प्रदेशोमें निश्चल स्थित है ।। ६३ ।। इसमें अनन्त ज्योति है ।। ६४ ।। जैसे ज्ञान है वैसे दर्शन भी है ।। ६५ ।। इसमें अनन्त ज्ञान व अनन्त दर्शन है ।। ६६ ।। जिस आत्माके ऊपर कर्मोंका ऐसा आवरण है कि शुद्धात्माका स्थावर स्वभाव प्रगट नही है वह मिथ्यादृष्टी जीव पांच प्रकार स्थावरोमें जन्म धारण करता है ।। ६७ ।।

अथ अपकाय निरूपण—अप्प सुभाव उत्पन्न लब्धि १, गम्य अगम्य परिणाम २, अनन्त न्यान दर्स त्रिन्यान षिपक सूष्म रमण ३, न्यान सुयं सुरमण परिणाम ४, उत्पन्न न्यान रमण सुभाव ५, कमल ठहकार रमण परिणाम ६, ठहकार मुक्ति परिणाम ७, रह रमण इष्ट परिणाम ८, रह रमण उत्पन्न परिणाम ९, अनन्त रह रमण न्यान परिणाम १०, नृत वीर्य रमण परिणाम ११, तत्काल रमण परिणाम १२, इष्ट उष्ट परिणाम १३, उत्पन्न इष्ट उष्ट परिणाम १४, इष्ट दर्स सुयं रमण १५, उत्पन्न दर्स परिणाम १६, इष्ट लष्य परिणाम १७, उत्पन्न लष्य परिणाम १८, दर्स लष्य न्यान परिणाम १९, जीव उत्पन्न आह्वान परिणाम २०, जिन उक्त रमण उत्पन्न रमण परिणाम २१, अनन्त रमण कमल कन्द परिणाम २२, कमल अग्र परिणाम २३, गिरा कन्द परिणाम २४, गिरा अग्र परिणाम २५, मूल इच्छ परिणाम २६, गुपित इच्छ परिणाम २७, जातीय उत्पन्न ध्रुव अर्क परिणाम २८, गम्य अगम्य लंकृत इष्ट परिणाम २९, गम्य अगम्य लंकृत उत्पन्न परिणाम ३०, रमण न्यान सहकार सिद्ध रमण परिणाम ३१, सुयं स्कंध रमण परिणाम ३२, दूर स्कन्ध विली सुयं स्कन्ध परिणाम ३३, न्यान श्रुति इस्ट उत्पन्न परिणाम ३४, न्यान श्रुति उत्पन्न इष्ट परिणाम ३५, रमण परश्रेष्ट सहकार उत्पन्न परिणाम ३६, दिस्टि इस्टि दिस्टि-३७ ।

अर्थ—अप कायका अध्यात्म दृष्टिसे कथन है (अप्प नाम आत्माका है)

आत्माके स्वभावकी प्राप्ति होना परम लब्धि है ।। १ ।। वह परिणाम अनुभवगम्य है, मन व इन्द्रियोंसे अगम्य है ।। २ ।। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, क्षायिकभाव स्वरूप सूक्ष्म तत्वमें रमणरूप है ।। ३ ।। ज्ञान अपने ज्ञान स्वभावमें स्वयं रमण करता है तब आत्मीक भाव झलकता है ।। ४ ।। वहाँ ज्ञानमें रमण करनेका स्वभाव झलक जाता है ।। ५ ।। आत्मीक कमलमें स्थिरतासे रमण स्वरूप भाव है ।। ६ ।। वही स्थिर मुक्तिका भाव है ।। ७ ।। परसे भिन्न स्वरूपमें रमण करनेसे इष्ट शुद्धोपयोग होता है ।। ८ ।। परसे भिन्न स्वरूपमे रमण करनेसे भावोकी शुद्धि होती है ।। ९ ।। अनन्त काल तक परसे भिन्न स्वरूपमें रमण करनेसे ज्ञान परिणाम रहता है ।।१०।।

सत्य आत्मवीर्यमे रमण करनेरूप यह परिणाम ह ।। ११ ।। जब आत्मामें रमण होता है तब आत्मारूप रहता है ।। १२ ।। यही प्रिय व कर्म दग्ध करनेवाला भाव है ।। १३ ।। आत्मरमणसे प्रिय व कर्मको भस्मकारो परिणाम पैदा होता है ।। १४ ।। जब अपने इष्ट स्वभावका श्रद्धान होता है तब आप ही अपने रमण करने लगता हे ।। १५ ।। वहाँ सम्यग्दर्शनका परिणाम प्रकाशित है ।। १६ ।। अनुभवने योग्य इष्ट परिणाम यही है ।। १७ ।। अनुभवने योग्य भाव प्रगट हो गया है ।।१८।। अनुभवने योग्य ज्ञान भावको देख लिया है ।। १९ ।। जीवमें जीवत्व भाव पैदा हो गया है ।। ३० ।।

जिनेन्द्र कथित तत्वमें रमण करनेसे आत्मानुभव उत्पन्न होता है ।।२१।। अनन्त गुणधारी आत्मामें रमण करनेसे आत्मा कमलका मूल भाव झलकता है ।।२२।। शुद्धोपयोग आत्मा कमलका मुख्य परिणाम है ।। २३ ।। जिनवाणीका मूल भाव यही है ।। २४ ।। जिनवाणीका सार भाव यही है ।। २५ ।। यह मूल स्वाभाविक इष्ट भाव है ।।२६।। यही गुप्त अनुभव गोचर इष्ट परिणाम है ।।२७।। यह जीवका जातीय अविनाशी उत्कृष्ट परिणामका झलकाव है ।। २८ ।। यही सूक्ष्म स्थूल सर्व ज्ञानसे शोभित इष्ट उपादेय भाव है ।। २९ ।। यही सूक्ष्म स्थूल ज्ञानसे शोभित प्रकाशमान भाव है ।। ३० ।। आत्मज्ञानमें रमण करनेकी सहायतासे सिद्ध स्वभावमें रमणका भाव उत्पन्न होता है ।। ३१ ।। स्वयं आत्मा द्रव्यमें रमणरूप भाव है, आत्मा गुणोका समूह है ।। ३२ ।। पर पुद्गल स्कन्धको क्षय करके स्वयं द्रव्यका गुण समूहमें परिणमन है ।। ३३ ।। सम्यग्ज्ञानकी भाव स्तुति करनेसे यह प्रिय भाव उत्पन्न होता है ।। ३४ ।। आत्मज्ञानकी स्तुतिसे इष्ट शुद्ध भाव झलकता है ।।३५।।

श्रेष्ठ शुद्ध भावमें रमण करनेसे यह आत्मीक भाव झलकता है ॥ ३६ ॥ इष्ट आत्माका दर्शन देख लिया गया है ॥ ३७ ॥

परिणाम दिस्टि उत्पन्न इस्टि १, परिणाम झडप इष्ट उत्पन्न २, न्यान परिणाम भय विलय इस्ट उत्पन्न झडप इष्ट न्यान परिणाम ३, भय विलय भय इष्टि विलय भय उत्पन्न विलय परिणाम ४, रमण न्यान सुय रमण अर्क परिणाम ५, रमण सर्वन्य सर्व दिस्टि सर्व अर्थ नन्त विसेष अर्थ तिअर्थ समर्थ अष्यर सुर पद सब्द अर्थ सब्दर्थ सहकार अर्थ औकास अन्मोद षिपक मुक्ति सौख्य अनन्त सर्व अर्थ परिणाम ६, रमण इस्ट उत्पन्न विंद विन्यान सुद्ध परिणाम ७, सून्य सुभाव रमण ८, सूष्यम सरि इस्ट रमण ९, सर उत्पन्न रमण १०, मय मूर्ति गम्य अगम्य मुक्ति रमण ११, सर्वन्य सुरमण १२, मूल उत्पन्न कमल रओ स्कीर्ण रमण १३, कमल न्यान परम तत्तु टंकोति ईर्ज रमण १४, इस्ट कमल न्यान परम तत्तु टंकोत् ईर्ज रमण १५, सुर सर्वन्य उत्पन्न रमण १६, मय मूर्ति श्री सास्वत कमल रमण १७, विन्यान न्यान नृत ईर्ज सुभाव रमण १८, केवल सहकार रमण १९, इष्ट उत्पन्न ऊंकार रमण २०, विंद विन्यान नय उत्पन्न न्यान नय जिन सुभाव २१, मय मूर्ति उत्पन्न न्यान उत्पन्न न्यान परिणाम २२, अनन्त श्री सहकार श्री न्यान श्री मुक्ति सुभाव २३, मुक्ति श्री धुव रमण न्यान अन्तर रहित धुव सिद्ध २४, अप्प परमप्प हितकार षिपक जान इस्ट उत्पन्न इष्ट मुक्ति रमण २५, न्यान आयरण तीर्थंकर मुक्ति सिद्ध २६, अप्प सहकार न्यान रमण २७।

जदि केन विसेषपर्णि, जनरंजन, कलरंजन, मनरंजन, दर्स अन्ध आवरण न्यान भय सल्य संक कषाय मल मिथ्या सहकार न्यान रमण आवर्ण अन्तर दिसि रमण स्थान न्यान परमिष्टि चतुष्टय रमण त्रय अन्मोद सहकार एन विसेष आवर्णा अन्तर समय

महूर्त आवर्ण अन्तर सुभाई अन्तर हितकार आवर्ण सहकार आवर्ण हितकार आवर्ण जान आवर्ण रमण न्यान आवर्ण तदि अप्पकाय जीव उत्पन्न पयोग चतुष्टै ही ण तदि सुभाव अन्तमुहूर्त बारह सहस्र चौवीस भ्रमण अनन्तकाल कलण विसेषन दिस्टंति। भ्रमत भ्रमत जदि कदि परिणाम रमण न्यान स्थान उत्पन्न देइ काल तदि महूत तदि समय अप्प सुभाव न्यान रमण उत्पन्न देइ, तदि अपकाय मुहूर्त षिपनिक लै जस्स परिणाम आयरण स्थान जदि काल आयरण उत्पन्न रमण भवंति तदि न्यान रमण विसेष कम्म षिपनिक मुक्ति जन्ति इति अपकाय जीव निरूपणं बारा सहस्र चौवीस वास मृत्यु जन्म १२०२४॥ २८॥

अर्थ—जो अपने शुद्ध भावोपर श्रद्धा होती है तब इष्ट स्वानुभव पैदा होता है ।। १ ।। परिणामोको आत्माके तत्त्वमे जोडते ही इष्ट भाव झलकता है ।। २ ।। आत्मज्ञानमें परिणमन करनेसे सर्व भय दूर हो जाता है, इष्ट स्वानुभव झलकता है व जैसे ही इष्ट स्वानुभव होता है ज्ञानमें परिणमन रहता है ।। ३ ।। भयोके दूर होनेपर, इष्ट पदार्थोंके सम्बन्धमे भय मिटनेपर, भयके उदयके हटनेपर निर्भय भाव होता है ।। ४ ।। ज्ञानमें रमण करनेसे स्वय आत्मामें रमण होता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ।। ५ ।। जब कोई सर्वज्ञ, सर्वदर्शी व सर्व पदार्थोंके अनन्त विशेषोको रखनेवाले आत्म पदार्थमें, रत्नत्रयमयी अनन्त वीर्यमयी पदार्थमे जो आत्म पदार्थ अक्षर स्वर पद शब्द व शब्दोके अर्थसे झलकता है जिसमें अनन्त ज्ञानका अवकाश है, जो आनन्दमय है, क्षायिक है, मोक्षके अनन्त सुखसे भरपूर है रमण करता है तब शुद्ध परिणाम होता है।। ६ ।।

इष्ट आत्मतत्त्वमें रमण करनेसे ज्ञानके अनुभवसे शुद्ध भाव होता है ।। ७।। यह भाव रागादिसे शून्य स्वभावमें रमण रूप है । ८ ।। सूक्ष्म अतीन्द्रिय आत्मारूपी सरोवरमें प्रेमसे रमण हो रहा है ।। ९ ।। आत्म सरोवरमें मगन होनेसे ही स्वात्मरमण होता है ।। १० ।। ज्ञान मूर्ति आत्मा सूक्ष्म स्थूलके विकल्पसे रहित तत्त्वमे रमण कर रहा है ।। ११ ।। वह सर्वज्ञ भावमे रमण कर रहा है ।। १२ ।। आत्मारूपी कमलके मूलसे उत्पन्न कमलमें दृढ़तासे रमण हो रहा है ।। १३ ।।

आत्मारूपी कमलके भीतर जो परमतत्त्वका ज्ञान है उसमें दृढ़तासे व सरलतासे व शांतिसे रमण हो रहा है ।। १४ ।। हितकारी आत्मकमलके परम ज्ञानमें दृढ़तासे रमण हो रहा है ।। १५ ।। सर्वज्ञ सूर्यसे प्रगट भावमें रमण हो रहा है ।। १६ ।। ज्ञानमूर्ति अविनाशी कमलमें रमण हो रहा है ।। १७ ।। भेदविज्ञानके द्वारा प्रगट सत्य सरल समभावमे रमण हो रहा है ।। १८ ।। केवलज्ञानके सहकारी भावमें रमण हो रहा है ।। १९ ।। इष्ट भावको झलकाने वाले ॐ मंत्रके द्वारा रमण हो रहा है ।। २० ।। भेद विज्ञानसे शुद्ध नयके द्वारा प्रगट ज्ञानमय वीतराग स्वभाव झलकता है ।। २१ ।। ज्ञान मूर्ति आत्मामें प्रगट ज्ञानके अनुभवसे ज्ञानका भाव बढता है ।।२२।। अनन्त आत्मीक लक्ष्मीको सहकारी ऐश्वर्यशाली ज्ञान है वही श्री मोक्षके स्वभाव रूप है ।। २३ ।। मोक्ष–लक्ष्मीमें ध्रुव भावसे रमण करता हुआ ज्ञान निरन्तर अविनाशी सिद्धपदमे तिष्ठता है ।। २४ ।। परमात्म स्वरूप आत्माको हितकारी क्षायिक भाव रूपी इष्ट मोक्षमार्गसे इष्ट मुक्तिमें रमण प्रगट होता है ।। २५ ।।

ज्ञानमे आचरण करनेसे ही तीर्थंकर सिद्ध व मुक्त होता है ।। २६ ।। आत्माको सहकारी आत्मज्ञानमें रमण यथार्थ है ।। २७ ।। जिस किसीको ऊपर प्रमाण आत्माका अनुभव नही प्राप्त है, जो जनरंजन भावमें, शरीररंजन भावमें, मनरजन भावमे, दर्शनमोहके मिथ्यात्व भावमें, ज्ञानावरणके उदयमे, भय, शल्य, शकामे, कषायके मलमें फँसा है, मिथ्या ज्ञानमें रमण करता है, जिसके अन्तरायका उदय है, व जिसके ऐसा कर्मोंका आवरण है जिससे उसको ज्ञानमें रमण नही है, स्व स्वरूपका ज्ञान नहीं है, अनन्त चतुष्टयमें रमण नहीं है, रत्नत्रयका आनन्द नहीं है, पापोका विशेष उदय है, अन्तर्मुहूर्तके लिये भी आवरण हटता नही है, अन्तरंग स्वभावका हितकारी भाव छिप रहा है, उस ज्ञानके सहकारी कार्योंका भी निमित्त नहीं है, मोक्षमार्ग विरोधीभावमे रमण हो रहा है, ज्ञानावरणका विशेष उदय है तब वह जीव जलकायमे उत्पन्न होता है । वहाँपर मात्र स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा उपयोग है, अन्य चार इन्द्रियोंके द्वारा उपयोग नही है । ऐसे जलकायमें क्षुद्र भव अन्तर्मुहूर्तमे लगातार सूक्ष्मके ६०१२, स्थूलके ६०१२ कुल १२०२४ होते हैं इनका एक श्वासमें अठारह दफे जन्म मरण होता है । ऐसे अपर्याप्त जीव साधारण वनस्पति निगोदमें भी जाते हैं । अनन्त काल तक ससारमे भ्रमण रहता है, स्वानुभवका दर्शन नहीं होता है । भ्रमण करते-करते यदि कभी पंचेन्द्रिय सैनी हो जाता है मानव होता है और वहाँ

सम्यग्दर्शन सहित ज्ञान पैदा होकर अन्तर्मुहूर्तके लिये आत्माके स्वाभाविक ज्ञानमें रमण होता है उपशम सम्यक्त्व जब पैदा होता है तब अन्तर्मुहूर्त आत्मानुभव बना रहता है। फिर वेदक सम्यक्त्व होकर आत्मा क्षायिक सम्यक्त्वी हो जाता है तब वह क्षायिक भावमें आचरण करता है। चारित्र बढ़ते-बढ़ते यथाख्यातचारित्र हो जाता है। फिर केवलज्ञान उत्पन्न होकर शुद्ध ज्ञानमें रमण होता है। फिर शेष सर्व कर्म क्षय करके वह मोक्ष जाता है। इसतरह अपकायका निरूपण किया। जल-कायके क्षुद्र भव एक अन्तर्मुहूर्तमें १२०२४ होते है, १२०२४ दफे जन्म मरण होता है ॥ २८ ॥

तेज काय निरूपणं—थावर गति स्थान न्यान आवरण थावर तेज काय निरूपण १, गति तिर्यंच स्थान न्यान आवरण थावर भवति २, स्थान आवरण सुद्ध मुक्ति गामिणं ३, कस्य आयरण उत्पन्न ४, उत्पन्न आयरण उत्पन्न विंद ५, उत्पन्न विन्यान ६, उत्पन्न पद ७, उत्पन्न अर्थ ८, उत्पन्न औकास ९, उत्पन्न अन्मोद १०, उत्पन्न षिपक ११, उत्पन्न मुक्ति रमण १२, उत्पन्न न्यान रमण आनन्दनन्द १३, उत्पन्न दिस्टि इस्टि १४, उत्पन्न सूषम सुयं षिपन सुभाव १५, उत्पन्न श्री रमण आयरण श्री मुक्ति सुभाव १६, जदि विसेष— उत्पन्न सर्वेपि अप्प सहकार १७, उत्पन्न उत्पन्न हितकार आयरण हितकार १८, उत्पन्न स्थान हितकार १९, इष्ट भय विनस्य हितकार २०, उत्पन्न भय विनस्य अचष्य २१, भय इष्ट विनस्य अचष्य उत्पन्न २२, भय इष्ट विनस्य सुयं न्यान आवरण २३, रमण काए रमण २४।

अर्थ—अब तेज कायका निरूपण करते है। इस तेज कायमें स्थावर गति होती है। ज्ञानावरणका उदय विशेष है ॥ १ ॥ तिर्यंच गति होनेसे यथार्थ ज्ञानका आवरण होता है, तेज काय स्थावर है ॥ २ ॥ जो कोई अपने स्वभावमें स्थिर होके आचरण करता है वह शुद्ध होकर मुक्त हो जाता है ॥ ३ ॥ किसके आचरणसे क्या होता है ॥ ४ ॥ स्वरूपाचरण होनेसे स्वानुभव होता है ॥ ५ ॥ विशेष आत्म-ज्ञान होता है ॥ ६ ॥ महान् पद उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥ परमार्थ तत्त्व झलकता

है ॥ ८ ॥ अनन्तज्ञान प्रगट होता है ॥ ९ ॥ अनन्त सुखका प्रकाश होता है ॥१०॥ नौ क्षायिक लब्धियां प्रगट होती हैं ॥ ११ ॥ मोक्षभावमें रमण होता है ॥ १२ ॥ ज्ञानानन्दमें मगनता रहती है ॥१३॥ परम इष्ट आत्माकी दृष्टि हो जाती है ॥१४॥

अतीन्द्रिय सूक्ष्म निज क्षायिक स्वभाव प्रगट हो जाता है॥ १५ ॥ परमैश्वर्यमें रमण होते हुए मोक्षका स्वभाव हो जाता है ॥ १६ ॥ यदि विशेष कहे तो आत्माके सहकारी सर्व गुण प्रगट हो जाते हैं ॥ १७ ॥ हितकारी स्वरूपमें आचरण सदा बना रहता है ॥ १८ ॥ अपना निज स्थान हितकारी प्रगट रहता है॥१९॥ सर्व भयोका विनाश हो जाता है, निर्भयता हितकारी प्रगट होती है ॥ २० ॥ भयोके क्षयसे अतीन्द्रिय भाव प्रगट होता है॥ २१ ॥ इष्ट भावके सम्बन्धसे सर्व भय दूर हो जाता है । अतीन्द्रिय तत्त्व प्रगट होता है॥ २२ ॥ निर्भयताके साथ इष्ट अपने ही ज्ञानमें रमण रहता है ॥२३॥ रमण स्वरूप आत्मामें रमण रहता है ॥२४॥

क्रांति-इष्ट न्यान विन्यान श्री आयरण क्रांति १, उत्पन्न इष्ट अपूर्व सहकार पुरिस क्रांति २, रमण आयरण कासु स्फटिक ३, फासु स्फटिक अन्यान विली न्यान अन्मोद् स्वरूवी सुभाव ४, न्यान प्रियो ५, न्यान इष्ट ६, न्यान कमल ७, न्यान रमण ८, श्री अनन्त न्यान फटिक सुभाव रमण ९, आवरण उत्पन्न स्फटिक सिद्ध सुभाव फासु सरूव सूक्ष्म अवगाहण हितमित परिणै १०, कोमल क्रांति सिद्ध स्वरूप ११, न्यान मुक्ति श्री सुद्ध सुभाव १२, फासु आयरण रूव अरूवी रूवी विलय १३, अरूव रूव रूवी विविक्त १४, अनरूइ प्रियो १५, न्यान रूवी न्यान विन्यान रमण १६, आयरण न्यान सुद्ध सुकीय सुभाव १७, दिष्टि रूव उत्पन्न ओंकास अन्मोद् षिपक रूवेन तदि मुक्ति सुख्य १८ ।

अर्थ—शुद्ध स्वरूपको शोभा कहते हैं । इष्ट भेद विज्ञानके द्वारा स्वरूपाचरण होना हो एक क्रांति है ॥ १ ॥ इष्ट भाव उत्पन्न होनेसे अपूर्व परम हितकारी आत्माको क्राति होती है ॥ २ ॥ स्वरूपमें आचरण करनेसे आत्मा स्फटिकरत्नके समान पवित्र हो जाता है ॥ ३ ॥ स्फटिकके समान निज स्वभाव झलकनेसे अज्ञान दूर हो जाता है, ज्ञानानन्द स्वभाव झलक जाता है॥ ४ ॥ तब ज्ञान ही प्रिय है॥ ५ ॥

ज्ञान ही इष्ट है ।। ६ ।। ज्ञान कमलके समान प्रफुल्लित रहता है ।। ७ ।। ज्ञानका ज्ञानमें रमण होता है ।। ८ ।। परमैश्वर्यशाली अनन्त ज्ञानमयी निर्मल स्फटिक समान भावमें रमण होता है ।। ९ ।। स्वरूपाचरणसे स्फटिकके समान सिद्ध स्वभाव प्रगट हो जाता है जो निर्मल है, सूक्ष्म अतीन्द्रिय है, अवगाहनगुण सहित है, मर्यादारूप अपने ही स्वभावमें परिणमन करता है ।। १० ।। बड़ी ही शांत शोभा सिद्धके स्वरूपकी है ।। ११ ।। ज्ञानमयी परसे मुक्त परमैश्वर्यशाली सिद्धका शुद्ध स्वभाव है ।।१२।। शुद्ध स्वभावमें आचरण करनेसे अमूर्तीक स्वभाव प्रगट होता है, रूपी पुद्गलका सग छूटता है ।। १३ ।। सिद्धका स्वरूप अरूपी है, मूर्ति रहित है ।। १४ ।। अमूर्तीक स्वभाव सुहावना है ।।१५।। सिद्ध ज्ञान स्वरूपी है व ज्ञानमें ही रमण करते हैं ।।१६।। ज्ञानमें आचरण करनेसे अपना शुद्ध स्वभाव प्रगट रहता है ।। १७ ।। अपने स्वरूपको देख लेनेसे अनन्तज्ञान व अनन्तसुख उत्पन्न होता है, सर्व कर्मका क्षय किये हुए वे सिद्ध भगवान् सदा मुक्तिका सुख भोगते हैं ।। १८ ।।

अन्मोद् न्यान हितकार आयरण १, सब्दस्य विसेष सब्दस्य जिन सब्द असब्द न्यान २, असब्द गुपित सब्द न्यान उत्पन्न ३, सब्द न्यान सरूव न्यान विन्यान आयरण ४, लब्धि अलब्धि लब्धि ५, सुय लब्धि ६, विसेष न्यान विन्यान श्री मुक्ति श्री सुभाव ७, पुरिस सिद्ध सुभाव अव्वावाह अवगाह हितकार रमण आयरण सुद्ध बुद्ध सुभाव ८, मन विसेष-इष्ट मन ९, न्यान मन १०, उत्पन्न मन न्यान रंज ११, मन न्यान रमण १२, मन न्यान विन्यान रमण १३, श्री न्यान सुभाव मुक्ति श्री सहकार १४, सिद्ध अर्क उत्पन्न १५, हितकार विंद विन्यान उत्पन्न १६, हितकार आगन्तु न्यान १७, हितकार हित न्यान १८, उत्पन्न हित हुंतकार न्यान १९, उत्पन्न हितकार रंज २०, जिन रंज रमण २१, जिननाथ रमण २२, अचष्य दर्सन न्यान परिणाम २३, अनन्त अलष्य २४, सरस्य सर उत्पन्न २५, न्यान रमण विसेष २६, षिपक विसेष २७, जानपद विन्यान रमण २८, ग्रहण अनन्त बाधा रहित तीर्थंकर सुभाव २९ ।

जदि अतीन्द्रिय सुभाव केन विसेष—मनरंजन गारो सुभाव

जनरंजन सुभाव मनरंजन सुभाव कलरंजन सुभाव, कषाय मल सुभाव पर्जाव दिष्टि सुभाव, पर्जाव इष्टि सुभाव, दर्स अदर्स अन्ध सूष्यम सुभाव मिथ्या सुभाव प्रकृति राग प्रकृति दोष प्रकृति न द्रिस्यते ३०, अतीन्द्रिय उत्पन्न अतीन्द्रिय सुभाव ३१, अतीन्द्रिय मिलण ३२, अतीन्द्रिय रमण ३३, अतीन्द्रिय रंज ३४, अतीन्द्रिय आनन्द ३५, अतीन्द्रिय विसेष ३६, अतीन्द्रिय उक्त ३७, अतीन्द्रिय वयण ३८, अतीन्द्रिय दिस्टते ३६, अतीन्द्रिय गम्यते ४०, अतीन्द्रिय अगम्यते ४१, अतीन्द्रिय सुवते ४२, अतीन्द्रिय आहार ४३, अतीन्द्रिय ठिदि ४४, अतीन्द्रिय चलण ४५, अतीन्द्रिय वलण ४६, अतीन्द्रिय निद्रा ४७, अतीन्द्रिय आसनु ४८, अतीन्द्रिय सुर सब्द ४६, अतीन्द्रिय अदिस्ट सर ५०, अतीन्द्रिय गुपित सर ५१, अतीन्द्रिय उत्पन्न सर ५२, अतीन्द्रिय कमल सर ५३, अतीन्द्रिय आयरण ५४, अतीन्द्रिय अचष्य ५५, अतीन्द्रिय चष्य ५६, अतीन्द्रिय गुपित ५७, अतीन्द्रिय मन ५८, अतीन्द्रिय वचन ५६, अतीन्द्रिय क्रांति ६०, अतीन्द्रिय सयनासन ६१, अतीन्द्रिय ग्रह ६२, अतीन्द्रिय हितकार ६३, अतीन्द्रिय ओगास ६४।

अतीन्द्रिय अबाधा सुभाव ६५, अतीन्द्रिय मय ६६, अतीन्द्रिय उत्पन्न मय ६७, अतीन्द्रिय इष्टि मय ६८, अतीन्द्रिय झड़प मय ६६, अतीन्द्रिय रमण ७०, अतीन्द्रिय विन्यान रमण ७१, अतीन्द्रिय प्रियो ७२, अतीन्द्रिय रूव ७३, अतीन्द्रिय अष्या अतीन्द्रिय सुर, अतीन्द्रिय विंजन, अतीन्द्रिय मात्रा, अतीन्द्रिय कानो, अतीन्द्रिय पद ७४, अतीन्द्रिय अर्थ ७५, अतीन्द्रिय तिअर्थ ७६, अतीन्द्रिय सहकार ७७, अतीन्द्रिय समय ७८, अतीन्द्रिय औकास ७६, अतीन्द्रिय रमण ८०, अतीन्द्रिय लंकृत ८१, अतीन्द्रिय मई ८२, अतीन्द्रिय न्यान प्रकार ८३, अतीन्द्रिय सुभाव स्थान आवरण भवतु ८४, अनन्त अतीन्द्रिय सुन्य अतीन्द्रिय अनन्तानुबन्ध, अती-

न्द्रिय सुभाव तेज काय जीव उत्पन्न उपयोग हीन संजोग चतुष्टै हीन भ्रमण अन्तमुर्हूर्त १२०२४ अन्तमुर्हूर्त तेज काय मरइ जन्मइ ८५।

अर्थ—आनन्द और ज्ञान जो हितकारी है उनमें ज्ञानीका रमण होता है ॥१॥ शब्दका विशेष कहते हैं। शब्दोंमें जिन शब्द है इससे शब्द रहित परमात्माका ज्ञान होता है ॥ २ ॥ शब्द रहित आत्मामें लवलीन होनेसे शब्द ज्ञान या श्रुतज्ञानका प्रकाश होता है ॥ ३ ॥ शब्दके द्वारा ज्ञान स्वरूपी आत्माके ज्ञानमें आचरण होता है ॥ ४ ॥ तब अपूर्व लब्धियोंकी या शक्तियोंकी प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥ स्वयं आत्माकी शक्तियाँ प्रगट हो जाती हैं ॥ ६ ॥ विशेष ज्ञानके द्वारा परमैश्वर्ययुक्त मोक्षके स्वभावका अनुभव होता है ॥ ७ ॥ पुरुषाकार सिद्ध भगवानका स्वभाव जाना जाता है, जो अव्याबाध है, अवगाहन-गुण सहित है, हितकारी स्वभावमें रमणशील है, व शुद्ध व बुद्ध स्वभाव है ॥ ८ ॥ मनका चितवन विशेष आत्मा सम्बन्धी होता है वही मन प्रिय है ॥ ९ ॥ वहीं मन ज्ञानी है ॥ १० ॥

इस मनके द्वारा आत्माके ज्ञानमें मगनता होती है ॥ ११ ॥ तब मन स्वयं ज्ञानमे रमण कर जाता है ॥ १२ ॥ मन तब भेदविज्ञानके द्वारा आत्मामें रमण कर जाता है ॥ १३ ॥ परमैश्वर्ययुक्त ज्ञान स्वभावमें मोक्ष-लक्ष्मीका स्वभाव चमकता है ॥ १४ ॥ वहाँ सिद्धरूपी ज्ञान सूर्य झलकता है ॥ १५ ॥ तब हितकारी ज्ञानका अनुभव प्रगट होता है ॥ १६ ॥ तब हितकारी ज्ञान आपसे ही अकस्मात् बढ़ता जाता है ॥ १७ ॥ यही हितकारी उपादेय ज्ञान है ॥ १८ ॥ यह ज्ञान कर्मोंको होम करनेवाला है ॥ १९ ॥ यह ज्ञान आत्माके हितमें मगन रहता है ॥ २० ॥ यही वीतराग स्वभाव मगनरूप है ॥२१॥ यही जिनेन्द्रके गुणोमें रमणरूप है ॥२२॥ यही अतीन्द्रिय ज्ञान व दर्शनका भाव है ॥ २३ ॥ यही अनन्त अविनाशी अतीन्द्रिय भाव है ॥ २४ ॥ आत्माके सरोवरमें मगन होनेसे आत्माका सरोवर बढ़ता जाता है। आत्माके गुण प्रगट होते जाते हैं ॥ २५ ॥ तब विशेष आत्मज्ञानमें रमण होता है ॥ २६ ॥ यह भाव क्षायिक है जो कर्मोंका क्षय करता है ॥ २७ ॥

यही मोक्षमार्ग है जिस विज्ञानमें रमण होता है ॥ २८ ॥ तब वह शुद्ध भाव बाधा रहित व अनंत तीर्थंकर अरहन्तके स्वभावको अनुभव करता है ॥ २९ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावका प्रकाश यह है कि मनरंजनमय भाव, शरीर रंजनभाव, जनको

रजायमान करनेवाला स्वभाव, मनको रंजायमान करनेका भाव, क्रोधादि कषायोंका मल, पर्याय बुद्धिका मिथ्यात्व भाव, पर्यायमें रमण भाव, दर्शनमोहका अन्धपना, सूक्ष्म मिथ्यात्व भाव, मिथ्यात्व प्रकृति, राग भाव, द्वेष भाव ये सब कोई जहाँ अनुभवमें नहीं आते हैं ॥ ३० ॥

अतीन्द्रिय भावमें रमण करनेसे अतीन्द्रिय स्वभाव प्रगट होता जाता है ॥ ३१॥ अतीन्द्रिय स्वभावसे मिलान बढ़ता जाता है ॥ ३२ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावमें रमण होता जाता ह ॥ ३३ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावमें मगनता होती जाती है ॥ ३४ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावमें ही सच्चा सुख है ॥ ३५ ॥ अतीन्द्रिय स्वभाव आत्माका विशेष गुण है ॥ ३६ ॥ अतीन्द्रिय समय उसे कहते हैं, जैसा जिनवाणीमे कहा गया है ॥ ३७ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावमें ही ज्ञानी उलझा रहता है ॥ ३८ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावको ही देखता है ॥ ३९ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावको ही जानता है ॥ ४० ॥ अतीन्द्रिय स्वभाव मनसे अगोचर है ॥ ४१ ॥ अतीन्द्रिय भावमें ज्ञानी परिणमन करता है ॥ ४२ ॥

अतीन्द्रिय सुखका ही ज्ञानी भोजन करता है ॥ ४३ ॥ अतीन्द्रिय भावमें ही ठहरता है ॥ ४४ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावमें ही चलता है ॥ ४५ ॥ अतीन्द्रिय भावमें प्रकाशता है । ध्यानमय अग्नि यही है, जो कर्मोंको जलाती हे ॥ ४६ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावमे ज्ञानी मगन होकर जगत्‌के व्यवहारसे शून्य हो निद्रा लेता हे ॥ ४७ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावमे ही ज्ञानी आसन जमाता है ॥ ४८ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावको प्रकाशक स्वर व शब्दोका ज्ञानी सहारा लेता है ॥ ४९ ॥ अतीन्द्रिय स्वभाव एक ऐसा सरोवर है, जो इन्द्रियोसे देखनेमें नहीं आता है ॥ ५० ॥ अतीन्द्रिय भावमें रमना गुप्त सरोवरमें स्नान करना है ॥ ५१ ॥ अतीन्द्रिय भावसे आत्मारूपी सरोवर बढ़ता जाता है ॥ ५२ ॥ अतीन्द्रिय सरोवरमें भावरूपी कमल खिलता है ॥ ५३ ॥ अतीन्द्रिय भावमें रहना ही आचरण है ॥ ५४ ॥ अतीन्द्रिय भाव इन्द्रियगोचर नही है ॥ ५५ ॥ अतीन्द्रिय ज्ञान ही सच्ची आँख हैं, देखने योग्य दृश्य है ॥ ५६ ॥ अतीन्द्रिय भाव गुप्त गुफा है, अनुभवगम्य है ॥ ५७ ॥ अतीन्द्रिय भावका विचार करे, वही मन है ॥ ५८ ॥ अतीन्द्रिय भावका शब्द है, वही वचन है ॥ ५९ ॥ अतीन्द्रिय भावमें रमण करनेसे शरीरकी शोभा है ॥ ६० ॥ अतीन्द्रिय भाव ही शय्याका आसन है ॥ ६१ ॥ अतीन्द्रिय भाव ही घर है जहाँ रहना चाहिये ॥ ६२ ॥ अतीन्द्रिय भाव

ही हितकारी मोक्ष साधक है ।। ६३ ।। अतीन्द्रिय ज्ञानमें अनन्त अवकाश है ।।६४।। अतीन्द्रिय भावमें कोई बाधा नही है ।। ६५ ।। आत्मा अतीन्द्रिय स्वभावमय है ।।६६।। अतीन्द्रिय भावसे अतीन्द्रियभाव बढ़ता है ।। ६७ ।।

अतीन्द्रिय भाव ही परम प्यारा है ।। ६८ ।। अतीन्द्रिय भावमें रमण करनेसे शीघ्र स्वानुभव होता है ।।६९।। अतीन्द्रिय स्वभावमे ही ज्ञानमें रमण है ।।७०।। अतीन्द्रिय स्वभावमें ही भेद विज्ञान द्वारा रमण होता है ।। ७१ ।। अतीन्द्रिय भाव ही प्रिय है ।। ७२ ।। अतीन्द्रिय आत्माका रूप है ।। ७३ ।। अक्षर, स्वर, व्यंजन, मात्रा, अनुस्वरादिसे व पदसे अतीन्द्रिय आत्माका ही मनन कर अनुभव करना चाहिये ।। ७४ ।। आत्मा पदार्थ अतीन्द्रिय है ।। ७५ ।। रत्नत्रय भी अतीन्द्रिय है ।। ७६ ।। अतीन्द्रिय अनुभव ही मोक्षका सहायक है ।। ७७ ।। अतीन्द्रिय स्वरूप ही समय या आत्मा है ।। ७८ ।। अतीन्द्रिय भावमें अनन्त आकाश है ।। ७९ ।। अतीन्द्रिय भावमे ही रमण मोक्षमार्ग है ।। ८० ।। अतीन्द्रिय भाव ही आभूषण है ।।८१।। अतीन्द्रिय स्वभावमे बुद्धिको प्रवेश करना चाहिये ।। ८२ ।। अतीन्द्रिय ज्ञानके ही अनेक भेद हो जाते हैं ।। ८३ ।। जब अतीन्द्रिय निज शुद्ध स्वभावका आवरण या आच्छादन होता है ।। ८४ ।। तब अनन्त अतीन्द्रिय ज्ञानादिसे शून्य जीव होता है । इन्द्रिय द्वारा ही ज्ञान रहता है, अतीन्द्रिय स्वभाव अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे ढक जाता है, स्वरूपाचरणचारित्र नही होता है तब तेज या अग्निकाय जीव पैदा होता है जहाँ शुद्ध आत्माकी तरफ उपयोग नहीं जाता है । एक स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा स्पर्श करने योग्य पदार्थ पर उपयोग किया जाता है, चार इन्द्रियोके उपयोग नही होते है, तेजकायमें लब्ध्यपर्याप्तक जीव क्षुद्र भवके धारी श्वासके अठारहवें भागमें जन्म मरण करनेवाले बादर व सूक्ष्मके लगातार भव एक अन्तर्मुहूर्तमे १२०२४ होते हैं ।। ८५ ।।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी जीव अग्निकायमे जन्मता है । वहाँ १२०२४ भव लगातार क्षुद्र भवके पाता है । जन्म मरणके घोर कष्ट सहता है ।

अनन्त काल कालंतर जामन मरन भवतु । अनन्त काल अतिन्द्री सुभाव जदि कालंतर अतिन्द्री विरच १, कोमल सहकार न्यान ओगाह २, दर्सन न्यान अदर्स ३, अचष्य न्यान गुपित रमण

४, न्यान नन्तानन्त ५, मल विली ६, विषय विली ७, विनन्द विली ८, अतींद्री उत्पन्न विली ६, अतीन्द्री मुक्त विली १०, अतीन्द्री अन्मोद् विली ११, न्यान रमण उत्पन्न अन्मोद् मिली १२, विषय विलयं गता १३, तदि मुक्त सुभाव रमण न्यान मुक्ति गमनं भवतु १४।

अर्थ—तेजकाय आदि स्थावरोमें अनन्त कालतक यह जीव जन्म मरण करता रहता है। तौभी आत्मामें अनन्त काल अतीन्द्रिय स्वभाव बना रहता है, उसका अभाव नही होता है। यदि पचेन्द्रिय सैनी मानव होकर काललब्धि आनेपर अतीन्द्रिय स्वभावमें विशेष प्रेमालु हो जावे, सम्यग्दृष्टि हो जावे ॥ १ ॥ कोमल या नम्र भावसे आत्माके इस स्वभावमें अवगाहन करे ॥ २ ॥ दर्शन ज्ञानमयी देखे ॥ ३ ॥ अतीन्द्रिय ज्ञानमें गुप्त होकर रमण करे ॥ ४ ॥ तब अनन्त ज्ञानका प्रकाश हो जावे ॥५॥ सर्व कर्ममल क्षय हो जावे ॥६॥ विषयवासना मिट जावे ॥ ७ ॥ विषय-सुख विलय हो जावे ॥८॥ अतीन्द्रिय सुख पैदा हो जावे व उसमें लय हो जावे ॥९॥ अतीन्द्रिय सुखके भोगमें तन्मय हो जावे ॥ १० ॥ अतीन्द्रिय आनन्दमें मगनता हो जावे ॥ ११ ॥ आत्मज्ञानमें रमण करके आनन्दका लाभ हो जावे ॥ १२ ॥ सर्व पर सम्बन्धी विषयसुख छूट जावे ॥ १३ ॥ तब मोक्षके स्वभावमें रमण करके ज्ञानमय होकर मोक्षको चला जावे ॥ १४ ॥

भावार्थ—वही तेज काय जीव भ्रमण करते-करते काल पाकर मानव होकर व क्षायिक सम्यक्त्वी होकर उसी भवसे आत्मध्यान द्वारा कर्मोंसे मुक्त हो सिद्धगति पा सकता है। उस तेजकाय जीवमें आत्मा अतीन्द्रिय स्वभावका धारी ही है।

वात काय निरूपणं—उत्पन्न उत्पन्न इष्ट १, उत्पन्न उत्पन्न इष्ट इष्ट २, दर्स दर्स इष्ट ३, उत्पन्न दर्स दर्स इष्ट ४, इस्ट उत्पन्न इस्ट इस्ट रमण ५, उत्पन्न इस्ट रमण ६, इस्ट रंज लष्य ७, उत्पन्न लष्य इस्ट चेय ८, उत्पन्न चेय इस्ट चेय ६, उत्पन्न चेय इस्ट इच्छ १०, उत्पन्न इस्ट पियो उत्पन्न पियो ११, इस्ट रहनि उत्पन्न रहनि १२, इस्ट गहणि उत्पन्न गहणि १३, इस्ट विलखि उत्पन्न मिलणि १४, इस्ट सहनि उत्पन्न सहनि १५, इस्ट वेषु उत्पन्न वेषु १६, इस्ट

हित उत्पन्न हित १७, इष्ट अवगाह उत्पन्न अवगाह १८, इस्ट अगुरुलघु उत्पन्न अगुरुलघु १९, इस्ट अबाधा उत्पन्न अबाधा २०, इस्ट षिपक उत्पन्न षिपक २१, इस्ट जान उत्पन्न जान २२, इस्ट गुपित उत्पन्न गुपित २३, इस्ट गुहिज उत्पन्न गुहिज २४, इस्ट पद् उत्पन्न पद् २५, इस्ट विंद् उत्पन्न विंद् २६, इस्ट स्थान उत्पन्न स्थान २७, इस्ट आयरन उत्पन्न आयरन २८, इस्ट लब्धि उत्पन्न लब्धि २९, सुयं षिपक उत्पन्न षिपक ३०, इस्ट स्कंध उत्पन्न स्कंध ३१, इस्ट धुव उत्पन्न धुव ३२, इस्ट मैं रमण उत्पन्न मैं रमण ३३, इस्ट औकास रमण उत्पन्न औकास रमण ३४, गम्य अगम्य रमण गम्य अगम्य उत्पन्न रमण ३५, कुन्यान विली उत्पन्न कुन्यान विली ३६, इस्ट उस्ट कुमति विली उत्पन्न कुमति विली इस्ट ३७, कुश्रुत विली उत्पन्न कुश्रुत विली इस्ट ३८, कुअवधि विली उत्पन्न कुअवधि विली हितकार ३९।

अर्थ—जब सम्यग्दर्शनका प्रकाश हो जाता है ॥ १ ॥ तब शुद्ध इष्ट ध्येयका प्रकाश होने लगता है ॥ २ ॥ इष्ट शुद्धात्माका बार-बार दर्शन होता है ॥ ३ ॥ आत्मदर्शनके पैदा होनेसे इष्टपदका साधन होता है ॥ ४ ॥ आत्मानुभवके उद्योतसे इष्ट शुद्धभावमें भले प्रकार रमण होता है ॥ ५ ॥ इसीसे इष्ट आत्मीक रमण होता है ॥ ६ ॥ देखने योग्य आत्मामें परमानन्द होता है ॥ ७ ॥ शुद्ध लक्ष्य जो आत्मा है इसका अनुभव होनेपर चेतने योग्य प्रभुका प्रकाश प्रगट होता है ॥ ८ ॥ जैसे-जैसे चेतने योग्य परमात्माका जानपना होता है वैसे वैसे इष्टपद प्रगट होता है ॥९॥ इष्टपदके प्रकाशसे जो साध्य था उसको प्राप्त कर लेता है ॥ १० ॥ साधने योग्य शुद्ध भावका प्रकाश होनेपर इष्टपद प्रिय भासता है व प्रिय पद प्रगट हो जाता है ॥ ११ ॥ इष्ट वैराग्यमें रहनेसे वैराग्य बढता जाता है ॥ १२ ॥ इष्ट पदको ग्रहण करनेसे ग्रहण योग्य पद प्रगट होता है ॥ १३ ॥ इष्ट स्वात्मामें मिलनेसे स्वात्माका लाभ होता है ॥ १४ ॥ इष्ट आत्माको आत्मबलसे धारण करनेसे इष्टभाव झलकता जाता है ॥ १५ ॥ इष्टको देखनेसे इष्टका दर्शन बढ़ता जाता है॥ १६॥ इष्ट ध्येयमें हित करनेसे हित झलकता जाता है ॥ १७ ॥ इष्टमें मगन होनेसे मग-

नता बढ़ती जाती है व सिद्धके ध्यानसे अवगाहनगुणधारी सिद्धभाव प्रगट होता है ।। १८ ।। अगुरुलघुगुणधारी सिद्धका इष्ट करनेसे अगुरुलघुगुण सहित सिद्ध-भाव प्रगट होता है ।। १९ ।। बाधा रहित सिद्ध प्रेम करनेसे बाधारहितपना पैदा होता है ।। २० ।। क्षायिकभावसे प्रेम करनेसे क्षायिकभाव झलकता जाता है ।। २१ ।। मोक्षमार्गमें इष्ट करनेसे मोक्षमार्ग तय होता जाता है ।। २२ ।। गुप्त आत्मामें इष्ट भाव करनेसे गुप्त आत्मा प्रगट होता जाता है ।। २३ ।। आत्म गुफा-में प्रेम करनेसे आत्मीक गुफामें प्रवेश होता जाता है ।। २४ ।। सिद्धपदमें प्रेम करने-से सिद्धपद प्रगट होता है ।। २५ ।। स्वानुभवसे प्रेम करनेसे स्वानुभव बढ़ता जाता है ।। २६ ।। शुद्ध मोक्ष स्थानका प्रेम करनेसे शुद्ध स्थानका ध्येय सफल होता जाता है ।। २७ ।। स्वरूपाचरणचारित्रसे प्रेम करनेसे चारित्र बढ़ता जाता है ।। २८ ।। आत्माकी शक्तियो पर प्रेम करनेसे आत्माकी शक्तियाँ प्रगट होती हैं ।। २९ ।। स्वय क्षायिकसम्यग्दृष्टी होनेसे क्षायिकभाव प्रगट होता है ।। ३० ।। गुण—समूह आत्मा-में प्रेम करनेसे आत्माका विकास होता है ।। ३१ ।।

ध्रुव अविनाशी तत्त्वमें प्रेम करनेसे ध्रुव तत्त्व झलकता जाता है ।। ३२ ।। ज्ञानमें रमणताका प्रेम करनेसे ज्ञानमें रमण बढ़ता जाता है ।। ३३ ।। अनन्त ज्ञानमे रमणका प्रेम करनेसे अनन्त ज्ञानमें रमण बढ़ता जाता है ।। ३४ ।। स्थूल सूक्ष्म ज्ञाता आत्मामें रमण करनेसे आत्माका रमण बढता जाता है ।। ३६ ।। कुज्ञानके दूर होनेसे इष्ट सुज्ञान प्रगट होता है ।। ३६ ।। कुमति ज्ञानके जानेसे इष्ट सुमति ज्ञान प्रगट होता है ।। ३७ ।। कुश्रुत ज्ञानके जानेसे इष्ट सुश्रुत ज्ञान प्रगट होता है ।। ३८ ।। कुअवधिज्ञानके जानेसे इष्ट सुअवधिज्ञान प्रगट होता है ।। ३९ ।।

स्थान थुति पद् उत्पन्न हितकार स्थान थुति पद् ४०, इस्ट उत्पन्न पद् ४१, उत्पन्न उत्पन्न रमण ४२, उत्पन्न उत्पन्न इस्ट रमण ४३, उत्पन्न उत्पन्न इस्ट इस्ट रमण ४४, चेत औकास इस्ट रमण ४५, चेत औकास उत्पन्न रमण ४६, स्थान इस्ट आयरन स्थान उत्पन्न आयरण ४७, रमण रंज नन्द् आनन्द् इस्ट गुपित न्यान रमण ४८, इस्ट इच्छ गुपित उत्पन्न इच्छ न्यान रमण ४९, पद् ईर्जति अर्थ इस्ट रमण पद् ईर्जति अर्थ उत्पन्न रमण ५०, मध्य

गुपित अनन्त इस्ट रमण मध्य गुपित अनन्त इस्ट उत्पन्न रमण ५१, उत्पन्न ममल इस्ट रमण उत्पन्न सुद्ध ममल ५२, उत्पन्न रमण आत्म गुण गुपित ठहकार इस्ट रमण ५३, आत्म गुण गुपित ठहकार मुक्ति उत्पन्न रमण ५४, स्थान स्थान इस्ट उत्पन्न आयरण मुक्ति तीर्थंकर उत्पन्न उत्पन्न सुभाव ५५, तस्य स्थान स्थान आवरन न्यान इष्ट आवरण करोति ५६, किंविसेष–जया अनिष्ट वय तव क्रिया क्लिस्ट ५७, अनिष्ट तव दान पूजा क्लिष्ट ५८, अर्थ विद्या व्याकरण सिष्या तर्क निरीष्यण ज्योतिष वेदांग छन्द वेद अनिष्ट ५९, मीमांसा न्याय अनिष्ट ६०, धर्म अधर्म अनिष्ट ६१, पुरान विकथा कल्प अनिष्ट ६२, काव्य अनिष्ट ६३, उच्चाटन मोहण स्थंभन विषय विसेष प्रपंच विभ्रम अनंत ६४, अमर मरह पिंगल अंक अर्थ सूरचन्द संक्रम अग्नि पंचाग्नि जट नारक श्रुत अनन्त ६५, जिन अजिन पद लेपन कषाय मल मिथ्या सल्य भय जनरंजन कलरंजन मन-रंजन दर्सन मोहंध आर्त्त रौद्र अनन्त ६६, विषय इष्ट उत्पन्न सहित वात काय विसेष स्थान उत्पन्न हितकार सहकार जान पद वेद अनन्त आवरण, न्यान आवरण, दर्सन आवरण, मोहन आवरण, अन्तराय आवरण जं स्थान न्यान उत्पन्न तं स्थान आवरण न्यान वातकाइ सुभाव वातकाइ जीव उत्पन्न प्रवेस भवतु वात-काइ विसेष ६७, जदि कदि कालंतर भ्रमण सहकार भ्रमण उपयोग रहित दुःख अन्तमुहूर्त बारह सहस्र चौवीस वार जामण मरण भवति-६८।

अर्थ—पाँच परमेष्ठीके पदोकी स्तुति करनेसे हितकारी पाचो पद स्तुति योग्य उत्पन्न होते है ॥ ४० ॥ इष्ट परमात्मपद झलक जाता है ॥ ४१ ॥ आत्मामें रमण बढ़ता जाता है ॥४२॥ इष्ट पदका रमण बढ़ता जाता है ॥ ४३ ॥ परमेष्ठी-पदका रमण बढ़ता जाता है ॥ ४४ ॥ अनुभवने योग्य अनन्तज्ञानके इस्ट पदमें रमणता होती है ॥ ४५ ॥ अनुभवने योग्य अनन्त ज्ञानका रमण बढ़ता जाता है

॥ ४६ ॥ गुणस्थान गुणस्थानमें जैसे-जैसे आत्मीक तत्त्वमें रमण होता है वैसे ही चारित्र बढता जाता है ॥ ४७ ॥ आत्मानंदकी मगनता जैसे-जैसे होती है गुप्त आत्मज्ञानमें रमण बढता जाता है ॥ ४८ ॥ साधने योग्य शुद्ध पदका जैसा-जैसा प्रेम होता है वैसे-वैसे शुद्ध ज्ञानमें रमण बढ़ता जाता है ॥ ४९ ॥ रत्नत्रयमें परिणमन होनेवाले आत्मीक इष्ट पदमे रमण होनेसे रत्नत्रयमयी पदमें रमण बढ़ता जाता है ॥ ५० ॥ अनन्त गुण सहित आत्माके भीतर जैसे प्रेमसे रमण होता है अनन्त गुण सहित आत्मामें रमण बढ़ता जाता है ॥ ५१ ॥ इष्ट शुद्धोपयोगमें रमण करनेसे शुद्ध निरंजन भाव झलकता जाता है ॥ ५२ ॥ आत्माके गुणोमें रमण होनेसे गुप्त स्थिर आत्मतत्त्वमें रमण होता है ॥ ५३ ॥

आत्माके गुणोमें स्थिति होती है तब मोक्ष सुभावमे रमण झलकता है ॥५४॥ हरएक पद या अवस्थामें इष्ट आत्मामें आचरण करनेसे मोक्षका व तीर्थंकरका स्वभाव प्रगट होता है ॥ ५५ ॥ जिस जीवके भीतर हरएक पदमें इष्ट आत्माके ज्ञानपर परदा होता है, वह मिथ्यादृष्टी, मिथ्याज्ञानी होता है ॥ ५६ ॥ विशेष यहाँ वह व्रत, तपका आचरण मिथ्यात्व सहित करके इष्ट भावको न पाता हुआ क्लेश उठाता है ॥ ५७ ॥ मिथ्यात्व सहित अनिष्ट तप करता है, दान करता है, पूजा करता है, क्लेश उठाता है ॥ ५८ ॥ उसका अर्थ शास्त्रका ज्ञान व्याकरण, शिक्षा, तर्क, न्याय, ज्योतिष, वेदात, छन्दका ज्ञान लाभकारी नही होता है ॥ ५९ ॥ मीमासा व नैय्यायिक शास्त्र ज्ञान हानिकारक होता है ॥६०॥ मिथ्यादृष्टीका धर्म व अधर्म साधन दोनो अनिष्ट है, हानिकारक हैं ॥ ६१ ॥ पुराण कथा आदि सब अहितकारी होते हैं ॥ ६२ ॥ काव्यज्ञान व कवितापना अनिष्ट होता है ॥ ६३ ॥ वह उच्चाटन मंत्र, मोहनमंत्र, स्तम्भन मत्र करता है, विषयोकी विशेष प्रीति होती है। उनके लिये प्रपच व चिताएँ अनन्त प्रकारकी होती है ॥ ६४ ॥ वह मिथ्यात्वी अमरकोष, महाभारत, पिंगलशास्त्र, अङ्कगणित, अर्थ विद्या, सूर्य व चन्द्रमाके भ्रमणसे ज्योतिषका ज्ञान, पञ्चाग्नि तप तपना, नट करना, नाटक खेलना आदि अनन्त प्रकारके कार्य करता है ॥६५॥ वह अजित वीतराग पदका लोप करता है, कषायोके मलसे मैला रहता है, मिथ्यात्वमें भरा होता है, माया, मिथ्या, निदान, शल्य सहित होता है, भयवान होता है, मनरजन, शरीर रंजन, मनरंजन भावोमें फँसा रहता है, दर्शन मोहमें अन्धा होता है, आर्त्त व रौद्र ध्यानके अनन्त जालोमें फँसा रहता है ॥६६॥

वह इन्द्रियोके इष्ट विषयोको पैदा करता रहता है उसीमे कर्म बाँधकर वायुकायमें पैदा होता है, वहाँ हितकारी सहकारी मोक्षमार्गके ऊपर अनन्त आवरण रहता है। उसको ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय चारोका प्रबल आवरण होता है, आत्मज्ञान जहाँ पैदा होता है। उस सम्यक्त्व भावपर आवरण होता है, उसका स्वभाव वातकायवाला हो जाता है, वह वायुकायमें उत्पन्न होता है ॥ ६७ ॥ कालातरमे भ्रमण करते-करते उपयोगकी शुद्धता बिना महान् दुःख भोगता है। कभी लब्ध्यपर्याप्त वायुकायमें पैदा होता है तब एक अन्तर्मुहूर्तमे लगातार स्थूलमें ६०१२ सूक्ष्ममें ६०१२ सब १२०२४ बफे क्षुद्र भव धार जन्म मरण करता है ॥ ६८ ॥

जदि कदि कालंतर स्थान आयरण विसेष विसेष सुभाव उत्पन्न लब्धि भवति तदि कालत्रय विकल स्थान आवरण, सुभाव ग्रहण ग्रहतै, अनन्त चतुष्टै सुभाव दर्सन न्यान चरण, सम्यक्दर्शन सम्यक् न्यान सम्यक् चरण, अनन्त दर्सन, अनन्त न्यान, अनन्त वीर्य, अनन्त सौख्य, श्री सम्यक्दर्शन श्री सम्यक् न्यान श्री सम्यक् चरण, बल वीर्ज विन्यान, संक सल्य भय राग दोष रहित, घाति कर्म आवरण विली उत्पन्न मिली भुक्त विली विनद विली सुपन विली अन्मोद न्यान अवल वली विषय गली जेन केन स्थान आयरण सुभाव उत्पन्न सुभाव न्यान अन्मोद जेन केनापि आवरण सुभाव मुक्ति गत।

अर्थ—उसी वायु काय जीवको भ्रमण करते-करते जब सैनी पचेन्द्रिय मनुष्य गति प्राप्त हो और वह सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति करे, विशेष स्वभावको प्रकाश करे। आत्मीक स्वभावमें आचरण करे तब तीन कालमें सदा ही शुद्ध आत्माके भीतर रमण करते ही स्वभावका ग्रहण हो, शुद्धोपयोग हो जावे। अनन्त चतुष्टय स्वभावको स्मरण करे, निश्चय रत्नत्रयमें अनुभवशील हो तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्-चारित्रकी पूर्ण प्रगटता हो। अनन्त दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य, अनन्त सुखका प्रकाश हो, रत्नत्रय स्वभावमें आचरण हो, आत्मबलका व आत्मज्ञानका झलकाव हो। सर्व शङ्काएँ, शल्य, भय, रागद्वेष दूर हो जावे। चार घातीय कर्मोंका क्षय हो,

जन्मका नाश हो, इन्द्रियभोगोंका क्षय हो, दुःखका नाश हो, स्वप्न अवस्थाका नाश हो, स्वरूपमें जागृत रहे, आनन्द व ज्ञान व अनुपम वीर्य प्रगट हो, विषयोंकी कांक्षा नहीं रहे। अपने शुद्ध प्रदेशोंमें ही आचरण करे, तब ज्ञानानन्द स्वभावके भीतर आचरण करता हुआ मुक्तिको प्राप्त हो जावे।

पृथ्वी काय निरूपणं—स्थान आयरण थाव्र जेन केनापि स्थान आवरण जिनवर आवरण विसेष १, स्थान उत्पन्न उत्पन्न न्यान अन्मोद दि्स्टि २, इस्ट प्रियो दि्ष्टि ३, उत्पन्न प्रियो इष्टि ४, इष्ट प्रियो ५, इष्टि उत्पन्न प्रियो ६, दर्स इष्ट प्रियो ७, दर्स उत्पन्न प्रियो ८, लष्य इष्ट प्रियो ९, लष्य उत्पन्न प्रियो १०, अर्थ इष्ट प्रियो ११, अर्थ उत्पन्न प्रियो १२, सुयं अर्क १३, इस्ट सुर रमण प्रियो १४, सुयं अर्क इस्ट सुयं रमण उत्पन्न प्रियो १५, कमल इस्ट प्रियो १६, कमल उत्पन्न इस्ट प्रियो १७, तत्काल इस्ट रमण प्रियो १८, तत्काल इस्ट उत्पन्न उत्पन्न प्रियो १९, कमल ठह्कार इष्ट प्रियो २०, कमल ठह्कार इस्ट उत्पन्न प्रियो २१, प्रियो उत्पन्न प्रियो २२, प्रियो ठह्कार मुक्ति प्रियो २३, दि्स्टि ईर्ज चेत इस्ट प्रियो २४, दि्स्टि ईर्ज चेत उत्पन्न प्रियो २५, न्यान सह्कार इस्ट कलन प्रियो २६, न्यान सह्कार इस्ट कलन उत्पन्न प्रियो २७, विन्यान षिपक दंड उत्पन्न इस्ट प्रियो २८, विन्यान षिपक दंड उत्पन्न उत्पन्न प्रियो २९, रिति ईर्ज इस्ट रमण प्रियो ३०, रिति ईर्ज इस्ट उत्पन्न रमण प्रियो ३१, कषाय मल कम्म विषय पय इस्ट प्रियो ३२, कषाय मल कम्म षिपक उत्पन्न न्यान अन्मोद प्रियो ३३, निसंक न्यान इस्ट प्रियो ३४, निसंक न्यान इस्ट उत्पन्न प्रियो ३५, संक सल्य संक भय विली इस्ट प्रियो ३६, संक सल्य संक भय विली इस्ट उत्पन्न प्रियो ३७, व्रति सरणि विली निवृति सरणि व्रिति न्यान अन्मोय प्रियो ३८, गम्य अगम्य इच्छ इस्ट प्रियो ३९, गम्य अगम्य इच्छ इस्ट उत्पन्न प्रियो ४०।

अर्थ—जिसके आत्मापर आवरण विशेष होता है वह स्थावर कायमें जन्मता है। परन्तु जो कोई आत्मामें आचरण करता है, जिनेन्द्रके स्वभावमें विशेष आचरण करता है ॥१॥ उसके आत्माके रमणसे ज्ञानानन्दकी दृष्टि पैदा हो जाती है ॥२॥ हित-कारी प्यारी दृष्टि झलक जाती है ॥३॥ प्यारा इष्ट प्रयोजन पैदा हो जाता है ॥४॥ जहाँ सिद्धपद ही इष्ट व प्रिय हो ॥ ५ ॥ अपने इष्टके द्वारा ही प्रियपद पैदा होता है ॥ ६ ॥ जहाँ इष्ट व प्रिय आत्मीक पदका दर्शन हो ॥ ७ ॥ उस आत्मदर्शनसे प्यारा पद झलकता हो ॥ ८ ॥ जहाँ इष्ट प्यारे पदपर लक्ष्य हो ॥ ९ ॥ तब इस लक्ष्यसे प्रियभाव पैदा होता है । १०॥ आत्मा पदार्थ ही इष्ट व प्यारा माने ॥११॥ उसी आत्म पदार्थके सेवनसे अपना आत्मपद प्रगट होता है ॥ १२ ॥

यह आत्मा स्वय ही सूर्य समान तेजस्वी है ॥ १३ ॥ उसी आत्माके सूर्य समान स्वभावमें रमण प्रिय भासता है ॥ १४ ॥ स्वय ही आत्मा सूर्य है । इस इष्ट भावमें स्वयं रमण करनेसे अपना प्रियपद प्रकाशित होता है ॥ १५ ॥ आत्मारूपी कमल ही इष्ट व प्रिय है ॥ १६ ॥ इसी कमलके द्वारा इष्ट प्रियपद प्रगट होता है ॥ १७ ॥ जिस समय इष्ट भावमें रमण होता है तब ही प्रियपद प्रगट होता है ॥१८॥ जिस समय इष्टपदमें रमण होता है, तब प्रिय भाव बढ़ता जाता है ॥१९॥

आत्मारूपी कमलमें स्थिति करनेसे इष्ट प्रिय भाव प्रगट होता ह ॥२०॥ आत्मा कमलमें स्थित होनेसे इष्ट प्रिय भाव बढ़ता जाता है ॥ २१ ॥ जैसा-जैसा उपादेय शुद्ध भाव हो जाता है वैसे-वैसे वह भाव बढ़ता जाता है ॥ २२ ॥ उपादेय प्रिय शुद्धोपयोगमें ठहरनेसे मुक्ति प्यारी भासती है ॥ २३ ॥ जब दृष्टि चेतने योग्य आत्मामें परिणमन करती है तब अपना प्रिय पद इष्ट प्रगट होता है ॥ २४ ॥ जब चेतने योग्य आत्मामें दृष्टि रमण करती है तब प्रिय पद प्रगट होता जाता है ॥२५॥ आत्मीक ज्ञानकी मददसे इष्ट भावमें अभ्यास होता है तब प्रिय भाव होता है ॥२६॥ ज्ञानकी मददसे उपादेय शुद्ध भावके अभ्याससे प्रिय भाव बढ़ता जाता है ॥ २७ ॥ जब आत्मज्ञानके द्वारा क्षायिक भाव हो जाता है तब इष्ट प्रिय पद प्रगट होता है ॥ २८ ॥ ज्ञानमयी क्षायिक भावके द्वारा प्रिय शुद्ध भाव प्रगट होता ह ॥ २९ ॥ इष्ट भावमें परिणमन करनेसे प्रिय शुद्ध भावमें रमण होता ह ॥ ३० ॥ इष्ट भावमें परिणमन करनेसे प्रिय शुद्ध भावमे रमण बढ़ता जाता ह ॥ ३१ ॥ कषाय मल पैदा करनेवाले कर्मोंके क्षय करनेसे इष्ट प्यारा पद प्रगट होता है ॥ ३२ ॥ कषाय मलके

कारण कर्मोंके क्षयसे ज्ञानानन्दमय प्रिय भाव पैदा होता है ।। ३३ ।। शङ्का रहित ज्ञानसे इष्ट प्रिय पद झलकता है ।। ३४ ।। शङ्का रहित ज्ञानसे इष्ट प्रिय पद चमकता है ।। ३५ ।। सर्व शङ्का, शल्य, भयसे रहित वह इष्ट प्रिय पद है ।। ३६ ।। शका शल्य भयके चले जानेसे इष्ट प्रिय पदका प्रकाश बढ़ता जाता है ।। ३७ ।। ससार व्यवहारके छोडनेसे व मोक्षमार्गमें वर्तन करनेसे ज्ञानानन्द प्रिय भाव झलकता है ।। ३८ ।। वह स्थूल सूक्ष्म सबको जाननेवाला इष्ट प्रिय पद है ।। ३९ ।। स्थूल सूक्ष्मको जाननेवाले ज्ञानमे रमण करनेसे इष्ट प्रिय पद चमकता है ।। ४० ।।

मूढ सुभाव विलयंति प्रियो ४१, अमूढ दिस्टि इस्ट इस्ट प्रियो ४२, अमूढ दिस्टि इस्टि उत्पन्न न्यान अन्मोद प्रियो ४३, न्यानी दोस अनन्त विलीय प्रियो ४४, इस्ट न्यानी दोष उत्पन्न विली इस्ट प्रियो ४५, न्यानी ममल सुभाव इस्ट प्रियो ४६, न्यानी ममल अन्मोद उत्पन्न प्रियो ४७, न्यान विन्यान स्तुति इस्ट प्रियो ४८, न्यान विन्यान स्तुति उत्पन्न न्यान अन्मोद प्रियो ४९, न्यान विन्यान इस्ट इच्छ प्रियो ५०, न्यान विन्यान इस्ट उत्पन्न प्रियो ५१, परम तत्तु इस्ट सुभाव प्रियो ५२, परम तत्तु उत्पन्न इस्ट सूक्ष्म सुभाव अन्मोद न्यान प्रियो ५३, दिस्टि कमल सब्द अचष्य हितकार गुप्ति गुहिज न्यान विन्यान पद विंद इस्ट अन्मोद प्रियो ५४, दिस्टि कमल सब्द अचष्य हितकार गुपित गुहिज न्यान विन्यान पद विंद इस्ट उत्पन्न अनन्त न्यान अन्मोद परमेस्टि चतुस्टय रयनत्तय रमण अनन्त अन्मोद रमण विषय गलन अन्मोद न्यान प्रियो ५५।

जिन इस्ट उत्पन्न लब्धि प्रियो ५६, रमण प्रियो रमण सुभाव प्रियो ५७, रमण रंज प्रियो ५८, रमण कमल प्रिया ५९, रमण दिस्टि प्रियो ६०, रमण इस्टि प्रियो ६१. रमण रिस्टि इष्टि प्रियो ६२, रमण दिस्टि इस्टि रस्टि उत्पन्न प्रियो ६३, रमण समय रमण सह इस्टि प्रियो ६४, रमण समय रमण सह इस्ट उत्पन्न प्रियो ६५, रमण उत्पन्न सहकार औकास दिस्टि इस्टि प्रियो ६६, रमण उत्पन्न

सहकार औकास उत्पन्न न्यान प्रियो ६७, रमण अनन्त अन्मोद् षिपक दिस्टि इस्टि प्रियो ६८, रमण अनन्त अन्मोद् षिपक दिस्टि उत्पन्न रमण न्यान अन्मोय प्रियो ६९, रमण मुक्ति रमण जिननाथ रंज जिन नंद् परम नंद् नंत विसेष इस्ट प्रियो ७०, रमण मुक्ति रमण जिननाथ रंज जिन नंद् परम नंद् उत्पन्न उत्पन्न हितकार सहकार गुपित गुह्ज इस्ट वज्रवृषभनाराजसंहनन सुभाव चतुस्टे चेत उत्पन्न तत्काल उत्पन्न रमण चतुस्टय सुयं रयन कमल दिस्टि सुख्य अनन्त सुयं कम्म विलय सुयं बुद्ध न्यान रमण सुयं चेत ऊर्ध तिअर्थ मिलन परिणाम न्यान अन्मोद् उत्पन्न प्रियो उत्पन्न हितकार रमण उत्पन्न सहकार रमण जिननाथ प्रियो ७१ ।

अमर प्रियो प्रमाण प्रियो ७२, जिन प्रमाण प्रियो ७३, इच्छ प्रमाण प्रियो ७४, पय परम पय प्रियो ७५, मुक्ति सौष्य विंद् विन्यान प्रियो ७६, अनन्त चतुस्टय सुभाव प्रियो ७७, संस्थान प्रियो ७८, प्रीति प्रियो उत्पन्न अन्मोद् अमल वली प्रियो ७९, विनंद् विली उत्पन्न वेद् अभेद् प्रियो ८०, स्थान आयरण जिन परम जिन जिननाथ मुक्ति सुभाव सिद्धं ध्रुवं ८१, तस्य स्थान आयरण न्यान प्रियो अप्रियो भवति ८२, किंतु विसेष राग दोष गारौ दर्स अन्ध न्यान आयरण मिथ्या सल्य संक भय इस्ट उत्पन्न विसेष कषाय मल अनन्त विभ्रम प्रपंच संक सुभाव स्थान विप्रियो भवतु ८३, अर्पण सुभाई जदि आवरण स्थान उत्पन्न हितकार सहकार विन्यान पद् दिगंत अनन्त स्थान न्यान उत्पन्न विषय संक प्रपंच विभ्रम सहकार स्थान आवरण अप्रियो भवतु तस्य सुभावेन स्थावर पृथ्वीकाय सन्मूर्च्छन उत्पन्न भवति पयोग उत्पन्न न भवति तस्य सुभाव भ्रमण बारह सहस्र चौवीस वार १२०२४ । अंतर्मुहूर्त मध्यम जनम मरण सुभाव भ्रमण करोति ।

अर्थ—मिथ्यात्वभावके दूर होनेसे प्रिय सम्यक्त्व भाव प्रगट होता है ॥४१॥

अमूढ़दृष्टि अङ्ग होनेसे अर्थात् मूढ़तासे देखादेखी किसी भी धर्म क्रियाको न मानने-से विवेक पूर्वक धर्ममें प्रेम करनेसे इष्ट प्रिय भाव झलकता है ।। ४२ ।। अमूढ़दृष्टि भावमें प्रेम करनेसे व शुद्धात्माको यथार्थ मनन करनेसे ज्ञानानन्दसे पूर्ण प्यारा शुद्ध भाव पैदा होता है ।। ४३ ।। आत्मज्ञानीके अनन्त दोष दूर हो जाते हैं, प्यारा शुद्ध भाव झलकता है ।। ४४ ।। आत्मज्ञानी ही यथार्थ है, उसके सर्व दोष जो रागादि भाव पैदा होते हैं वे सब दूर हो जाते हैं व इष्ट प्यारा वीतराग भाव चमकता है ।। ४५ ।। आत्मज्ञानीका निर्मल स्वभाव इष्ट व प्यारा होता है ।। ४६ ।। जब ज्ञानी शुद्ध भावमें मगन होता है तब प्यारा उपादेय मोक्षमार्ग प्रगट होता है ।। ४७ ।। भेदविज्ञान पूर्वक आत्माकी स्तुति करनेसे इष्ट प्यारा शुद्ध भाव प्रगट होता है ।।४८।। भेद विज्ञान पूर्वक परमात्माकी स्तुति करनेसे ज्ञानानन्दमय शुद्ध भाव प्रगट होता है ।। ४९ ।। भेद विज्ञानसे इष्ट उपादेय प्रिय शुद्ध भाव झलकता है ।। ५० ।। भेद विज्ञानका प्रेम करनेसे प्रिय पर्याय आत्मज्ञान पैदा होता है ।। ५१ ।।

परमात्मके तत्त्वमें प्रेम करनेसे प्यारा स्वभाव प्रगट होता है ।। ५२ ।। परमात्मतत्त्वके द्वारा इष्ट व उपादेय सूक्ष्म स्वभावधारी आनन्दमय व ज्ञानमय प्रिय आत्मतत्त्व झलकता है ।।५३।। सम्यग्दर्शन रूपी कमल इस शब्दसे अतीन्द्रिय आत्माका बोध होता है। इस हितकारी ज्ञानसे आत्माकी गुफामें गुप्त होनेसे ज्ञान व आनन्दमय पदका अनुभव होता है व इष्ट आनन्दमय प्रिय भाव झलकता है ।।५४। सम्यग्दर्शन रूपी कमल इस शब्दसे अतीन्द्रिय आत्माका बोध होता है, इस ज्ञानके द्वारा आत्मा-रूपी गुफामें गुप्त होनेसे शुद्ध ज्ञानका अनुभव करनेसे अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, परमेष्ठीपद, अनन्त चतुष्टय रमण व आत्मीक तत्त्वमें रमण, अनन्त सुखमें रमण, विषय सुखसे भिन्न आनन्द व ज्ञानमय प्यारा शुद्धोपयोग होता है ।। ५५ ।। वीत-राग भावमें प्रेम करनेसे शुद्ध लब्धियाँ प्यारी झलकती हैं ।। ५६ ।। जैसे-जैसे शुद्ध भावमें रमण होता है वैसे-वैसे स्वभावका झलकाव होता है ।।५७।। आनन्दमें रमण होता है ।। ५८ ।। कमल स्वभावी आत्मामें रमण होता है ।। ५९ ।। सम्यग्दर्शनमें रमण होता है ।। ६० ।। इष्ट तत्त्वमें रमण होता है ।। ६१ ।। खड्ग समान कर्म-नाशक शुद्ध भावमें रमण होता है ।। ६२ ।। शुद्धोपयोग रूपी खड्गमें रमण करनेसे सम्यग्ज्ञानका प्रकाश होता है ।।६३।। स्वरमण स्वरूप आत्माके भीतर रमण करनेसे उपादेय शुद्ध भाव चमकता है ।।६४।। स्वरमण स्वरूप आत्माके भीतर रमण करनेसे

शुद्ध भावका झलकाव बढ़ता जाता है ।। ६५ ।। आत्मामें रमणकी मददसे अनन्त ज्ञानकी ओर दृष्टि होनेसे प्रिय शुद्ध भाव होता है ।। ६६ ।।

आत्मामें रमणसे अनन्त ज्ञानकी ओर दृष्टि होनेसे प्यारा अनन्तज्ञान प्रगट हो जाता है ।। ६७ ।। अनन्त आनन्द व क्षायिक सम्यग्दर्शनमें रमण करनेसे उपादेय शुद्ध भाव रहता है ।। ६८ ।। अनन्त आनन्द व क्षायिक सम्यग्दर्शनमें रमण करनेसे ज्ञानानन्दमें रमण रूप शुद्ध भाव झलकता है ।।६९।। आत्मामें रमणसे मुक्तिमें रमण होता है, तब जिनेन्द्रका परमानन्द रूप स्वरूप अनन्त गुणपर्याय मय प्रगट होता है ।।७०।। आत्माके भीतर रमण करनेसे मुक्तिमें रमण होता है तब जिनेन्द्रका परमानन्द मय स्वभाव प्रगट होता है । वहाँ आत्मा आत्माकी गुफामें गुप्त रहता है । वज्रवृषभनाराचसंहननके समान न मिटनेवाला स्वभाव प्रगट होता है । अनन्त ज्ञानादि चतुष्टयके साथ सदा ही उनहीमें रमण रहता है अर्थात् स्वय आत्मीक कमलमें रमण रहता है । स्वयं अनन्त सुखका वेदन होता है, कर्मोका क्षय होता है, स्वय बुद्ध केवलज्ञानमें रमण होता है। उत्कृष्ट स्वानुभव होता है। रत्नत्रयको एकता रूप भाव ज्ञानानन्दमय रहता है। आत्माके रमणसे हो सिद्धपद प्रगट होता है।।७१।। उत्कृष्ट भाव हो उत्तम प्रमाण है या सम्यग्ज्ञान स्वरूप है ।। ७२ ।। यही वीतराग यथार्थ भाव है ।।७३।। यही उपादेय सम्यग्ज्ञान है ।। ७४ ।। यही उपादेय परमात्मा पद है ।। ७५ ।। यही मोक्षके सुखका अनुभव है व ज्ञानका यथार्थ प्रेम है ।। ७६ ।। यही अनन्तज्ञानादि चतुष्टय स्वभाव है ।। ७७ ।। यही उपादेयभूत रूपातीत आत्माका ध्यान है ।। ७८ ।। यही प्रीति करने योग्य प्यारा तत्त्व है, जिससे अनुपम बलमय आनन्द झलकता है ।। ७९ ।। सर्व दुःखोका विलय होकर परमानन्दका प्रकाश होता है ।। ८० ।।

अपने ही शुद्ध प्रदेशोमें आचरण करनेसे परम जिनेन्द्र मुक्त स्वभावी अविनाशी सिद्ध पद होता है ।। ८१ ।। जब आत्माके प्रदेशोपर कर्मोका आवरण होता है तब प्रिय आत्मज्ञान प्यारा नहीं भासता है ।। ८२ ।। विशेष यह है कि जब कि राग, द्वेष, मद व दर्शनमोहका उदय, ज्ञानावरणका उदय, मिथ्या शल्य, शका, भय रहता है, तथा अपने इष्ट स्वभावमें कषायका मल प्रगट रहता है अनन्त प्रकारके भ्रामक प्रपञ्च भाव शकाशील भाव होते हैं तब अपना निज स्थान प्यारा नही भासता है ।।८३।। स्वभाव पर आवरण होता है, जबतक आवरण रहता है तबतक आत्मा-

का हितकारी सहकारी भेदविज्ञान जिससे अनन्त ज्ञान उत्पन्न होता है वह विषय-वासनासे शकासे अनेक भ्रमरूप प्रपञ्चसे छिपा रहता है तब भेद विज्ञान प्रिय नहीं भासता है । इस मिथ्यात्व भावके कारण स्थावर पृथ्वीकायमें आकर जन्म धारता है, सन्मूर्छन उत्पन्न होता है । सम्यग्दर्शनका उपयोग पैदा नहीं हो सकता है । मिथ्यात्व स्वभावसे भ्रमण करते हुए क्षुद्र भव सूक्ष्मके ६०१२ स्थूलके ६०१२ ऐसे कुल बारह हजार चौवीस एक अन्तर्मुहूर्तमें धारण करता है । श्वासके अठारह भागमें जन्म व मरण करता है । इस तरह यह जीव भ्रमण करता है ।

जदि कदि कालंतर भ्रमण किंविसेष—स्थान आयरण सुभाव उत्पन्न १, आवरण न्यान अन्मोद प्रियो २, स्थान रमण रंज आनन्द रमण स्थान प्रियो ३, उत्पन्न उत्पन्न हितकार ४, उत्पन्न उत्पन्न सहकार ५, उत्पन्न न्यान विन्यान ६, उत्पन्न पद परम पद ७, दिगंत दिस्टि ८, सब्द असब्द गुपित गुहिज न्यान स्थान प्रियो ९, आवर्ण विली १०, जन रंजन कल रंजन मन मंगल दर्स अंध विली ११, आसा स्नेह लाज, लोभ भय गारव आलस्य प्रपंच विभ्रम विली १२, मिथ्या संक सल्य भय इस्ट उत्पन्न विली १३, भुक्ति विनन्द विली १४, न्यान अन्मोद अवल वली १५, विषय विली १६, अनृत अनिष्ट आचरण तत्र क्रिया अनिस्ट स्रुत अन्यान विली १७, स्थान न्यान अन्मोद १८, स्थान आयरण न्यान प्रियो १९, आनन्द जिन रंज जिननाथ रमण नन्द परमानन्द २०, स्थान आयरण सुभाव जेन केनापि जीव विकल अनन्त चतुष्टय सुख्य सत्ता बोध चेतन स्थान आयरण २१, नन्त विसेष जिन उत्त जिन वयण जिन दर्स जिन अलष्य जिन इच्छ जिन रंज जिन रमण जिन सुभाव २२, जिन सूक्ष्म सुभाव कम्म सुयं विलय २३, स्थान न्यान आवरण सुभाइ जेन तेन निर्वाण पद सिद्धं धुवं ॥ २४ ॥

अर्थ—यही पृथ्वीकायिक जीव कालांतर भ्रमण करते-करते मानव गति पावे, वहाँ विशेषता यह है कि अपने आत्माके भीतर आचरण करनेका स्वभाव अर्थात्

सम्यग्दर्शन प्रगट हो ।।१।। तब ज्ञानानन्द मय उपादेय स्वभावमें आचरण करे ।।२।। स्वरूपमें रमण करते हुए आनन्दमें रमण हो व आत्मा ही उपादेय प्रगट हो ।। ३ ।। बार-बार हितकारी आत्मानुभव हो ।। ४ ।। बार-बार इसीकी सहायता हो ।। ५ ।। जिससे ज्ञानका प्रकाश बढ़ता जावे ।। ६ ।। जिससे परमात्म पद झलक सके ।। ७ ।। अनन्त दर्शन इष्ट भासे ।। ८ ।। ॐ आदि शब्दोके द्वारा शब्द रहित गुप्त आत्माकी गुफामें ज्ञान रमण करे, आत्मा ही उपादेय भासे ।। ९ ।। ज्ञानावरण दर्शनावरणकी शक्ति क्षय होती जावे ।।१०।। जन रंजन भाव, शरीर रंजन भाव, मन रजन भाव आदि मिथ्या दर्शनका अन्धकार क्षय हो जावे ।। ११ ।। आशा, स्नेह, लाज, लोभ, भय, मद, आलस्य, प्रपञ्च व विभ्रम सब चला जावे ।। १२ ।। मिथ्या शङ्का, शल्य, भय आत्माके सम्बन्धमें विला जावे ।। १३ ।। भोगोका झठा सुख जो दुःखरूप है उसकी इच्छा मिट जावे ।। १४ ।। ज्ञान आनन्दके भीतर अनुपम बल प्रगट हो जावे ।। १५ ।। सर्व इन्द्रियोके विषयोको कामना विला जावे ।। १६ ।। झूठा पापकारी चारित्र, तप व क्रियाकाड, अहितकारी शास्त्रका मिथ्याज्ञान ये सब विला जावे ।। १७ ।। आत्माके भीतर ही ज्ञान आनन्द सहित रमण करे ।। १८ ।। स्वरूपाचरण-चारित्रसे आत्मा ही प्यारा भासे ।। १९ ।। वीतरागभावमें परमानन्द सहित मग्नता हो ।। २० ।। स्वभावके भीतर आचरण करनेसे जब कभी यह जीव शरीर रहित हो जावे, अनन्तज्ञानादि चतुष्टय प्रगट करे, सुख, सत्ता, चैतन्य, बोध, निश्चय चार प्राणोमें रमण करे ।। २१ ।। अनन्त गुण प्रगट हो, जैसा जिनेन्द्रने कहा है, जैसा जिनवाणीमें है, जैसा जिनेन्द्रने देखा है, जैसा जिनेन्द्रका अनुभव है, जैसा जिनेन्द्रको उपादेय है, जिसमें जिनराज रमण करते हैं जो जिन भगवानका स्वभाव है ।। २२ ।। ऐसे अतीन्द्रिय सूक्ष्म स्वभावके प्रगट होते ही सब कर्म स्वयं क्षय हो जाते हैं ।। २३ ।। अपने ही भीतर ज्ञानका आचरण होता है, स्वभावका प्रकाश होता है, इसीको निर्वाणपद, सिद्धपद, ध्रुव अविनाशी पद कहते हैं ।। २४ ।।

भावार्थ—पृथ्वीकायिक जीव भी कभी उन्नति करते-करते मनुष्य होकर सम्यग्दर्शनको पा गुणस्थानोमें चढ़कर साधुके चारित्र द्वारा कर्मोंका क्षय करता हुआ पहले शरीर सहित अरहन्त फिर शरीर रहित सिद्ध हो जाता है, निर्वाण नाथ हो जाता है ।

वनस्पति काय विवरण—अथ वनस्पति काय उत्पत्ति स्थान विन्यान सहकार पतनं करोति १, तिअर्थ विन्यान आवरण करोति वनस्पति काय जीव भवति विन्यान न्यान सुद्ध निरूपनं २, उत्पन्न न्यान विन्यान विंद् ३, परिणइ प्रमाण इस्ट उत्पन्न उत्पन्न न्यान विन्यान विंद ४, उत्पन्न इस्ट उत्पन्न दिस्टि इस्टि इस्ट विन्यान विद् ५, इस्ट इस्ट ज्योति उत्पन्न उत्पन्न दिस्टि इस्ट विन्यान विंद ६, उत्पन्न उत्पन्न सब्द असब्द गुपित सब्द कमल विन्यान इस्ट उत्पन्न सर ७, सात विन्यान सब्द उत्पन्न दिस्टि इस्टि ८, चौदह इस्ट उत्पन्न विन्यान सुयं कमल इस्ट उत्पन्न विन्यान विंद् ९, उत्पन्न सुयं कमल उत्पन्न दर्स इस्ट दर्स उत्पन्न विन्यान विंद् १०, कमल इस्ट उस्ट इस्ट उत्पन्न विन्यान विंद् ११, सुय उत्पन्न सुय लब्धि इस्ट उत्पन्न विन्यान १२, सुयं हितकार रमण इस्ट उत्पन्न विन्यान विंद् १३, हितकार सुयं लब्धि इस्ट उत्पन्न विन्यान विद् १४, सुयं हितकार काए २ कासे २ रूवे ४ सब्दे ४ मनपर्जय ४ सोलही सुयं लब्धि इस्ट उत्पन्न विन्यान विद् १५, सुयं सुयं लब्धि षिपक इस्ट उत्पन्न विन्यान विंद् १६, सुयं षिपक स्कन्ध ध्रुव गुण कुन्यान तीन विली १७।

स्थान हितकार पद् उत्पन्न चेत १८, स्थान आयरण इच्छ गम्य अगम्य पद् १९, ईर्जति अर्थ मध्य रमण आरूह २०, उत्पन्न उत्पन्न अर्थ गुप्ति ठहकार मुक्ति २१, इस्ट उत्पन्न विसेष विन्यान २२, सुयं उत्पन्न गुहिज गुपित गुहिज रमण २३, जिननाथ कमल रमण २४, वज्रवृषभनाराचसंहनन रंज जिन रंज नंद् २५, परम विन्यान न्यान इस्ट उत्पन्न २६, विसेष विन्यान सुयं सद्भाव प्रियो २७, अनन्त मय अवकास रमण २८, ठहकार मुक्ति विन्यान २९, कांष्या कम्म विली न्यान ३०, निःकषाय इस्ट उत्पन्न विन्यान ३१, कमल डंड हितकार तत्काल रेट टंकोत्कीर्ण इस्ट उत्पन्न विन्यान प्रियो

३२, रमण कमल डंड रमण इस्ट उत्पन्न दिस्टि स्टि विन्यान ३३, सुयं सुभाव चरण वीर्ज अनन्त सम्मत्त उत्पन्न सम पद्वी ३४, साधु आचरण वीर्ज दर्स अवहि न्यान अवहि लेश्या पीत इत्यादि ३५॥

अर्थ—अब वनस्पतिकायमें जीवको उत्पत्तिको कहते हैं, जो जीव आत्मज्ञानसे गिर जाता है। जिसके रत्नत्रय धर्म पर आवरण होता है वह जीव मिथ्यात्वी वनस्पतिकायमें आकर जन्म धारण करता है ॥ १ ॥ शुद्ध आत्मज्ञानका कथन करते हैं ॥ २ ॥ जब भेदविज्ञानके द्वारा आत्माका अनुभव पैदा होता है ॥ ३ ॥ तब सम्यग्ज्ञानमें परिणमन करता हुआ उसके आत्माका अनुभव बढता जाता है ॥४॥ शुद्ध स्वरूप ही उपादेय है, इस इष्ट भावसे आत्माका दर्शन इष्ट भासता है व प्रिय आत्मानुभव जागृत रहता है ॥ ५ ॥ जैसे-जैसे आत्मज्योतिका प्रेम बढ़ता जाता है वैसे-वैसे आत्मदर्शन व आत्मानुभव बढता जाता है ॥६॥ ॐ आदि शब्दोके द्वारा शब्द रहित आत्मा आत्माके भीतर झलकता है। शब्दोकी सहायतासे कमल समान विकसित ज्ञान भावको उत्पन्न करनेके लिये शुद्धात्मीक रमण रूपी सरोवर प्रगट होता है ॥७॥ सात भङ्ग रूप स्याद्वाद वाणीके ज्ञानसे जो पदार्थोका यथार्थ ज्ञान हुआ है उसमें आत्मज्ञान उपादेय है या सात तत्त्वोके ज्ञानमें आत्मज्ञान इष्ट है ॥ ८ ॥ चौदह गुणस्थान, चौदह मार्गणा स्थान, चौदह जीव समासके ज्ञानसे जो बोध होता है उसमें कमल समान शुद्धात्माका ज्ञान सार है, उसीके द्वारा आत्माका अनुभव होता है ॥९॥ आत्मारूपी कमलमे स्वय सम्यग्दर्शन पैदा होनेसे आत्माका अनुभव होता है ॥१०॥ आत्मारूपी कमलके प्रकाशसे आत्मानुभव होता है ॥ ११ ॥ जब आत्मामे स्वय सम्यग्दर्शनकी लब्धि होती है तब आत्माका यथार्थ ज्ञान होता है ॥१२॥ तब हितकारी छ. अक्षरी मन्त्र (ॐ ह्रां ह्रीं ह्रू ह्रौ ह्र:) मे या छः द्रव्योमे विचार करनेसे आत्माका अनुभव होता है ॥१३॥ हितकारी आत्माकी शक्तिसे ही आत्माका अनुभव होता है ॥१४॥ सोलह तरह मन, वचन, कायके निरोधसे स्वय स्वात्मानुभवका लाभ होता है। काय दो अर्थात् कायका आसन पद्मासन है या कायोत्सर्ग है, फासे २ अर्थात् भूमिका स्पर्श कठोर या कोमल है, रूवे ४ अर्थात् आखसे सुन्दर, असुन्दर, दीर्घ, लघु देखना। शब्दे ४ अर्थात् वचन सत्य, असत्य, उभय या अनुभय कहना। मनपर्जय ४ अर्थात् सत्य आदि ४ प्रकार मनका विचार, इन १६ प्रकार मन, वचन, कायकी ये क्रिया छोड़कर मन, वचन, काय रुकते है ॥ १५ ॥

जब यह जीव स्वयं क्षपकश्रेणीपर चढता है तब विशेष आत्माका अनुभव होता है, ज्ञान ज्ञानमें रमण करता है ।। १६ ।। जब यह जीव क्षायिक भावरूप आत्मामें या द्रव्यके अविनाशी गुणोंमें रमण करता है तब तीन मिथ्या ज्ञान, कुमति, कुश्रुति कुअवधि नही रहते हैं ।। १७ ।। आत्मानुभवके द्वारा चेतनशक्तिका प्रकाश होता है ।। १८ ।। आत्मामें ही आचरण करनेसे स्थूल व सूक्ष्म पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है ।।१९।। निश्चय रत्नत्रयके भीतर रमण करता हुआ गुणस्थानोंपर चढता है ।।२०।। जैसे-जैसे आत्मामें ध्यान निश्चल होता है, मुक्ति निकट आती जाती है ।।२१।। तब ज्ञानका विशेष प्रकाश होता है ।। २२ ।।

स्वय आत्मीक गुफामें गुप्त रूप निर्मल आत्मीक रमण होता है ।।२३।। तब यह परमात्मा जिनेन्द्ररूपी कमलके भीतर रमण करता है ।।२४।। वज्रवृषभनाराच-संहननके समान दृढतासे वीतराग भावमें आनन्द अनुभव करता है ।। २५ ।। परम ज्ञान इसीसे उत्पन्न होता है ।। २६ ।। जितना-जितना विशेष ज्ञान होता है अपने स्वभावमें दृढता-रमणता बढ़ती जाती है ।। २७ ।। तब अनन्त ज्ञानके भीतर रमण होता है ।। २८ ।। अनन्त ज्ञानके प्रकाशसे निश्चल मुक्तिका ज्ञान होता है ।। २९ ।। इस शुद्ध केवलज्ञानके भीतर कोई इच्छा नही रहती है, इच्छाको पैदा करनेवाला मोह कर्म क्षय हो गया है ।।३०।। कषाय रहित वीतराग विज्ञान झलकता है ।।३१।। आत्मारूपी हितकारी कमलमें व उसके निश्चल टंकोत्कीर्ण स्वभावमें रमण करनेसे उपादेय केवलज्ञान पैदा होता है ।। ३२ ।। आत्मारूपी कमलके भीतर रमण करनेसे अनन्त दर्शन व अनन्त ज्ञान पैदा होता है ।।३३।। स्वय आत्माके स्वभावमें आचरण करनेसे व उसके अनन्त वीर्य स्वभाव, सम्यक्त्व स्वभावमें रमण करनेसे समभावका पद प्रगट होता है, सामायिक चारित्र होता है ।। ३४ ।। साधुओको चारित्रके बलसे अवधिदर्शन व अवधिज्ञान प्रगट होता है तब छठे व सातवें गुणस्थानमें पीत, पद्म, शुक्ल तीन लेश्याएँ प्रगट होती है ।। ३५ ।।

इस्ट उत्पन्न न्यान विन्यान ३६, सुयं सूषम सुभाव ३७, चेत उत्पन्न दंड कपाट ३८, इस्ट उत्पन्न सूष्म ३९, सुयं न्यान विन्यान जगत ४०, उत्पन्न नो उत्पन्न न्यान टंकोत्कीर्ण कमल कलण ४१, इच्छ न्यान उत्पन्न न्यान विन्यान ४२, सुयं सूष्मघण आखहु उत्पन्न टंकोति पद परम पद ४३, तत्काल रमण पद इच्छ गुपित रमण पद परम ४४,

उत्पन्न तिअर्थ ईर्ज मध्य रमण पद् ४५, उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न पद् कमल रमण ४६, आत्म गुण गुपित उत्पन्न ठहकार मुक्ति इस्ट ४७, इस्ट उत्पन्न इस्ट उत्पन्न न्यान विन्यान ४८, सुयं सूष्म सुभाव विन्यान विंद् ४६, सुय पद् विंद् परम तत्तु परम सुकीय सुभाव ५०, सूष्म क्रांति सुय लब्धि अलब्धि लब्धि विन्यान विंद् ५१, अंग उत्पन्न दिस्टि सुक षिपक ५२, हृदय गहिर गुहिज जान पद् विन्यान विंद् ५३, परिणाम कलित विन्यान ५४, दिशा पूर्व सिर अग्र सुर्क दिस्टि दर्स षिपन न्यान नृत कमल प्रियो ५५।

इच्छ हृदय पच्छिम वित्त रूव गुप्ति ५६, वाइय गुहिज रमण उत्पन्न रमण ५७, उत्तर ईर्ज सहकार गुहिज सहकार न्यान ५८, ईसान उत्पन्न ऊर्ध रमण ध्रुव उत्पन्न ५६, अर्थ अर्थ रमण दिस्टि दिप्ति ६०, इस्ट उत्पन्न दिस्टि ६१, उत्पन्न दिप्ति रमण ६२, इस्ट उत्पन्न विन्यान ६३, सिद्धं ध्रुवं तीर्थंकर रमण मुक्ति ६४, सिद्धं ध्रुव रोम रोम प्रियो रमण ६५, न्यान विन्यान मुक्ति रमण सिद्धं ध्रुवं ६६, तस्य विन्यान किं न ६७, सुभावेन जनरंज राग कलरंज दोष मनरंज गारौ दस मोहंध न्यान आवरण, दर्स आवरण, मोहण आवरण, अन्तराय न्यान संक सल्य संक भय सहकार कषाय भय मन वचन दिस्टि झडप सहकार कषाय मल मिथ्या त्रितय समल उत्पन्न सहकार मिथ्या देव गुरु धर्म, कुदेव कुगुरु कुधर्म कुमति कुसंजम कुन्यान परिणय, मिथ्या देव मिथ्या गुरु मिथ्या धर्म मिथ्या संजम मिथ्या परिणय, मिथ्या प्रमाण, मिथ्या उद्देस मिथ्या परिणय मिथ्या प्रमाण मिथ्या संजम मिथ्या तप मिथ्या परिणय विसेष विन्यान पतनं करोति विन्यान लब्धि न भवति विन्यान न्यान पतनं प्राण मुख्य तस्य सहकार वनस्पति काय उत्पन्न भवति पयोग मलिन भवतु पतनं करोतु तस्य सहकार अठारह हजार छत्तीस १८०३६ अंतर्मुहूर्त जामण मरणं भवतु ॥ ६८ ॥

अर्थ—जब उपादेय आत्म तत्त्वपर लक्ष्य होता है तब आत्मज्ञान उत्पन्न होता है ।। ३६ ।। स्वय सूक्ष्म अतीन्द्रिय स्वभाव अनुभवमें आता है ।।३७।। आत्मानुभवके ही अभ्याससे दण्ड कपाट समुद्घात करनेवाले केवलज्ञानीका स्वभाव प्रगट होता है ।। ३८ ।। इष्ट आत्मीक भावसे ही सूक्ष्म अतीन्द्रिय स्वभाव झलकता है ।। ३९ ।। तब ज्ञानका प्रकाश स्वयं बढ़ता जाता है ।। ४० ।। बढ़ते-बढ़ते टकोत्कीर्ण निश्चल कमल समान आत्मामें रमण होता है ।। ४१ ।। यथार्थ ज्ञानसे ही केवलज्ञान प्रगट होता है ।। ४२ ।। स्वय सूक्ष्म अतीन्द्रिय आत्माके स्वरूपमें आरूढ़ होनेसे परमात्माका निश्चल पद प्रगट होता है ।।४३।। जिस समय शुद्ध पदके ध्यानमें तल्लीनता होती है तब ही गुप्त परमात्मपद प्रगट होता है ।। ४४ ।। तब ही रत्नत्रयमें परिणमन होता हुआ आत्म रमण पद प्रगट होता है ।। ४५ ।। आत्म रमणसे बढते-बढते शुद्धात्मारूपी कमलमें रमण प्रकट हो जाता है ।। ४६ ।।

आत्मामें एक भावसे रमण होनेसे निश्चल मोक्षपद प्रकाश होता है ।।४७।। उपादेय तत्त्वके अनुभवसे ही ज्ञानका प्रकाश होता हे ।। ४८ ।। स्वयं ही अतीन्द्रिय स्वभावका अनुभव होता है ।। ४९ ।। स्वय ही आत्माके अनुभवसे परमतत्त्व अपने आत्माका स्वभाव झलकता है ।। ५० ।। सूक्ष्म ज्ञानके चमकनेसे स्वय अपूर्व लब्धियाँ या शक्तियाँ प्रगट होती हैं, केवलज्ञानका प्रकाश हो जाता है ।।५१।। द्वादशाग वाणीके मननसे क्षायिक सूर्य समान अर्हंत पद प्रकट होता है ।। ५२ ।। मनकी गहरी गुफाके भीतर मोक्षमार्ग स्वरूप आत्मानुभव छिपा है जो मनके भीतर स्थिर होनेसे प्रगट होता है ।। ५३ ।। तब आत्माका परिणाम शुद्ध ज्ञानका ही स्वाद लेता है ।। ५४ ।। जैसे पूर्वदिशामें सूर्य उदय होता है तब कमल फूल जाता है वैसे पूर्वोके अभ्यास द्वारा आत्मानुभवरूपी सूर्यके प्रकाशसे क्षायिक ज्ञानका धारी कमल समान प्रिय अरहन्त पद प्रगट हो जाता है ।। ५५ ।।

मनके पश्चिम भागमें होनेसे अर्थात् मनके छिपनेसे गुप्त आत्म स्वभाव प्रगट होता है ।। ५६ ।। वायव्यदिशाकी गुफामें अर्थात् पवनको रोककर आत्माकी गुफामें रमण करनेसे आत्मानुभव उत्पन्न होता है ।। ५७ ।। उत्तरदिशामें परिणमनसे अर्थात् उत्तम शुद्ध भावसे रमण करनेसे भीतर छिपा हुआ ज्ञान प्रगट होता है ।। ५८ ।। ईशान दिशासे उत्पन्न अर्थात् परमात्माके स्वभावसे प्रगट जो शुद्ध भाव उसमें रमण करनेसे अविनाशी स्वभाव झलकता है ।। ५९ ।। परम पदार्थ आत्मामें रमणसे दर्शन

ज्ञान प्रगट होता है ।। ६० ।। उपादेय तत्त्वसे ही दर्शन गुण प्रगट होता है ।। ६१ ।। व ज्ञान उत्पन्न होता है उसीमे रमण रहता है ।। ६२ ।। उपादेय तत्त्वमें रमण करनेसे केवलज्ञान होता है ।। ६३ ।। तब सिद्ध पद, अविनाशी पद, तीर्थंकर या रत्नत्रयमें रमण पद या मोक्षपद प्रगट होता है ।। ६४ ।। सिद्ध पद ध्रुव है, सिद्धका हरएक प्रदेश आपमें रमण कर रहा है ।। ६५ ।। वे ही ज्ञानमें रमण करते हैं, वे ही मुक्तिमें रमण करते हैं, वे ही सिद्ध हैं, ध्रुव हैं ।।६६।। ऐसे शुद्ध तत्त्वका ज्ञान जिसको नहीं होता है उसका कारण क्या है ।। ६७ ।।

उसका कारण यह है कि आत्माका स्वभाव जनरंजन रागसे, शरीररजन दोषसे, मनरंजन मदसे, दर्शन मोहसे अन्धा हो रहा है । ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय चारों घातीय कर्मोका ही उदय है । ज्ञानमें शङ्का होनेसे, शल्य होनेसे, भय होनेसे, कषायोके उदयसे, मन वचनका परिणमन विभाव रूप होता है । कषायका मैल भावोमें छाया रहता ह । मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र तीनो मलीन होते हैं, इससे मिथ्या देव मिथ्या गुरु, मिथ्या धर्मको मानता है । कुदेव, कुगुरु, कुधर्मकी सगतिसे कुमति ज्ञान होता है, मिथ्या संयम पालता है, मिथ्या ज्ञानमें रमण करता है, उसके भीतर मिथ्या देव, मिथ्या गुरु, मिथ्या धर्मकी श्रद्धा होती है, मिथ्या संयम होता है, मिथ्या परिणति होती है, मिथ्या प्रमाणमें उत्साह रहता है, मिथ्या प्रयोजन संसारवर्द्धक होता है, मिथ्या परिणति व मिथ्याज्ञानसे संयम झूठा पालता है, झूठा तप करता है, मिथ्या भावोंमें परिणमन करनेसे भेद विज्ञानसे गिरा हुआ रहता है, भेदविज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती है, भेदविज्ञानके पतनसे प्राणधारीकी अवस्था यह होती है कि मिथ्यात्वकी मददसे वनस्पतिकायमें जन्म प्राप्त करता है । जब उपयोग अशुद्ध रहता है अपर्याप्त होकर एक अंतर्मुहूर्तमें अठारह हजार छत्तीस वार जन्म मरण करता है, सूक्ष्म साधारण निगोदके ६०१२, बादर निगोदके ६०१२, प्रत्येक वनस्पतिके ६०१२, इस तरह वनस्पतिकायके १८०३६ क्षुद्र भव एक अन्तर्मुहूर्तमें धारण करके जन्म मरणके कष्ट उठाता है ।

भ्रमण अनन्तकालं तत्र जेन केनापि जीव विन्यान न्यान सहकार उद्देस परिणय प्रमाण दिस्टि उत्पन्नं भवतु तदि निकल १, अतीन्द्री राग जिन राग दिस्टि जिन दिस्टि २, मन जिन मन ३, वयन जिन वयन ४, उक्त जिन उक्त ५, सहकार जिन औकास ६,

जिन अन्मोद् ७, जिन षिपक ८, जिन मुक्ति ९, जिन सौख्य १०, जिन कमल ११, जिन रमण १२, जिन न्यान १३, जिन लंकृत १४, जिन विन्यान १५, जिन न्यान विसेष १६, जिन विषय १७, जिन मिथुन १८, जिन उत्पन्न १९, जिन हितकार २०, उत्पन्न जिन सह-कार २१, उत्पन्न जिन न्यान विन्यान २२, जिन पद् परम तत्तु २३, जिन सुभाव २४, जिन सर्वाथ २५, जिन आसर २६, जिन सुर रमण २७, जिन विजन २८, जिन जिन पद् २९, जिन अथ ३०, जिन तिअथ ३१, जिन समर्थ ३२, जिन समय अन्मोद् ३३, जिन सह-कार ३४, जिन औकास ३५, अर्थ जिन ३६, अनन्त जिन ३७, अन्मोद् जिन ३८, षिपक जिन ३९, मुक्ति जिन ४०, सुयं लब्धि जिन ४१, तस्य सुभाव सुद्ध सार्थं करोति ४२, तस्य जीवस्य विन्यान सहकार निकलै सुद्ध विसेष ४३, अनन्त चतुष्टय ४४, सुख सत्ता बोध चैतन्य प्राण लब्धि विसेष ४५, राग दोष विलयंति ४६, आवर्ण घाति कम्म विलयति ४७, मिथ्या कषाय सल्य संक भय विलयंति ४८, उत्पन्न विली ४९, भुक्त विली ५०, विनन्द् विली ५१, सुपन विली ५२, संसय विली ५३, पुग्गल विली ५४, पर्जाय विली ५५, पर सुभाव विली ५६, अन्यान विली ५७, न्यान आचरण परमेष्ठी न्यान विन्यान अन्मोद् ५८, अवल वली ५९, विषय विली ६०, अन्मोद् न्यान अवल वली अनन्त चतुष्टै सूक्ष्म प्रतिपादन न्यान अन्मोद् मुक्ति सुद्ध सुद्धं भवति ॥ ६१ ॥

अर्थ—इसतरह वनस्पतिकाय आदिमें अनन्तकाल भ्रमण करते करते मानव जन्म पावे तब किसी जीवको भेदविज्ञानकी मददसे मोक्षका प्रयोजन हो जाय, सम्य-ग्ज्ञानकी दृष्टि हो जावे अर्थात् सम्यग्दृष्टी हो जावे तो संसारसागरसे निकल जावे ॥ १ ॥ तब अतीन्द्रिय-आत्माके स्वभावमें प्रेम हो जावे, वीतरागमय सम्यग्दर्शन हो जावे, वीतरागभाव झलक जावे ॥ २ ॥ तब मन जिनेन्द्रमें लवलीन हो ॥ ३ ॥ वचनोसे वीतराग जिनेन्द्रका वचन उच्चारण करे ॥ ४ ॥ जिनेन्द्र कथित कथनको

हो बोले ।। ५ ।। अनन्त गुणधारी जिनेन्द्रको अपने मनमें बिठा ले ।। ६ ।। वीतराग भावमें आनन्द भोगे ।। ७ ।। वीतराग क्षायिक भावको भावे ।। ८ ।। वीतरागतासे पूर्ण मुक्तिका लाभ करे ।। ९ ।। वीतराग सुखमें मगन रहे ।। १० ।। जिनेन्द्ररूपी कमलमें बस जावे ।। ११ ।। जिन स्वभावमें रमण करें ।। १२ ।। वीतरागता गर्भित ज्ञान रक्खे ।। १३ । वीतराग भावका आभूषण बनावे ।। १४ ।। वीतरागमय भेद विज्ञानको साधे ।। १५ ।।

तब वीतरागतामय ज्ञान बढ़ता जायगा ।। १६ ।। वीतराग भावको ही अपना विषय भोग बना लेगा ।। १७ ।। वीतराग भावमें ही लिपटा रहेगा ।। १८ ।। तब वीतराग भाव ही इस वीतराग मैथुनसे उत्पन्न होगा ।। १९ ।। वीतराग भाव ही हितकारी ह ।। २० ।। वही भाव अरहन्त पदकी उत्पत्तिमें सहकारी है ।।२१।। इसीसे वीतरागमय ज्ञान होता जायगा ।।२२।। तब वीतराग परमात्मतत्त्व प्रगट होगा ।। २३ ।। वही अरहन्त जिनका स्वभाव है ।। २४ ।। यह जिनपद सर्व पुरुषार्थसे पूर्ण ह ।। २५ ।। वीतराग जिनेन्द्रका स्वभाव अविनाशी हे ।। २६ ।। तब वीतराग-मय ज्ञान सूर्यमें रमण होता है ।। २७ ।। वीतरागभाव प्रत्यक्ष प्रगट होता है ।।२८।। वही परम जिनका पद है ।। २९ ।। वही यथार्थ आत्मा पदार्थ है ।। ३० ।। वहीं निश्चय रत्नत्रय भाव है ।। ३१ ।। वहीं जिनेन्द्र प्रभु अनन्त वीर्यवान हैं ।। ३२ ।। वही वीतराग आनन्दमय परमात्मा है ।। ३३ ।। वही मोक्षका कारण वीतरागभाव है ।। ३४ ।। वही अनन्त वीतरागभाव है ।। ३५ ।। वही वीतराग पदार्थ है ।।३६।। वही अनन्त शक्तिधारी जिनराज है ।। ३७ ।। वह आनन्दमय जिन हे ।। ३८ ।। वही क्षायिक जिन ह ।। ३९ ।। वही मोक्षरूप जिन हे ।। ४० ।। जिन्होने जिनपदको स्वय प्राप्त किया हे ।। ४१ ।। उनका स्वभाव शुद्ध रहता है ।। ४२ ।। उस जीवके भेदविज्ञानकी सहायतासे विशेष शुद्धि प्रगट हो जाती हे ।। ४३ ।। अनन्त ज्ञानादि चतुष्टय प्रगट हो जाते है ।। ४४ ।। सुख सत्ता ज्ञान व स्वानुभूति मय चैतन्य ऐसे चार निश्चय प्राण प्रगट हो जाते है ।। ४५ ।। राग द्वेष भाव दूर हो जाते हैं ।।४६।। चारो घातीय कर्म क्षय हो जाते हैं ।। ४७ ।। मिथ्यात्व कषाय, शङ्का, भय, शल्यादि चले जाते हैं ।। ४८ ।। जन्म मरण बन्द हो जाते हैं ।। ४९ ।। विषयभोग नहीं रहता है ।। ५० ।। विषय सुख नही रहता है ।।५१।। स्वप्न समान क्षणिक अवस्था नही रहती है ।। ५२ ।। सब संशय मिट जाता है ।। ५३ ।। पुद्गलोका सयोग या

शरीरका संयोग छूट जाता है ।। ५४ ।। सांगारिक पर्याय नहो रहती है ।। ५५ ।। पर स्वभाव चला जाता है, स्वस्वभाव बना रहता है ।। ५६ ।। सब अज्ञान क्षय हो जाता है ।। ५७ ।। ज्ञानमें आचरण होता है, परम पदमें रहने वाला आत्मा ज्ञानानन्दको भोगता है ।। ५८ ।। अनुपम बलका धारी होता है ।। ५९ ।। सर्व विषयोका भाव क्षय हो जाता है ।। ६० ।। अनन्त सुख, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य आदि अनन्त चतुष्टयका धारी सूक्ष्म अतीन्द्रिय स्वभावका धारी ज्ञानानन्दमय मुक्तिको पाकर परम शुद्ध व सिद्ध हो जाता है ।। ६१ ।।

नीच निगोद् सुभाव—नीच निगोद् सुभाव, जिन उक्तं न दिस्टते १, जिन उक्त सुद्ध बोध विन्यान विंद् २, जिन उक्त उत्पन्न उत्पन्न हितकार न्यान ३, उत्पन्न सहकार न्यान ४, उत्पन्न न्यान विन्यान पद् ५, उत्पन्न न्यान दिस्टंति नीच सुभावेन नीच निगोद् ६, जिन उक्त सम्मत्त सम ७, उक्त समय सम दिस्टि न्यान अंकुर ८, सम दिस्टि दर्सि न्यान ९, सम दिस्टि वीर्ज उत्पन्न १०, सम दिस्टि सुद्ध सुभाव ११, सम दिस्टि न्यान अन्मोद् १२, हितमित परिणै कोमल १३, अवगाहन न्यान जिन बली दिस्टि १४, अवगाहन न्यान सुयं रमण १५, जिन विंजन सुर अगुरु लघु न दिस्टते १६, बाधा विलय शरीर बाधा रहित १७, एवं प्रभाव जिन उक्त १८, जिन उक्त न दिस्टि न समय न सहकार १९, न दिस्टि विप्रियो करै बोले २०, जिन समय, जिन सुभाव, जिन मिलन, न्यान रमण न दिस्टइ न रमइ न सुभावं न सहइ असहनी २१, नीच सुभाव जिन उक्त विली करै नीच निगोद् जिन उक्त गुरु न मूल सेवइ इत्यादि २२।

न्यान व्रत अहिंसा इत्यादि सूक्ष्म सुभाव तत्काल उत्पन्न तप आचरण चरण २३, कुन्यान विवर्जितं आयरण २४, सुद्ध पडिमा तिअर्थ २५, दान अनन्त विसेष २६, परम व्यक्त रूप २७, जाति उत्पन्न लंकृत गम्य अगम्य २८, अन्यान अस्रुत न्यानं न २९, स्रुत रमण ३०, दर्सि रमण ३१, न्यान रमण ३२, चरण रयण तप ३३,

जिन उक्त सूष्म सुभाव सूष्म क्रांति ३४, तस्य प्रभाव न द्रिस्यते न सहइ न समइ न सहकारै ३५, जनरंजन राग बंध आक्रांत करण प्रिय ३६, उक्त व्रत करण गुण छंडै ३७, तव करण, पडिमा करण, दान करण, पानी गालन करण, अन्यान थुति करण, रयण तय करण, नीच मिथ्या सहाइ, भय सहाइ, सल्य सहाव, संक सहाइ, सूष्य करण उवएसनं करोति जिनवयण लोपनं करोति ३८, करण सुभाव दिस्टि करण सहकार नीच सुषिणी सुभाइ जिन उक्त लोपनं नीच निगोद ॥ ३९ ॥

अर्थ—अब नीच निगोद स्वभावको कहते है। जिन परिणामोसे साधारण वनस्पति निगोद पर्याय पानेका बन्ध पडता है उन भावोको दिखाते हैं। जिसका नीच स्वभाव निगोदमें जानेयोग्य होता है वह जिनेन्द्र कथित तत्वपर श्रद्धा नही लाता है ॥१॥ जिनेन्द्रने कहा है शुद्ध ज्ञान स्वभावका अनुभव करना चाहिये ॥२॥ जिन कथित तत्वोका मनन करते-करते हितकारी ज्ञान पैदा हो जाता है ॥३॥ यह ज्ञान केवलज्ञानका कारण है ॥ ४ ॥ इसीसे केवलज्ञान पद प्रगट होता है ॥ ५ ॥ परन्तु नीच स्वभाव होनेके कारण मिथ्यात्वीके भीतर आत्मज्ञानकी श्रद्धा नही होती है। ऐसा जीव नीच निगोदकी गति बाँध लेता है ॥६॥ जिनेन्द्रने कहा है कि सम्यग्दर्शन एक सम या वीतराग भाव है ॥ ७ ॥ ऐसी बताई हुई आत्माकी समदष्टि ही केवलज्ञानका अकुर है ॥ ८ ॥ समदृष्टिसे दर्शन ज्ञान प्रकाश होते है ॥ ९ ॥ समदृष्टिसे आत्म वीर्य प्रगट होता है ॥ १० ॥ समदृष्टिसे शुद्ध स्वभाव चमकता है ॥ ११ ॥ समदृष्टिसे ज्ञानमें आनन्द भासता है ॥ १२ ॥ इसीसे हित रूप व मर्यादा रूप व कोमल नम्र भाव रूप परिणमन रहता है ॥ १३ ॥ इसीसे अनन्तज्ञान धारी वीतरागका बलवानपना झलकता है ॥ १४ ॥ ज्ञानमे डूबना स्वय आपमें रमण करना है ॥ १५ ॥

वीतरागी आत्माका प्रगट सूर्य सम स्वभाव अगुरुलघुरूप मिथ्यातीकी श्रद्धामें नहीं आता है ॥ १६ ॥ सिद्ध स्वभावमें कोई बाधा नहीं है, उनका ज्ञान शरीर अव्याबाध है ॥ १७ ॥ ऐसा जिन कथित आत्माके तत्वका प्रभाव है ॥१८॥ परन्तु जिन कथित तत्वपर मिथ्यात्वीकी श्रद्धा नहीं होती है, उसे आत्माका तत्व भाता

नही, वह आध्यात्मिक तत्त्वको सहन नहीं कर सकता है ।। १९ ।। उसे आत्माकी चर्चा प्यारी नही लगती ह, वह विरुद्ध बर्ताव करता है व विरुद्ध ही बोलता है ।।२०।। उसकी श्रद्धा वीतराग आत्मापर, जिन स्वभावपर, जिनकी भक्तिपर, ज्ञानके रमनेपर नहीं होती है, उसे वे सब बातें रुचिकर नही प्रगट होती हैं, वह तत्त्व चर्चाको सहन नहीं कर सकता है, उसका भाव असहनेका हो जाता है ।।२१।। उसका ऐसा नीच स्वभाव होता है । वह जिनवाणीका कथन नही जानता है, वह नीच निगोद स्वभावोके कारण जिन कथित सच्चे गुरुको जरासी सेवा नहीं करता है इत्यादि उसे सच्चा देव गुरु शास्त्र नही सुहाता है ।। २२ ।। ज्ञान पूर्वक अहिसा व्रत आदि व सूक्ष्म अतीन्द्रिय आत्माके स्वभावसे उत्पन्न तपमे आचरण करना ।। २३ ।। मिथ्या ज्ञान रहित चारित्र ।। २४ ।। शुद्ध रत्नत्रयमयी आदर्श ।। २५ ।।

अनन्त परिणमन रूप दान अर्थात् आपमें आपका सुख देना ऐसा परिणमन ।। २६ ।। आप ही दान लेनेवाला पात्र प्रगट है ।।२७।। जो स्वभावसे स्थूल सूक्ष्म सर्व ज्ञानसे शोभित है ।। २८ ।। जहाँ न कुमति है न कुश्रुत ज्ञान है ।। २९ ।। जो शास्त्रमें रमण करता है ।। ३० ।। जो सम्यग्दर्शनमे रमण करता है ।। ३१ ।। जो ज्ञानमें रमण करता है ।। ३२ ।। जो रत्नत्रयमें आचरण करता है ।। ३३ ।। वहाँ जिन कथित सूक्ष्म अतीन्द्रिय स्वभावमें ही अतीन्द्रियपनेकी शोभा है ।। ३४ ।। नीच निगोद स्वभावधारी मिथ्यादृष्टीके भीतर ऐसा आत्मप्रभाव नही दिखलाई पडता है, उसको आत्मकथन नहीं रुचता है वह सहन नहीं कर सकता है ।। ३५ ।। वह जनरंजन रागमे बन्धा हुआ इंद्रियोके द्वारा भोगकी क्रिया करता है ।। ३६ ।। जिनवाणी कथित व्रत क्रिया व गुणोको छोड़ देता है, ध्यानमें ही नही लेता है ।। ३७ ।। इस मिथ्यात्वीको इन बातोका उपदेश नही लगता है कि तप करो, श्रावककी प्रतिमाएँ पालो, दान करो, पानी छानकर पीओ, जिन आज्ञाकी प्रशसा करो, रत्नत्रयका आचरण करो, नीच मिथ्यात्व स्वभावके कारण भय स्वभाव, शल्य स्वभाव, शङ्का शील स्वभावसे यह सब सुखकारी उपदेश नही रुचता है । वह जिन वचनका लोप करता है, आज्ञा उल्लघन करता है ।। ३८ ।। इंद्रियोके भीतर रमनेका श्रद्धान रखता है उसका स्वभाव सुखिया हो जाता है । जो जिनवाणीका लोप करता है वह नीच निगोदगति बाधता है ।। ३९ ।।

जिन उक्त जनरंजन राग, कलरंजन दोष, मनरंजन गारौ,

न्यान आवर्ण, दर्सि आवर्ण, मोहक आवर्ण, न्यान अन्तर, संक सल्य संक भय, कषाय, मिथ्या कुन्यान, त्रिविहि कम्म, अन्मोय विरोध १, विलय न दिस्टि न सब्द न उत्पन्न न सहकार न औकास, न अन्मोद न विषय न समय न सहकार, सुभाव न करोति २, केन सुभावेन जनरंज कलरंज मनरंज दस मोहंध सुभाइ जिन उक्त न दिस्टते ३, न्यान उक्त न समाइ न सुहाइ न सहकार, जिन उक्त पद लोपनं नीच सुभाव, नीच निगोद ४।

जिन उक्त अष्यरं, अषय रमण, परम अष्यर, परम अष्यर, परम सुर रमण ५, विजन रमण, पद रमण, अर्थ रमण, तिअर्थ रमण ६, समर्थ रमण ७, समय रमण, सहकार रमण ८, औकास रमण ९, अन्मोद रमण १०, न्यान षिपक रमण ११, मुक्ति रमण १२, सूक्ष्म सुख रमण १३, रंज रमण १४, उत्पन्न रंज १५, उत्पन्न सुयं लब्धि रंज १६, सोलही रंजन १७, जं षिपिय रमण १८, तं नंद रूव १९, हितकार रंज २०, हितकार सुयं लब्धि रंज २१, सोलही रंज कमल परिणाम २२, ममल अनन्त तं अमिय रमण २३, रोम प्रियो रमण २४।

नं नन्द आनन्द सहकार रंज २५, सुयं लब्धि षिपक इष्ट उत्पन्न २६, सोलही गुपिज गुहिज परिणाम २७, ममल अनन्त नन्त रंज २८, नं चेय दिप्ति दिस्टि २९, नन्त दिप्ति रमण ३०, तं नन्द आनन्द चिदानन्द ३१, विन्यानु रंज जान ३२, सुयं लब्धि इस्ट उत्पन्न सोलही परिणाम ३३, इष्ट उत्पन्न ममल नन्तानन्त रंज नं रमण ३४, जिन रमण ३५, तं नन्द आनन्द चिदानन्द तं सहजानन्द ३६, रंज जिन रंज समर्थ ३७, अंगदि अनन्तानन्त पद विंद ३८, सर्वांग लोक अवलोक अनन्तानन्त परिणाम ३९, जिन उक्त मुक्ति ४०।

तस्य सुभाव मनरंज गारौ बन्धान मोहंध द्स दि्ष्टि, जन-रंज कलरंज विषय दि्स्टि करण क्रिया, उद्देस करण क्रिया, गारौ करण क्रिया, राग करण क्रिया, द्र्स मोहंध करण क्रिया, वयकरण क्रिया, तवकरण क्रिया, गारौ जिन उक्त लोपन नीच सह्कार पर्जाय, गारौ जिन उक्त न दि्स्टउ न सह्उ न वयन न उक्त न समई न सह्कार नीच सहाइ मिथ्या भयभीत जिन उत्तु लोपनं करोति, तं नीच निगोद्, जिन उत्त नन्त चतुष्टै गारव सह्कार लोपनं करोति, नीच सह्कार नीच उत्पन्न मन नीच सब्द् वयण नीच ४१ ।

क्रिया सह्कार क्रांति नीच ४२, जाति उत्पन्न नीच ४३, कलण नीच ४४, रुचि प्रिये नीच ४५, मान अभिमान नीच ४६, न्यान नीच ४७, करणतव नीच ४८, बल बीर्ज नीच ४९, सह्कार नीच ५०, पद् नीच ५१, स्पर्सन नीच ५२, रसन नीच ५३, घ्राण नीच ५४, चषु सोत्र नीच ५५, सब्द् नीच ५६, सुभाव इन्द्री इष्ट विषय नीच ५७, नीचश्री ५८, नीच राग ५९, नीच भय ६०, नीच पद् ग्रह्ण ६१, नीच जोइ ६२, न समय मैं मूर्ति ६३, नीच सुर रमण ६४, विषय नीच ६५, विस्वास विषय नीच ६६, पर्जाव दि्ष्टि सह्-कार विषय रिद्धि नीच ६७, नीच सहाउ ६८, नीच चेत ६९, नीच उत्पन्न पर्जाव ग्रह्ण अन्मोद् ७०, विषय प्रपंच पर्जाव विभ्रम सह्-कार रमण ७१, शिष्य अशिष्य उत्पन्न उपाय नीच ७२, नीच सब्द् ७३, नीच अलाप सुभाव ७४, सभावेन अनन्त नीच सहाउ, नीच निगोद् भ्रमणं करोति, इतर सुाभवेन जिन उत्त लोपन इतर निगोद् नीच इतर सुभाउ जिन उत्त लोपनी नीच इतर गति अनादिकाल भ्रमणं करोति ७५ ।

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान्ने कहा है कि जनरजन राग, शरीर रजन दोष, मन-रजन अभिमान, ज्ञानावरण कर्म, दर्शनावरण कर्म, मोहनीय कर्म, अन्तराय कर्मके

व प्रीति नीच कामोंकी तरफ होती है ।। ४५ ।। वह नीच कामोंको करके अभिमान रखता है ।। ४६ ।। उसका ज्ञान मिथ्या व नीच होता है ।। ४७ ।। वह मिथ्या तप करता है ।। ४८ ।। वह अपने बल वीर्यको नीच काममें खर्च करता है ।। ४९ ।। वह नीचोकी सगति रखता है ।। ५० ।। वह नीच पदमें पडा रहता है या उसका पग नीच कामोमें ही पडता है ।। ५१ ।। वह स्पर्शन इन्द्रियका विषय नीच व खोटा कुआचाररूप करता है ।। ५२ ।। वह रसना इन्द्रियका विषय नीच रखता है, अभक्ष्य खाता है ।। ५३ ।। उसका नाकका विषय नीच होता है ।। ५४ ।। आँखोका व कानोका विषय नीच व खोटा होता है ।। ५५ ।। वह नीच बुरे शब्दोको बोलता है ।। ५६ ।।

उसका स्वभाव पाँचो इन्द्रियोके नीच व अन्यायपूर्ण विषयोके सेवनमें लगा रहता है ।। ५७ ।। उसकी लक्ष्मी नीच कामसे आती है व नीच काममे खर्च होती है ।। ५८ ।। उसका राज्य नीच व अन्यायपूर्ण होता है ।। ५९ ।। वह नीच व निदनीक भय रखके कायर रहता है ।। ६० ।। वह नीचे पदोको ग्रहण करता है, नीच निदनीक खोटे कामोके प्रचारमे मुखिया बन जाता है ।। ६१ ।। उसकी दृष्टि नीच ही होती है ।। ६२ ।। वह कभी ज्ञानमूर्ति आत्माको नही देख पाता है ।। ६३ ।। वह नीच गानोके सुननेमें रमण किया करता है ।। ६४ ।। वह खोटे विषयोको सेवता है ।। ६५ ।। उसका विश्वास या विषय नीच होता है, उसको मिथ्या तत्त्वोका विश्वास होता है ।। ६६ ।।

शरीरमें मगनताके कारण खोटे धनको व विषयोको ग्रहण करता है ।।६७।। उसके मित्र भी नीच होते हैं ।।६८।। उसकी चेतना नीच व बेखबर अन्धो रहती है।।६९।। वह नीच अवस्थाके ग्रहणमें आनन्द मानता है ।। ७० ।। वह विषयोके प्रपञ्चजालमें फँसा रहकर शरीरको भ्रमसे अपना मानता हुआ उसीमें रमण करता है ।।७१।। वह गुरु होकर शिष्योको व धनादि परिग्रहको नीच उपायोसे सग्रह करता है ।। ७२ ।। उसके शब्द नीच मार्गके प्रेरक होते है ।। ७३ ।। उसका स्वभाव नीच वार्तालापका होता है वह स्त्रीकथा, भोजनकथा, देशकथा, राजाकथाएँ, प्रसन्न होकर किया करता है ।। ७४ ।। ऐसे ही अनन्त प्रकारके नीच स्वभावसे नीच निगोदकी पर्यायमे जाकर भ्रमण किया करता है । अन्तर आत्मासे भिन्न बहिरात्मा स्वभावसे जिन कथित आज्ञाको लोप करके मरके इतर निगोदमें जन्म लेता है, जिसका स्वभाव बहिरात्मा-

रूप है। जो जिन की आज्ञाका खण्डन करता है वह नीच प्राणी नीच गतियोंमें अनन्त-काल भ्रमण करता रहता है ॥ ७५ ॥

भावार्थ—यहाँ यह दिखलाया है कि निगोदमें यह जीव कैसे भावोसे जाता है, जहाँसे निकलना अनन्तकालमे भी कठिन है।

नीच लब्धि १, लोभ नीच २, कोप अनन्त ३, नीच मान अनन्त ४, नीच माया, पर्जाय अनन्त विसेष ५, त्यागी मिलै नीच विषय अनन्त पर्याय ६, न मिलै त्यागी पर्जाय मिलण अनन्त पर्याय ७, न मिले विषय मिलन न विषय पर्जाय रष्यनं करोति ८, विषय रमण सुभाव नीच मिलन मिथ्या पर्जाव ९, त्यागी मुक्त पर्जाव १०, अत्यागी पर्जाव ग्रहण ११, नीच रमण समय त्यागी पर्याय १२, समय अत्यागी १३, न समय समय १४, मिथ्या रमण प्रकृति १५, मिथ्या प्रकृति त्यागी मुक्त अप्रकृति पर्जाव १६, त्यागी अमुक्त ग्रहण समय प्रकृति १७, मिथ्या रमण एकान्त १८, त्यागी सुभाव रमण अनेकांत पर्जाव १९, त्यागी न मुक्त ग्रहण करोति २०, एकांत मिथ्या रमण २१, विप्रियो मिथ्यात प्रियो २२, त्यागी मिलण अनन्त पर्जाव त्यागी विप्रियो भवतु २३, विप्रिय मिथ्या रमण नीच बुद्धि २४, नीच पर्याय रमण २५, नीच निगोद पतनं भवतु २६, जिन उक्त न्यान रमण २७, प्रथम न्यान पद श्रेष्ठ पद २८, न्यान विन्यान सहकार मिलन आहार २९, न्यान सहकार आहार ३०, बाधा रहित अबाधा आहार ३१।

इच्छित न्यान रमण बाधादि मुक्त भेषज ३२, भेषज बाधा पर्जाय अनन्त मिलण ३३, संसार सरीर भोग उपभोग मन, वच, कांति, कृत, कारित अनुमत ३४, बाधा उद्देस परिणै प्रमाण ३५, बाधा इन्द्रिय विषय दिस्टि ३६, अदिस्ट रिस्टि ३७, रिस्टि समय इस्टि ३८, सह इष्ट उत्पन्न इष्ट ३९, अत्याग मुक्ति इष्टि ४०,

वशीभूत हो, शंका शल्य भयमें पड़कर, कषायोके आधीन हो, मिथ्याज्ञान धारकर, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म, तीन प्रकार कर्मोंमें ग्रसित रहकर सच्चे आनन्दका लाभ इस जीवने नहीं किया ॥ १ ॥ इन सब पर भावोका नाश नहीं हुआ। क्योकि इस जीवने कभी अपने स्वभावपर दृष्टि नहीं दी। न शब्द सुने, न ज्ञान पैदा हुआ, न कोई सहायता मिली, न स्वभावमें प्रवेश किया, न स्वभावका आनन्द लिया, न उस तरफ ध्यान हा लगाया ॥ २ ॥ क्यो ऐसा हुआ, कारण यही है कि जहाँ जनरज, शरीर रंज, मनरंज भाव होता है व दर्शनमोहसे श्रद्धान अन्धा होता है वहाँ जिनेन्द्र कथित उपदेशपर श्रद्धा या रुचि नहीं होती है ॥ ३ ॥ ज्ञानकी बातें उसे नहीं सुहाती हैं। वह ज्ञानकी संगति नहीं करता है, वह जिनवाणीके कथनका लोप करता है, जिन आज्ञाको नही मानता है, ऐसे नीच स्वभावको नीच निगोदमें जानेके लायक स्वभाव कहते है ॥ ४ ॥ जिनेन्द्र भगवान्की वाणीमें ये अक्षर प्रगट हुए हैं कि अक्षय या अविनाशी आत्माके स्वभावमें रमण करना चाहिये। उनका श्रेष्ठ उपदेश यही है कि परम अक्षर स्वभाव अविनाशी परमेश्वर स्वभावमे या परम सूर्यमें रमण करो ॥ ५ ॥

किसी शब्दके व्यञ्जनमें रमण व पदमें रमणका यही भाव है कि आत्मा पदार्थमें रमण किया जावे या रत्नत्रय स्वभावमें रमण किया जावे ॥ ६ ॥ स्वरूपमे रमण करना ही शक्तिशाली रमण है ॥ ८ ॥ उसीको समय या आत्मामें रमण कहते है ॥ ८ ॥ यही मोक्षमार्गमें रमण है ॥९॥ यही अनन्त गुणोमें रमण है ॥१०॥ यही आत्मानन्दमें रमण है ॥ ११ ॥ यही मोक्षस्वभावमे रमण है ॥ १२ ॥ यही सूक्ष्म अतीन्द्रिय सुखमें रमण है ॥ १३ ॥ यही आनन्दमें रमण है ॥ १४ ॥ इसीसे आनन्द गुण बढता है ॥ १५ ॥ इसीसे स्वय प्राप्त होनेवाला अनन्त सुख होता है ॥ १६ ॥ स्वरूपमें रमण सो ही दर्शनविशुद्धि आदि षोडशकारण भावनाओमें रमण है ॥ १७ ॥ यही निर्मल पदमें रमण है ॥ १८ ॥ वही आनन्द स्वभाव है ॥ १९ ॥ वहीं हितकारी आनन्द है ॥ २० ॥ वही हितकारी स्वय प्राप्त होनेवाला अनन्त सुख है ॥ २१ ॥ वहीं षोडशकारण भावनाओकी मगनतासे आत्मारूपी कमलका भाव झलकता है ॥ २२ ॥ वहीं अनन्त शुद्धातामे अमर रूपसे रमण है ॥ २३ ॥

वहाँ ऐसा रमण है कि साधकका रोम-रोम प्रफुल्लित हो जाता है ॥ २४ ॥

वहीं परमानन्द सहित मग्नता है ।। २५ ।। इसीसे स्वयं झलकनेवाला क्षायिक इष्ट पद प्रगट हो जाता है ।। २६ ।। यही षोडशकारण भावनाओके द्वारा आत्माकी गुफामे विराजित शुद्ध भाव है ।। २७ ।। वही शुद्ध व अनन्त आनन्द है ।। २८ ।। यहीं चेतनाका दर्शन व ज्ञान है ।। २९ ।। यही अनन्तज्ञानमें रमण है ।। ३० ।। यही आनन्दमय चिदानन्द पद है ।। ३१ ।। वही ज्ञानानन्द मोक्षमार्ग है ।। ३२ ।। वहीं स्वय शक्तिसे उत्पन्नवाले षोडशकारण भावनाओका परिणाम है ।। ३३ ।। वही उपादेयरूप प्रगट अनन्त आनन्दमें मगनता है ।। ३४ ।। वही जिनेन्द्रके भीतर रमण है ।। ३५ ।। वही नन्द है, आनन्द है, चिदानन्द है, सहजानन्द हे ।। ३६ ।। वहीं वीतरागमय आनन्द व वीर्य है ।। ३७ ।। वही अनन्त गुणधारी आत्माका अनुभव है ।। ३८ ।। वही पूर्ण लोकको देखनेवाला भाव प्रगट होता है ।। ३९ ।। वही जिनेन्द्र कथित मोक्षका स्वभाव है ।। ४० ।।

परन्तु इस शुद्ध आत्म स्वभावको वह नहीं देख सकता है, जिसका स्वभाव मनको रजायमान करनेवाले अभिमानमें ग्रसित है, जिसका श्रद्धान दर्शनमोहसे अन्धा है, जो मानवोके प्रसन्न रखनेमें व शरीरको राजी रखनेमें फँसा है, जिसकी दृष्टि पाँचो इद्रियोके विषयभोगमें उलझी है, जो विषयोकी क्रिया ही किया करता है, विषयभोगका प्रयोजन रखकर जो काम करता है, जो अभिमानको पुष्ट करनेवाली क्रिया करता है, जो रागको बढानेवाली क्रिया करता है, मिथ्यात्वको पोषनेवाली क्रिया करता है, मिथ्यात्व सहित व्रत करता है, तप करता है, अभिमानके वश हो जिनेन्द्रकी आज्ञाको लोप करता है, नीच परिणाम या अवस्था रखता है, मदके कारण जिनेन्द्र कथित तत्त्वका श्रद्धान नही करता है न देखता है न उसे सुहाता है, न स्वय कहता है, न कथनको सुनता है, न कभी तत्त्व ज्ञानियोका सग करता है, नीच स्वभावको धारके मिथ्यात्वके कारण भयभीत रहता है। जिनेन्द्र कथित आज्ञाको लोप करता है, ऐसा ही प्राणी नीच निगोद स्वभावका धारी है, आत्मामे अनन्तज्ञानादि चतुष्टयकी शक्ति है, वह नीच अभिमानसे इस बातको नही मानता है, उसका मन भी नीच विचार करता है, उसके शब्द भी नीच निकलते हैं, उसकी वाणी भी नीच होती है ।। ४१ ।।

उसकी सर्व कायकी क्रिया भी नीच होती है ।। ४२ ।। वह नीच जातिमें पैदा हो जाता हे ।। ४३ ।। उसका व्यवहार नीच होता है ।। ४४ ।। उसकी रुचि

निन्दनीय अवस्थामें रमण करता है ।। २५ ।। इसीमे वह नीच भावसे निगोद पर्याय-में गिर पड़ता है ।। २६ ।। परन्तु जो जिनेन्द्र कथित सम्यग्ज्ञानमें रमण करते हैं ।। २७ ।। वे केवलज्ञानके पदको ही श्रेष्ठ पद मानते हैं ।। २८ ।। वे उसी बातको ग्रहण करते हैं जिससे ज्ञानकी वृद्धि हो ।। २९ ।। ज्ञान बढानेको ज्ञानका ही आहार करते हैं ।। ३० ।। उनपर बाधा रहित ज्ञानका आहार ऐसा होता है जिससे कोई बाधा नही पहुँचा सकता है ।। ३१ ।। यह उपादेय शुद्ध ज्ञानमें रमण करते हैं । यही वह बाधारहित औषधि है जिससे संसार रोग मिटता है ।। ३२ ।। इस ससारमें बाधाकारी अनन्त पर्याय मिल चुकी है जिनमें सच्चा सुख नहीं पाया ।। ३३ ।।

इस संसारमें शरीरोको धारकर मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदनासे नौ प्रकार भोग-उपभोग ही करता रहा ।। ३४ ।। बाधाकारी ससारका ही उद्देश्य रहा व इसी मिथ्याज्ञानमे परिणमन करता रहा ।।३५।। बाधाकारी व ससारवर्द्धक इद्रियोके विषयोमें ही दृष्टि रही ।।३६।। हानिकारक मिथ्यादृष्टि बनी रही ।।३७।। हानिकारक आत्माकी परिणति ही अच्छी लगी ।। ३८ ।। इसी इष्टभावसे इसी इष्ट परिणतिको अर्थात् खोटी परिणतिको ही बढ़ाता रहा ।। ३९ ।। त्याग भाव नहीं सुहाया, भोगोंमे ही प्रेम करता रहा ।। ४० ।। ऐसे शब्द कहता रहा जिमसे शब्द रहित आत्माका लोप हो, अर्थात् आत्मज्ञानसे विपरीत बातें कीं ।। ४१ ।। पुण्यरूपी सरोवरसे उत्पन्न कमल समान धन, धान्य, मणि, रत्न आदि विभूतिमें रमण करता रहा ।। ४२ ।। इस संसाररूपी रोगसे मुक्त होनेकी औषधि यही है जो बाधा रहित मुक्तिका पता मिल जावे—स्वानुभव हो जावे ।। ४३ ।। तब उसका ज्ञान भय रहित हो जाता है । उसको अपने स्वरूपमें निःशंक भाव हो जाता है, वह निर्भय ज्ञानको ही देखता है ।।४४।। वह आत्माके ज्ञानमें रमण करनेवाला त्यागी हो जाता है ।।४५।। वह स्वय मोक्ष स्वरूपी शुद्धोपयोगी हो जाता है ।। ४६ ।। वह स्वय ज्ञान स्वरूपमें रहनेवाला स्वभाव रखता है ।। ४७ ।। उसको अपने स्वरूपमें भय नही रहता है, इसका सर्व भय, सब शल्य, सब शकाएँ क्षय हो जाती हैं ।। ४८ ।। वह शका व शल्यसे रहित निर्भय रहता है ।।४९।। वह अमूर्तीक पर वस्तुके ग्रहणका त्याग स्वरूप ही रहता है ।। ५० ।। वही सच्चा त्यागी है, वही मुक्त स्वभाव है ।। ५१ ।। उसका लक्ष्यबिंदु शुद्ध आतमतत्त्व है, वह तो आनन्ददाता ही है, वह त्यागी इस आनन्दके लेनेवाला पात्र है ।

भावार्थ—आप ही वह पात्र है, आप ही दातार है, आपसे आपको वह आनन्द देता है ।। ५२ ।।

इस तरह ज्ञानीको मोक्ष स्वभावकी प्राप्ति होती है ।।५३।। परन्तु यदि इस भावको जो नहीं पाता है वह जैसा जिनेन्द्रने कहा है नीच स्वभावको रखता हुआ मिथ्यात्व स्वभावसे जिनेन्द्रकी आज्ञाका लोप करता है ।। ५४ ।। उसको सच्चा सुख नहीं मिलता है ।। ५५ ।। उसको मोक्षमें रमण भाव नहीं होता है ।। ५६ ।। उसको न तो ज्ञानका आहार मिलता है, न ज्ञानकी औषधि मिलती है ।।५७।। वह अनन्त-गुणोंके धारी आत्माका ज्ञान नहीं पाता है इससे मुक्त नही होता है ।।५८।। उसका स्वभाव नीच होता है व नीच अन्यायके विषयोंमें रमण करता है, जिनेन्द्रकी आज्ञा-का लोप करता है, जिनधर्मके विरुद्ध चलता हे ।। ५९ ।। वह नीच अशुभ परिणामों-में रमण करता रहता है ।।६०।। विषयोके रमणमे सहकारीसे मेल रखता है ।।६१।। यह मिथ्यादृष्टी अपने नीच स्वभावके कारण नाचे लिखे उपकारियोसे भयभीत रहता है, उनके पास खड़ा नही होता है, जिन कथन, जिनबन्धुगण, जिनवाणी, जिनेन्द्रकी श्रद्धा, जिनेन्द्रपदका लक्ष्य, वीतराग अतीन्द्रिय आत्मापर ध्यान, वीतराग सूक्ष्म आत्मीक स्वभावपर दृष्टि । इन बातोपर ध्यान न देकर नीच व खोटे इंद्रिय विषयो-की संगति करता है । ससारके मदमें चूर रहता है । नीच स्वभावसे जिनवाणीकी आज्ञाका लोप करता है तब वह नीच गति बाँधकर इतर निगोदमे गिर पड़ता है । इस तरह संसारी जीव निगोदके कष्ट पाते हैं ।। ६३ ।। जिस किसीको कोई त्यागी भी मिल जावे तो भी उनसे विषयोकी वासनाको दृढ़ करता है, विषयोका स्वरूप ही मनमें रखता है, वचन विषयपोषक बोलता है, कायसे विषयोके भोग करता है, मन, वचन, कायसे भोगोमे रमण करता है, त्यागीके मिलनेपर भी शरीरको रुचिकर पदार्थों-की वाछा बढ़ाता है, अनेक भण्डार चाहता है, राज्यकी, रत्नोकी, मणि मोती सुवर्ण-की ही चाह करता है ।। ६४ ।। शरीरमें दृष्टि रखनेसे उसको कभी भी आत्मीक आनद, ज्ञानानन्द नहीं मिलता है, उसकी श्रद्धा एक आत्माके निज भावपर नही रहती है, यह सुखी नहीं होता है, नीच स्वभावसे जिनवाणीका लोप करता है, यह अपने नीच स्वभावसे ज्ञानानन्दको न पाता हुआ आत्माको आकुलित रखता है, वह नीच इतर निगोदकी पर्यायमे जाकर जन्म पाता है ।। ६५ ।।

भावार्थ—ऊपर श्री तारणतरण स्वामी पाँच स्थावरोकी पर्यायमें जानेवाले

सर सब्द असब्द गुपित ४१, सर कमल उत्पन्न धन, धान्य, सुवर्ण, मणि, रयण रमण ४२।

बाधा रहित अबाधा मुक्ति मिलन भेषज ४३, अभयप्रेच्छा न्यान ४४, न्यान रमण त्यागी ४५, मुक्ति सरूपी ४६, सुयं रूपी सरूपी सुभाव ४७, स्वरूप भय विनस्य भय सल्य संक विलयंतु ४८, अभय सेवन संक सल्य रहित ४६, निरूप त्यागी स्वरूपी ५०, त्यागी मुक्त ५१, जदिदातृ लष्य तदि पात्र त्यागी ५२, मुक्ति सुभाव प्रापति ५३, तदि विसेष जिन उक्त नीच सहाय इतर सहाय जिन उक्त लोपनं ५४, नंद त्यागी ५५, पर्जाव मुक्त रमण त्यागी ५६, मुक्त न्यान, आहार भेषज ५७, अनन्त विसेष त्यागी ग्रहं मुक्त न भवतु ५८, नीच सहाव नीच विषय रमण जिन उक्त लोपनं करोति ५६, नीच पर्जाय रमण ६०, विषय रमण सहकार ६१, जिन उक्त, जिन बन्धु, जिन वयण, जिन दर्स, जिन लष्य, जिन अलष्य लष्य, जिन सुभाव सूष्म नीच सह भयभीत नीच इतर इन्द्रिय सहकार गारौ सुभाव नीच सहकार जिन उक्त लोपनं करोति ॥ ६२ ॥

तदि नीच निगोद इतर निगोद पतनं करोति, अनन्त संसारिणो जीवा ६३, जेन केनापि त्यागी मिलण विषय, स्वरूप, विषय, मन विषय, वचन विषय, क्रांति विषय, सुभाव रमण त्यागी, मिलै और पर्जाव सहनी असहनी असहनी अनन्त पर्जाव रूव ग्रहण सुभाव निधि राजा रयण मणि, सुवर्ण मुक्तामणि विसेष ६४, पर्जाव दिष्टि न मिले अन्मोद आनन्द न्यान अन्मोद एक समय पर्जाव दिस्टि विनन्द भवति नीच सुभाव जिन वयण लोपनं करोति, नीच पर्जाव सुभाव न्यान अन्मोद विनन्द समय मात्रेण नीच इतर सहकार नीच इतर पर्याय लब्धि भवतु, नीच इतर निगोद तुच्छ भवतु ॥६५॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टी अज्ञानी जीव अपनो ज्ञानादि शक्तियाका उपयोग नीच

कामोंमें करता है ॥ १ ॥ लोभ कषायके उदयसे नीच काम करता है ॥ २ ॥ जिस-पर क्रोध होता है वह अनन्तानुबन्धी होता है, बहुत काल तक द्वेष छोड़ता नही है ॥ ३ ॥ अनन्तानुबन्धी मान होता है, नीच भाव रखके मान करता है, दूसरोका अपमान करता है ॥ ४ ॥ मायाके उदयसे बहुत नीच कपटके काम करता है, अनन्त परिणामोकी विशेषता रखता है ॥ ५ ॥ यदि कोई प्राणी साधु मिलते है, उनसे भी सच्चा उपदेश नही लेता है, अनत प्रकारके विषय भावोकी पुष्टिका लक्ष्य रखके उपदेश ग्रहण करता है, नीच मार्गकी तरफ जाता है ॥ ६ ॥

यदि कोई त्यागी न मिले तो भी अपने शरीरमें रागी होकर अनन्त परिणाम किया करता है ॥ ७ ॥ जो इंद्रियोके विषय नहीं मिलेंगे उनके मिलानेकी इच्छा करता है। मनुष्य पर्यायमें जो विषय मिले हुए है उनकी रक्षा करता है ॥८॥ इस मिथ्यात्वीका स्वभाव विषयोके भीतर रमण करनेका होता है, नीचोसे मिलता है, मिथ्या भाव किया करता है ॥ ९ ॥ त्यागियोकी सगति छोडनेका स्वभाव रखता है ॥१०॥ जो त्यागी नही है, ससारासक्त हैं, उनके भावोको ग्रहण करता है ॥११॥ उसका स्वभाव ऐसा बन जाता है कि वह नीचोके साथ रमण करता है, आत्मज्ञानी-का सग नही करता है ॥ १२ ॥ उसका आत्मा किसी विषयका त्याग नही करता है ॥१३॥ उसे बहिरात्मापना ही सुहाता है। उसका आत्मा मिथ्यादृष्टी बना रहता है ॥ १४ ॥ उसका स्वभाव मिथ्या बातोमें रमण करनेका हो जाता है ॥ १५ ॥ मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे त्यागियोकी संगतिको छोड़कर मिथ्या स्वभावको ही रखता है ॥ १६ ॥

त्यागी यदि कोई मिलता है तो उनसे मुक्तिसे विरुद्ध ससार पोषणकारी बातको ग्रहण करता हे ऐसा आत्माका स्वभाव रखता है ॥ १७ ॥ एकात मिथ्यात्व-में रमण करता है। वस्तु अनेक स्वभाववाली है उसको एक स्वभाववाली मानता है ॥ १८ ॥ अनेकात स्वभावधारी आत्माके भीतर रमण नहीं करता है। त्यागीसे मुक्तिके स्वभावको नही स्वीकार करता है ॥ २० ॥ एकांत मिथ्यात्वमें रमण किया करता है ॥ २१ ॥ त्यागने योग्य मिथ्यात्व ही उसको प्यारा लगता है ॥ २२ ॥ त्यागी कोई मिल जाता हे तो भी वह अनन्त गुणधारी आत्माका विश्वास नही करता है, विपरीत ही रहता है ॥ २३ ॥ विपरीत मिथ्यात्वमे रमण करता है। जैसे हिंसासे धर्म मान लेता है, बुद्धि नीच हिंसक कामोपर जाती है ॥ २४ ॥ यह नीच

मिथ्यात्व पोषक व सम्यक्त्व विरोधक भावोंको दिखलाया है। मिथ्यात्व जीवका महान शत्रु है, पाँचों स्थावरोंमें जितने क्षुद्र भाव होते हैं उनको बताया है। एक श्वासमें अठारह बार जन्म मरण करनेवाले सर्व प्राणियोंमें नीचे प्रमाण लगातार भव होते हैं। एक अन्तर्मुहूर्तमें ६६३३६ भव होते हैं अर्थात् ३६८५$\frac{1}{3}$ श्वासमें ६६३३६ भव होते हैं। एक मुहूर्त ३७७३ श्वासका होता है।

(१) पृथ्वीकायिक—बादरके ६०१२			
सूक्ष्मके ६०१२	..		१२०२४
(२) जलकायिक—बादरके ६०१२			
सूक्ष्मके ६०१२	..		१२०२४
(३) अग्निकायिक—बादरके ६०१२			
सूक्ष्मके ६०१२			१२०२४
(४) वायुकायिक—बादरके ६०१२			
सूक्ष्मके ६०१२	...		१२०२४
(५) वनस्पतिकाय—निगोद साधारण बादर ६०१२			
,, ,, सूक्ष्म ६०१२			
प्रत्येक वनस्पति ६०१२			१८०३६
एकेन्द्रियोंके सूक्ष्म भव			६६१३२
द्वीन्द्रियोंके			८०
तेन्द्रियोंके			६०
चौन्द्रियोंके			४०
पचेन्द्रियोंके असैनी तिर्यंच	८		
सैनी तिर्यंच	८		
मानव	८		२४
कुल			६६३३६

श्री गोम्मटसार जीवकांड गाथा—

सीदी सट्ठी तालं, वियले चउवीस होंति पंचक्खे।
छावट्ठिं च सहस्सा सयं च बत्तीसमेयक्खे॥ १२४॥

पुढविदगागणिमारुद साहारणथूलसुहुमपत्तेया ।
एदेसु अपुण्णेसु य एक्केक्के बार खं छक्कं ॥ १२५ ॥

अर्थ—साधारण वनस्पतिको निगोद कहते हैं। ऊपर दिखाया है कि जो विषयांध होते हैं, नास्तिक होते हैं, जिन आज्ञा नहीं माननेवाले होते हैं, वे जीव नीच गति बाँधकर निगोदमें जन्मते हैं। निगोदसे निकलना अनन्तकालमें भी दुर्लभ है। अतएव यह शिक्षा ग्रहण करना चाहिये कि मानव जन्म पाकर सत्संगति करे, जैन त्यागी महात्माओंकी संगति करे, जिनवाणीका मनन करे, तत्त्वज्ञान प्राप्त करे, आचार शुद्ध पाले, आत्मज्ञानको भावे, सम्यग्दर्शनका लाभ करे व निरन्तर अपने ही आत्माके शुद्ध स्वभावमें रमण करे, स्वानुभव करे, यही रत्नत्रयकी एकता है, यही कर्म निर्जराकारक ध्यानकी अग्नि है, व यही मोक्षका मार्ग है, यही ज्ञानानन्दका लाभ है, यही मोक्षके स्वभावमें रमण है।

विकलत्रय चौवीस स्थान

दो इन्द्रिय जीवमें चौवीस स्थान

१. गति–तिर्यंच
२. इन्द्रिय–दो इंद्रिय
३. काय–त्रसकाय
४. योग ४–औदारिक २, १ वचन अनुभय, १ कार्मण
५. वेद–नपुंसक
६. कषाय–२३ (२५–स्त्री व पुंस)
७. ज्ञान–२ कुमति, कुश्रुत
८. संयम–१ असंयम
९. दर्शन–१ अचक्षु दर्शन
१० लेश्या–३ कृष्ण, नील, कापोत
११. भव्य–२ दोनो
१२. सम्यक्त्व–१ मिथ्यात्व
१३. सैनी–१ असैनी
१४ आहारक–२ दोनो
१५. गुणस्थान–१ मिथ्यात्व
१६. जीव समास–दो इंद्रिय सम्बन्धी
१७. पर्याप्ति–५ मन विना
१८. प्राण–६ इंद्रिय २, काय, वचन, बल, आयु, श्वास ।
१९. संज्ञा–४ चार
२०. उपयोग–३ ज्ञान २, दर्शन १
२१. ध्यान–८ आर्त्त ४, रौद्र ४
२२. आस्रव–४० (मिथ्या० ५ + अविरति ८ तीन इन्द्रिय मन विना + क० २३ + योग ४)
२३. योनि–२ लाख
२४. कुल कोडि–७ लाख

तीन इन्द्रिय चौवीस स्थान

१. गति–तिर्यञ्च
२. इंद्रिय–तीन
३. काय–त्रस
४. योग ४–औ० २, वचन अनुभय, १ कार्मण
५. वेद–नपुंसक
६. कषाय–२३ (२५–स्त्री, पुं०)
७. ज्ञान–२ कुमति, कुश्रुत
८. संयम–१ असंयम
९. दर्शन–१ अचक्षु
१०. लेश्या–३ कृष्णादि
११. भव्य–२ दोनो
१२. सम्यक्त्व–मिथ्यात्व
१३. सैनी–असैनी
१४. आहारक–२ दोनो
१५. गुणस्थान–मिथ्यात्व
१६. जीव समास–तेन्द्रिय सम्बन्धी
१७. पर्याप्ति ५ मन विना

१८. प्राण ७–इंद्रिय ३, काय, वचन, बल, आयु, श्वास
१९. संज्ञा ४–चारो
२०. उपयोग ३–दो ज्ञान, १ दर्शन
२१. ध्यान ८–आर्त्त ४ + रौद्र ४
२२ आस्रव–४१ (मिथ्या ५ + अविरति ९ दो इंद्रिय व मन विना + एक० २३ + योग ४)
२३. योनि–२ लाख
२४. कुल कोडि–८ लाख

चार इन्द्रिय चौबीस स्थान

१. गति–तिर्यंच
२ इन्द्रिय–४ चार
३. काय–त्रस
४ योग ४–औ० २, वचन अनुभय १ कार्मण
५ वेद–नपुंसक
६. कषाय–२३ (स्त्री पुं० विना)
७ ज्ञान–२ कुमति, कुश्रुत
८. सयम–१ असयम
९. दर्शन–२ चक्षु, अचक्षु
१० लश्या–३ कृष्णादि
११ भव्य–२ दोनो
१२ सम्यक्त्व–१ मिथ्यात्व
१३ सैनी–१ असैनी
१४ आहारक–२ दोनो
१५. गुणस्थान–मिथ्यात्व
१६ जीव समास–४ इंद्रिय सम्बन्धी
१७. पर्याप्ति–५ मन विना
१८ प्राण–८ इंद्रिय, ४, काय, वचन, आयु, श्वास
१९. संज्ञा–४ चारो
२०. उपयोग ४–ज्ञान २, दर्शन २
२१ ध्यान ८–आर्त्त ४, रौद्र ४
२२. आस्रव–४२ (मिथ्या० ५ + अविरति १० पचेन्द्रिय मन विना) + क० २३ + योग ४
२३. योनि–२ लाख
२४. कुल कोडि–९ लाख

जदि सुभावेन जिन उक्त १, जिन वयण २, जिन दर्सि ३, जिन सहकार ४, जिन समय ५, जिन परिणे ६, जिन प्रमाण ७, जिन अष्यर ८, जिन सुर ९, सुयं रमण १०, जिन विन्यान ११, जिन पद १२, जिन अर्थ १३, जिन ति अर्थ १४, जिन समर्थ १५, जिन समय सहकार अर्थ १६, जिन मिलन १७, जिन कमल १८, जिन रमण १९, जिन रंज २०, जिन नन्द २१, जिन आनन्द २२, जिन

चेयानन्द २३, जिन सहजानन्द २४, जिन परमानन्द २५, जिन सदर्थ २६, जिन लंकृत जिन २७, औकास जिन २८, इच्छ जिन प्रेक्ष्या २९, जिन गम्य ३०।

जिन अगम्य ३१, जिन चेय ३२, जिन वेय ३३, जिन प्रष्य ३४, जिन सिष्य ३५, जिन धरन ३६, जिन ग्रहण ३७, जिन रहण ३८, जिन ठाण ३९, जिन ढलण ४०, जिन दिष्टि ४१, जिन इष्टि ४२, जिन रस्टि ४३, जिन रिष्टि ४४, जिन सम इष्टि ४५, जिन सहाव इष्टि ४६, जिन उत्पन्न इस्टि ४७, जिन सम इस्टि ४८, जिन सहकार इस्टि ४९, जिन औकास इस्टि ५०, जिन अन्मोद इस्टि ५१, जिन षिपक इस्टि ५२, जिन सर ५३, जिन सब्द सर ५४, जिन असब्द सर ५५, जिन गुपित सर ५६, जिन कमल सर ५७, जिन लष्य ५८, जिन अलष्य ५९।

जिन दर्स इस्टि ६०, जिन उत्पन्न दर्स ६१, जिन गुण जिन मूलगुण संवेय इत्यादि ६२, जिन व्रत अहिसा इत्यादि ६३, जिन जिन तप अनसन इत्यादि ६४, जिन प्रतिमा दर्सन इत्यादि ६५, जिन दान न्यान दान इत्यादि ६६, जिन दरस ६७, जिन न्यान ६८, जिन चरण ६९, जिन उत्पन्न ७०, जिन उत्पन्न हितकार ७१, जिन उत्पन्न सहकार ७२, जिन न्यान विन्यान ७३, जिन पद विंद ७४, जिन सिद्धि गुण ७५, जिन दर्स लष्य गुण ७६, जिन सुयं लब्धि ७७, जिन कारण सोलह ७८, जिन सोलही उत्पन्न हितकार सहकार षिपक जिन इस्ट ७९, सोलही उत्पन्न सुयं लब्धि जिन इस्ट परमेस्टि ८०, जिन उत्पन्न परमिस्टि जिन चतुष्टं इस्ट ८१, जिन चतुष्टे उत्पन्न जिन रमण इस्ट ८२, जिन उत्पन्नं रमण जिन रयणत्तय इस्ट ८३, जिन रयणत्तय उत्पन्न इस्ट जिन नन्त नन्त विसेष जिन दिप्ति जिन दिस्टि जिन अलंकृत जिन चरण दरस इत्यादि ८४,

जिन सम्मत न्यान इत्यादि ८५, जिन सुयं सुभाव सूषम अतिंद्री सुभाव ८६, तत् द्रव्य काय पदार्थ सुभाव ८७, सूष्म विंद विन्यान सुयं षिपति सूक्ष्म क्रिया क्रांति प्रतिपाद ८८, जिन समय सहकार रमण ८९, जिन जिननाथ अन्मोद न्यान ९०, कम्मस्य विलयं गत ९१ ।

अर्थ—यदि यह आत्मा अपने स्वभावमें रहे, जिन कथनको माने ॥ १ ॥ जिनवाणीको माने ॥ २ ॥ जिन भगवान्‌की श्रद्धा करे ॥ ३ ॥ जिनदेवकी सहायता लेवे ॥ ४ ॥ जिन कथित पदार्थको माने या वीतराग आत्मा हो जावे ॥५॥ वीतरागभावमें परिणमन करे ॥६॥ जिनकथित प्रमाणको माने ॥ ७ ॥ अविनाशी वीतरागभावमे रमे ॥ ८ ॥ सूर्य समान जिनदेवकी भक्ति करे ॥ ९ ॥ स्वय अपने स्वरूपमें रमण करे ॥ १० ॥ वीतराग विज्ञानको धारे ॥११॥ वीतराग पदका सेवन करे ॥ १२ ॥ वीतरागी आत्मा पदार्थको जाने ॥१३॥ वीतराग निश्चय रत्नत्रयमें स्थिर हो ॥ १४ ॥ वीतरागमय वीर्यको सम्हाले ॥ १५ ॥ वीतरागी आत्मामयी पदार्थको जाने ॥ १६ ॥ वीतरागतामें मिल जावे ॥ १७ ॥ वीतरागी कमल समान प्रफुल्लित हो जावे ॥ १८ ॥ वीतरागतामें रमण करे ॥१९॥ वीतरागभावमें मगन हो ॥ २० ॥ वीतरागभावमें आनन्द माने ॥२१॥ वीतरागभावमें सुखी हो ॥२२॥ वीतराग चिदानन्द हो जावे ॥ २३ ॥ वीतराग सहजानन्द हो जावे ॥ २४ ॥ वीतरागमय परमानन्दमें लीन हो जावे ॥२५॥ वीतरागमय सत् आत्माको जाने ॥२६॥ वीतरागभावसे भूषित जिन हो जावे ॥ २७ ॥ अनन्त वीतरागतामें मगन हो ॥२८॥ उपादेय वीतरागभावको अनुभव करे ॥२९॥ वीतरागता ही अनुभवने योग्य है ॥३०॥ वीतरागभाव इंद्रियगोचर नहीं है ॥ ३१ ॥ वीतरागभाव चितारने योग्य है ॥३२॥ वीतरागभाव जानने योग्य है ॥३३॥ वीतरागता देखने योग्य है ॥३४॥ वीतरागता सीखने योग्य है ॥ ३५ ॥ वीतरागता धारणे योग्य है ॥ ३६ ॥ वीतरागभाव ग्रहण करने योग्य है ॥ ३७ ॥ वीतरागतामे गुप्त होना योग्य है ॥ ३८ ॥ वीतरागभावको ही अपना स्थान बनावे ॥ ३९ ॥ वीतरागभावमें अपनेको ढाले ॥ ४० ॥ वीतरागभावकी श्रद्धा करे ॥ ४१ ॥ वीतरागतासे इष्ट करे ॥ ४२ ॥ वीतरागताका स्वाद ले ॥ ४३ ॥ वीतरागताको बडा बनावे ॥ ४४ ॥ वीतरागता सहित समभावसे प्रेम करे ॥ ४५ ॥ वीतराग स्वभावसे प्रेम करे ॥ ४६ ॥ वीतरागतासे ही इष्ट मुक्ति पैदा होती है ॥ ४७ ॥ वीतरागमय समभावको उपादेय जाने ॥ ४८ ॥ वीतरागता-

की सहायतासे ही इष्ट कार्यकी सिद्धि है ।। ४९ ।। वीतरागताके भीतर इष्ट तत्त्व गर्भित है ।।५०।। वीतरागमय व आनन्दमय इष्ट भाव है ।।५१।। वीतराग क्षायिक भाव इष्ट भाव है ।। ५२ ।। वीतरागभावको ही स्नानका सरोवर जाने ।।५३।। जिन शब्दके द्वारा उसी सरोवरमें प्रवेश करे ।। ५४ ।। वह सरोवर शब्द रहित वीतराग-मय है ।। ५५ ।। वह वीतराग सरोवर गुप्त है ।।५६।। वह सरोवर वीतरागभाव-रूपी कमलको रखता है ।। ५७ ।। वीतरागता ही लखने योग्य है ।। ५८ ।। वीत-रागता इंद्रिय व मनसे लखने योग्य नहीं है ।। ५९ ।। वीतराग सम्यग्दर्शन इष्ट है ।। ६० ।। वीतरागतासे ही सम्यग्दर्शन दृढ़ होता है ।। ६१ ।। वीतरागमयी गुणसे श्री जिनेन्द्रके मूल गुणको जानना चाहिये, इत्यादि ।। ६२ ।।

वीतरागताके पोषक अहिंसा आदि पाँच व्रत हैं ।। ६३ ।। वीतरागताके पोषक अनशन आदि बारह तप हैं ।। ६४ ।। वीतरागभावको बढ़ानेवाली दर्शक व्रत आदि ग्यारह प्रतिमाएँ श्रावक की है ।। ६५ ।। वीतरागभावको देनेवाले ज्ञान दान आदि चार दान हैं ।। ६६ ।। वीतरागमय सम्यग्दर्शन ।। ६७ ।। वीतरागमय ज्ञान ।। ६८ ।। वीतरागमय चारित्र ।। ६९ ।। इन्हींसे जिनका वीतरागपद पैदा होता है ।। ७० ।। वीतरागभावसे हितकारी पद होता है ।। ७१ ।। वीतरागभावसे मोक्ष सहकारी पद होता है ।। ७२ ।। वीतरागभाव ही सम्यग्ज्ञान है ।। ७३ ।। वीतराग पद ही अनुभवने योग्य है ।। ७४ ।। वीतरागतापूर्ण सिद्धोंके गुण हैं ।। ७५ ।। वीत-रागभावको देखना जानना ही गुणकारी है ।।७६।। वीतरागभाव स्वय आपसे प्राप्त होता है ।। ७७ ।। तीर्थंकर जिनराजपदकी कारण दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाएँ हैं ।। ७८ ।। सोलहकारण भावनाओंके फलसे हितकारी सहकारी क्षायिक-भावधारी तीर्थंकर अरहन्तका पद प्राप्त होता है ।। ७९ ।। षोडशकारण भावनाओंके फलसे स्वयं ही वीतराग अरहन्तपद प्रगट होता है ।। ८० ।। वीतराग अरहन्त परमेष्ठीमें अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख चार चतुष्टय प्रगट होते हैं ।। ८१ ।। इन चतुष्टयके प्रतापसे अरहन्त भगवान् आपमें ही रमण करते हैं ।। ८२ ।। वीतरागभावमें रमणसे ही निश्चय रत्नत्रयका झलकाव होता है ।।८३।। निश्चय रत्नत्रयमें रमणसे ही अनन्त गुणधारी अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शनमय व यथा-ख्यातचारित्रमय पद प्रगट होता है ।। ८४ ।। वहीं वीतराग सम्यग्दर्शन आदि गुण हैं ।। ८५ ।। वे अरहन्त जिनराज स्वय सूक्ष्म अतीन्द्रिय स्वभावमें रमण करते हैं

॥ ८६ ॥ वे ही स्वाभाविक आत्मा द्रव्य है, वे ही स्वाभाविक अस्तिकाय हैं, वे ही स्वाभाविक आत्मा पदार्थ हे ॥ ८७ ॥ वे अतीन्द्रिय सूक्ष्म स्वभावका अनुभव करनेवाले क्षायिक स्वभावधारी अतीन्द्रिय स्वभावमें ही रमणशील हैं ॥ ८८ ॥ वे ही वीतराग समयसारतत्त्वमें रमण करते हैं ॥८९॥ वे ही वीतराग जिनेन्द्र ज्ञानानन्दमय हैं ॥ ९० ॥ उनके कर्म क्षय हो गए हैं ॥ ९१ ॥

उत्पन्न न्यान १, उत्पन्न कम्म विली २, उत्पन्न भुक्त न्यान ३, मुक्त कम्म विलयंति ४, जिन उत्पन्न नन्द आनन्द ५, विनन्द उत्पन्न विलयंति ६, न्यान अन्मोद अवल वला ७, विषय सुयं विलयं गता ८, अन्मोद न्यान मुक्ति गत ६, तस्य सुभावेन जिन उक्त, जिन परिणै, जिन समय दिस्टि इस्टि दर्स सहन सहकार विकलं जाति १०, विकल सुभाव ११, विकल दिस्टि १२, विकल इस्टि १३, विकल स्थान १४, विकल रयणत्तय १५, विकल सयनासन १६, विकल मिलन १७, विकल अन्मोद १८, जिन उक्त स्थान विकलं जंति १६, विकल उत्पन्न २०, विकल हितकार २१, विकल सहकार २२, जिन उक्त विलं जंति २३ ।

कौन सुभाइ, जनरंजन राग, कलरंजन दोष, मनरंजन गारौ, दर्सन मोहंध, न्यान आवरण, दर्स आवरण, मोह आवरण, अन्तर विसेष संक आसा स्नेह आदि मिथ्या आदि तीन सल्य, तीन कुन्यान, कषाय मल, मद्य मान, विषय, व्यसन, मिथ्या रमण, दुखेन सुभाव, अनिष्ट व्रत, अनिष्ट तप, अनिष्ट गुण, अनिष्ट पडिमा, अनिष्ट दान, अनिष्ट पात्र, अनिष्ट रयणत्तय, अनिष्ट गुण सिद्ध, अनिष्ट सुयं लब्धि, अनिष्ट दर्सि, अनिष्ट लष्य, अनिष्ट अलष्य, अनिष्ट उत्त, अनिष्ट औकास, अनिष्ट आनन्द, जिन उक्त विकलं जंति २४ ।

जिन उक्त दान पात्र विसेष विकलं जंति २५, जिन उक्त दान पात्र न्यान अन्मोद, न्यान सहकार, न्यान अन्मोद, न्यान मिलन, न्यान परिणै, न्यान श्रीन्यान, पुरुष न्यान, अन्मोद असहनी

सहकार विकलं जंति, विकलत्रयबेन्दी, तेन्द्री, चौइन्द्री, विकलत्रय जोनि भ्रमणं करोति २६, जिन उक्त विकल विकलत्रय भ्रमण, अनन्त काल भ्रमणं २७।

अर्थ—जब सम्यग्ज्ञान पैदा होता है ।। १ ।। तब कर्मोंका आस्रव रुकता है ।। २ ।। जब ज्ञानका भोग या स्वानुभव उत्पन्न होता है ।।३।। तब कर्मको निर्जरा होती है, नवीन कर्म नहीं बँधता है ।।४।। जब जिनकथित तत्त्वोंके आनन्दमें मगनता होती है ।। ५ ।। तब सर्व दुःख व चिंता चली जाती है ।।६।। जब अनुपम बलवान ज्ञानानन्द प्रगट होता है ।। ७ ।। तब इन्द्रियोंके विषयोकी चाह स्वयं विला जाती है ।। ८ ।। तब मोक्षके ज्ञानमें आनन्द आता है ।। ९ ।। परन्तु जब यह स्वभाव बिगड जाता है, जिन कथनमें, वीतराग परिणतिमें, वीतरागी आत्मामें मूढ़ हो जाता है, सम्यग्दर्शन स्वभाव मिथ्यात्वरूप दोषी हो जाता है ।।१०।। स्वभाव दोष पूर्ण होता है ।।११।। श्रद्धा बिगड़ जाती है ।।१२।। उपादेय तत्त्व दोष पूर्ण हो जाता है ।।१३।। गुणस्थान नीचा दोष पूर्ण मिथ्यात्व हो जाता है ।।१४।। रत्नत्रय स्वभाव दोषी हो जाता है ।। १५ ।। शय्या व आसन क्रिया धर्मपूर्ण न होकर दोषपूर्ण हो जाती है ।। १६ ।। दोषोसे मिलता जाता है ।। १७ ।। सच्चे सुखसे छूट जाता ह ।।१८।।

जिन कथित मार्गसे भ्रष्ट हो जाता है ।। १९ ।। तब सर्व भाव दोष पूर्ण पैदा होते हैं ।। २० ।। दोषोंको हितकारी समझता है ।। २१ ।। दोषोकी सङ्गति करता है ।। २२ ।। जिनकथित तत्त्वको नहीं मानता है ।। २३ ।। कैसा स्वभाव हो जाता है सो कहते हैं कि वह जनरंजन रागमें, शरीररंजन दोषमें, मनरंजन घमण्डमें फँस जाता है, दर्शनमोहका अन्धपना होता है । ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोह, अन्त-राय कर्मोंका विशेष उदय होता है, शकाशील हो जाता है । आशा तृष्णामे फँस जाता है, स्नेह व वैरमें उलझ जाता है । मिथ्या माया निदान शल्योसे पीडित हो जाता है, उसमें कुमति, कुश्रुत, कुअवधि तीनो मिथ्याज्ञान होते हैं, कषायोसे मलीन होता है, मानका नशा चढ़ा होता है, विषयोमें व सात व्यसनोमें फँसा होता है, मिथ्यात्व भावमें रमण करता है, दुःखमय स्वभावसे श्रद्धा रहित आर्त्तध्यान सहित अनिष्ट व्रत करता है, दोष पूर्ण तप तपता है, हिंसादि हानिकारक गुणोको वृद्धि करता है । ग्यारह प्रतिमाओंको दोषपूर्ण मिथ्यात्व सहित पालता है । मानकषायके वशीभूत हो अपात्रोंको अनिष्ट दान देता है, स्वयं मिथ्यात्व सहित अपात्र हो जाता है, रत्नत्रयको दोषी बना देता है, हानिकारक गुणोंकी सिद्धि करता ह, स्वय अनिष्ट

भावोको प्राप्त करता है, श्रद्धान खोटा होता है, ध्येय खोटा होता है, अतीन्द्रिय आत्मा पर इष्ट होता नहीं, अनिष्ट कथन करता है, अनिष्ट ज्ञान रखता है, हानिकारक बातोमें सुख मानता है, श्री जिनेन्द्र कथित आज्ञाको दोष पूर्ण कर देता है ।। २४ ।।

जिनेन्द्र कथित न तो वह दाता रहता है न पात्र रहता है । वह अपनेको अनिष्ट ही प्रदान करता है ।।२५।। जिन कथित दातार पात्र, ज्ञानानन्द भाव, सम्यग्ज्ञानकी सहायता, ज्ञानानन्दके साथ ज्ञानको बढ़ाना, ज्ञानमें परिणमन करना, ज्ञान-रूपी सम्पदाका ज्ञान, आत्माका यथार्थ ज्ञान, सच्चा सुख आदि बातें उसे सुहाती नही, वह दोषपूर्ण हो जाता है, पाप बाँधकर द्वेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौन्द्रिय विकलत्रयमें जन्म पाकर भ्रमण करता है ।। २६ ।। जो जिन कथित मार्गको दोषी बनाता है वह विकलत्रयमें भ्रमण करता है, फिर अनन्तकाल तक एकेन्द्रियादिमें भ्रमण करता है ।। २७ ।।

व्रताव्रतकार, बंभ अबंभ रक्ष्य निरोध, अन्यान न्यान अन्मोद्, दिष्टि विकल १, एय त्रिसेष विकलत्रय जोनि भ्रमणं करोति २, जदि कदि कालांतर विसेष सुभाउ-सुद्ध जिन उत्त ३, जिन वयण ४, जिन दर्स सुभाव ५, जिन समय ६, जिन सहकार ७, जिन ओंकास ८, जिन अन्मोद् सुभाव उत्पन्नं भवति ९, तदि काल विसेष निकलं मनु प्राप्तं भवति १०, जदि कदि कालांतर अनेकवार जदि कलण सुभाव परिणाम भवति ११, कलण सहकार कलण सुभाव १२, न्यान अन्मोद् सहकार परिणाम द्रस न्यान चरण सुभाव १३, स्त्री पुंवेद् उत्पन्नं भवति १४, अन्मोद् न्यान कलण सुभाव निकलै १५, बीर्ज न्यान सहकार कलण सुभाव १६, कितीकवार सुभाव कलण उत्पन्न परिणाम भवतु १७, जदि काल जिन उक्त जिन परिणे १८, जिन प्रमाण १९, जिन समय २०, जिन सहकार २१, जिन ओंकास २२, जिन अन्मोद् २३, जिन षिपक २४, जिन मुक्ति २५, जिन कमल २६, जिन रयण २७, जिन रंज २८, जिन वेद् २९, जिन न्यान ३०, जिन विन्यान ३१, जिन अनन्त ३२, जिन न्यान प्रकार ३३, जिन अन्मोद् न्यान षिपक ३४, जिन मुक्ति ३५, जिन अषय ३६, जिन

सुरय ३७, सुयं रमण ३८, जिन विंजन ३६, जिन पद ४०, जिन अर्थ ४१, जिन तिअर्थ ४२, जिन उत्पन्न उत्पन्न जिन ४३, उत्पन्न हितकार रमण ४४, जिन अर्क ४५, जिन विंद ४६, जिन आगन्त ४७, जिन हितकार ४८, जिन हुंतकार ४६, जिन रमण जिन उत्पन्न ५०, सहकार जिन इस्ट ५१, सहकार जिन सुभाव ५२, सहकार जिन लष्य ५३, सहकार जिन गुप्ति अलष्य ५४, सहकार जिन गुहित गुप्त अन्मोद ५५, सहकार जिन सुयं लब्धि उत्पन्न ५६, आदि जिन सूष्म सुभाव ५७, अनन्त अन्मोद ५८, इन्द्री प्राण चतुदस सुभाव ५६, अनन्त विसेष न्यान अन्मोद रंज ५, रमण ५, नन्द ५, चरण ५, इस्ट परिमिस्टि न्यान ५, सम्मत्त ५, अर्क ५-६० ।

भय विनस्य भय विली ६१, चतुष्टय नन्त अरहन्त सुभाइ ६२, अंगदि अग दरस सम्यक दरस अनन्त दरस श्री सम्यक दर्स न्यान चरण संजुक्त ६३, दान पात्र सुभाव सहकार ६४, कल्प विकल्प मुक्त रमण ६५. न्यान अन्मोद अनन्त विशेष कलण सुभाइ ६६, अनन्त विसेष कले ६७, न्यान अन्मोद कले ६८, कलण सहकार कलण सुभाइ कले ६६, न्यान उत्पन्न ७०, अनादि कम्म उत्पन्न विली ७१, न्यान मुक्त रमण ७२, न्यान अनन्त कलण ७३, मुक्त कम्म विली ७४, न्यान अन्मोद नन्द ७५, विनन्द विली ७६, सुपन विली ७७, न्यान अन्मोद अवल वली विषय गली ७६, कलण जिन उत्त समय सहकार ८०, अनन्त विसेष कलण भवति ८१, न्यान अन्मोद मुक्ति गमनं भवतु ॥ ८२ ॥

अर्थ—जहाँ अपूर्ण श्रद्धा होती है वहाँ कभी व्रत पालनमें, कभी व्रत रहित होनेमे भाव होते हे, कभी ब्रह्मचर्यकी रक्षामें, कभी कुशील रमणमें भाव होते हैं, कभी परिग्रहकी रक्षामें, कभी परिग्रहके विरोधमें भाव होते हैं, कभी मिथ्याज्ञानमें आनन्द मानता हे, कभी सम्यग्ज्ञानमे आनन्द मानता है । यह सब विकल दृष्टि है ॥ १ ॥ विकल स्वभावसे यह प्राणी बहुत काल विकलत्रयकी योनियोमे भ्रमण करता है ॥२॥ जब कभी काल सुधरनेका आवे, विशेष स्वभाव प्रगट हो शुद्ध जिन कथन

॥ ३ ॥ जिनवाणी ४, जिनेन्द्रके श्रद्धान योग्य स्वभाव ॥५॥ वीतराग आत्मा ॥६॥ वीतरागकी शरण ॥ ७ ॥ वीतरागमय ज्ञान ॥८॥ वीतरागतामें आनन्द, इन बातो-के माननेका समय आजावे ॥ ९ ॥ तब बहुत काल पीछे मनुष्य जन्मकी प्राप्ति हो। उन्नति करते-करते मनुष्य जन्म पावे ॥ १० ॥ तब मनुष्य जन्ममें इसके अनेकबार आत्माके जाननेका परिणाम हो ॥ ११ ॥ आत्माके ज्ञानकी मददसे आत्माका अनुभव प्रगट हो ॥ १२ ॥ ज्ञानमें आनन्द पानेका स्वभाव प्रगट हो, तथा सम्यग्दर्शन, सम्य-ग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रमयी रत्नत्रय स्वभाव झलक उठे ॥ १३ ॥ स्त्री या पुरुष वेदमें हो ॥ १४ ॥ ज्ञानानन्दके अभ्यासका स्वभाव प्रगट हो ॥ १५ ॥ आत्मवीर्यके द्वारा ज्ञानकी सहायतासे आत्मानुभव प्रगट हो ॥१६॥ बार-बार स्वभावका अनुभव रहा करे ॥ १७ ॥ समय पाकर जिन कथित वीतरागतामें परिणमन हो ॥ १८ ॥ वीत-रागमय सम्यग्ज्ञान हो जावे ॥ १९ ॥ वीतरागी आत्मा हो ॥ २० ॥ वीतरागताकी मदद हो ॥२१॥ वीतरागतामें प्रवेश हो ॥२२॥ वीतरागभावमें मगनता हो ॥२३॥ क्षायिक वीतरागभाव प्रगट हो ॥२४॥ वीतरागमय मोक्षका स्वभाव झलके ॥२५॥ वीतरागमे कमल समान प्रफुल्लित हो ॥ २६ ॥ वीतरागतामें रमण हो ॥ २७ ॥ वीतरागतामें मगनता हो ॥ २८ ॥ वीतरागतामें आनन्द माने ॥ २९ ॥ वीतरागता सहित ज्ञान हो ॥ ३० ॥ वीतरागता सहित भेदविज्ञान हो ॥ ३१ ॥ अनन्त वीत-रागता हो ॥ ३२ ॥ वीतरागता सहित ज्ञानका प्रचार हो ॥ ३३ ॥ वीतराग व आनन्दमय क्षायिक ज्ञान हो ॥ ३४ ॥ वीतरागतापूर्ण मोक्ष स्वभाव झलकै ॥ ३५ ॥ अविनाशी वीतरागता हो ॥ ३६ ॥ सूर्य समान वीतरागी आत्मा हो ॥ ३७ ॥ स्वय आपमे रमण करै ॥ ३८ ॥ जिनपद प्रगट हो ॥ ३९ ॥ जिनपद हो ॥ ४० ॥ जिन वीतराग आत्मा पदार्थ हो ॥ ४१ ॥ रत्नत्रय स्वभावी वीतराग जिन हो ॥ ४२ ॥ वीतरागतासे ही वीतरागता बढ़ रही हो ॥४३॥ उपादेय तत्वमें रमणता हो ॥४४॥ सूर्य समान जिन भगवान हो ॥ ४५ ॥ वीतरागताका अनुभव हो ॥ ४६ ॥ वीत-रागतामे परिणमन हो ॥४७॥ हितकारी वीतरागता हो ॥ ४८ ॥ कर्म नाशक वीत-रागता हो ॥ ४९ ॥ वीतरागताकी रमणसे वीतरागता उत्पन्न हो ॥ ५० ॥

वीतरागता हो इष्ट भासे ॥ ५१ ॥ वीतराग स्वभाव प्रगट हो ॥ ५२ ॥ वीतरागताका ही लक्ष्य हो ॥ ५३ ॥ वीतराग गुप्त अतीन्द्रिय स्वभावमें तन्मय हो ॥५४॥ वीतरागताकी गुफामें गुप्त होकर आनन्द भोगे ॥ ५५ ॥ वीतरागतासे स्वयं शक्तियाँ प्रगट हो ॥ ५६ ॥ इत्यादि वीतरागमय सूक्ष्म अतीन्द्रिय स्वभाव प्रगट हो

॥ ५७ ॥ अनन्त सुख हो ॥ ५८ ॥ पाँच इंद्रिय, तीन बल, आयु, श्वास, दश प्राण मनुष्यगतिकी अपेक्षासे हों परन्तु अरहन्तपदकी अपेक्षा केवल चार प्राण हो। वचन बल, काय बल, श्वास, आयु। केवलीके इंद्रिय मनका काम नही होता है ॥ ५९ ॥ अनन्त गुण सहित ज्ञान व आनन्दमे मगनता हो। पाँच तरहसे मगनता हो, पाँच तरहसे रमण हो, पाँच तरहसे आनन्द हो, पाँच तरहसे चारित्र हो, पाँच तरहसे उपादेय अरहन्त परमेष्ठोका ज्ञान हो, पाँच तरहका सम्यक्त्व हो, पाँच तरहका सूर्य स्वभाव हो। अर्थात् अरहन्तके अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख, जीवत्व। इन शुद्ध पाँच भावोमें मगनता है, इन्हींमें रमणता है, इन्हीमें आनन्द है, इन्हींका आचरण है, इन्हींका ज्ञान है, इन्हींका श्रद्धान है, ये ही पाँच सूर्य समान प्रकाशित हैं ॥ ६० ॥

भय नाश हो गया हो, विला गया हो ॥ ६१ ॥ अरहतके स्वाभाविक अनन्तज्ञानादि चतुष्टय प्रगट हो ॥ ६२ ॥ सर्वांग सम्यग्दर्शन, अनन्तदर्शन व सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रका प्रकाश हो ॥ ६३ ॥ आप ही दाता हो, आप ही पात्र हो, आपसे आपको आनन्द देता हो ॥ ६४ ॥ सर्व कल्पनाओसे व विकल्पोसे मुक्त होकर आपमें रमण करता हो ॥ ६५ ॥ ज्ञानानन्दमय अनन्त गुणोके अनुभवका स्वभाव झलकता हो ॥ ६६ ॥ ऐसे अरहत अनन्त गुणोका अनुभव करते हैं ॥ ६७ ॥ ज्ञान आनन्दका अनुभव करते है ॥ ६८ ॥ अनुभवकी सहायतासे अपने स्वभावका स्वाद लेते हैं ॥ ६९ ॥ केवलज्ञान प्रगट है ॥ ७० ॥ अनादिसे होनेवाला कर्मोका आस्रव नहीं रहा ॥ ७१ ॥ ज्ञानमयी मुक्त स्वभावमें रमण करते है ॥७२॥ अनन्तज्ञानका स्वाद लेते है ॥ ७३ ॥ कर्म उदयमे आकर क्षय हो रहे है ॥७४॥ ज्ञान व आनन्दमें मगनता है ॥ ७५ ॥ सर्व आकुलता मिट गई है ॥ ७६ ॥ स्वप्न समान जगत व्यवहार दूर हो गया है ॥ ७७ ॥ अनुपम बलवान ज्ञान व सुख प्रगट है ॥ ७८ ॥ सर्व विषयकी चाह जल गई है ॥७९॥ जिनेन्द्र कथित आत्मीक तत्त्वका पूर्ण अनुभव है ॥८०॥ अनन्त गुणोका अनुभव है ॥८१॥ ज्ञानमय व आनन्दमय आत्मा मोक्षमे चला जाता है ॥ ८२ ॥

भावार्थ—यहाँ आत्माके अनुभवका मोक्षमार्ग बताकर उसीसे मोक्षका लाभ बताया है। नौमें गुणस्थान तक वेद होता है, आगे नहीं। यह श्रेणी चढते हुए स्त्री व पुरुष वेदकी मुख्यता कही है, यद्यपि नपुंसक वेदधारी भी चढ़ सकता है। द्रव्यवेद पुरुषका ही होता है। पुरुष शरीरधारी ही मोक्ष लाभ कर सकता है।

पंचेन्द्रिय चौवीस स्थान

१. गति–४ सब ।
२. इन्द्रिय–पचेन्द्रिय ।
३. काय–त्रस ।
४. योग–१५ सर्व ।
५. वेद–३ सर्व ।
६. कषाय–२५ सर्व ।
७. ज्ञान–८ सर्व ।
८. संयम–७ सर्व ।
९. दर्शन–४ सर्व ।
१०. लेश्या–६ सर्व ।
११. भव्य–२ दोनों ।
१२. सम्यक्त्व–६ सर्व ।
१३. सैनी–२ दोनो ।
१४. आहारक–२ दोनो ।
१५. गुणस्थान–१४ सर्व ।
१६. जीव समास–२ सैनी, असैनी, पचेंद्रिय पर्याप्त अपर्याप्त सहित ४ ।
१७. पर्याप्ति–६ सब ।
१८. प्राण–१० सब ।
१९. संज्ञा–४ सब ।
२०. उपयोग–१२ सब ।
२१. ध्यान–१६ सब ।
२२. आस्रव–५७ सब ।
२३. योनि–२६ लाख ।
२४. कुल कोड़ि–१०६॥ लाख ।

जिन उक्त १, जिन वयन २, जिन दिस्टि ३, जिन इस्टि ४, जिन रस्टि ५, जिन रिस्टि ६, जिन समय इस्टि ७, जिन सह इस्टि ८, जिन उत्पन्न इस्टि ९, जिन सहकार दिस्टि १०, जिन ओंकास इस्टि ११, जिन अन्मोद् न्यान दिस्टि १२, जिन षिपक दिस्टि १३, जिन मुक्त इस्टि १४, जिन उत्पन्न इस्टि १५, जिन इष्ट दर्स १६, जिन उत्पन्न दर्स १७, जिन इस्ट लष्य १८, जिन उत्पन्न लष्य १९, जिन उत्पन्न रमन २०, जिन इस्ट रमन २१, जिन जीव आह्वान २२, जिन षिपक जिन २३, धुव रमन जिन २४, जिन इस्ट उत्पन्न सुयं लब्धि २५, जिन उत्पन्न इस्ट लब्धि २६, सुयं जिन हितकार २७, सुयं इस्ट लब्धि जिन उत्पन्न हितकार २८, उत्पन्न इस्ट सुयं सुभाव रमण २९, क्रांति २, स्पर्श २, रूप ४, सब्द ४, मनपर्यय ४,

३०, षिपक सुयं लब्धि ३१, इस्ट षिपक उत्पन्न इस्टि हितकार रमण अर्क इत्यादि ३२ ।

जिन इस्ट उत्पन्न सुयं लब्धि रमण सुभाव जिननाथ ३३, जिन उक्त जिन दर्स जिन वयण ३४, अतीन्द्रिय सुभाव ३५, इंद्रिय विलय ३६, विषय विलय ३७, राग जन रंजन विलय ३८, दोष गारो दर्सन मोहंध विलय ३९, आवरण विलय ४०, मिथ्या विलय ४१, कषाय विलय ४२, अन्याय वय तव क्रिया कस्ट विलय ४३, जिन उत्त केवल सुभाव ४४, उक्त न्यान सहकार न्यान औकास न्यान ४५, अन्मोद अनन्त बली अतीन्द्रिय सुभाव ४६, भय द्रव्य भय उत्पन्न विलय ४७, अभय भय विनस्य ४८, दान पात्र न्यान रमण ४९, न्यान विन्यान रमण ५०, न्यान इष्ट रमन ५१, न्यान उत्पन्न न्यान कलण रमण ५२, इष्ट न्यान गम्य रमण ५३, अगम्य रमण ५४, रंज रमण ५५, आनन्द रमण ५६, अतीन्द्रिय सहकार जिन उक्तं ५७, न दिस्टते किं न विसेष इंद्रिय सुभाव इन्द्री इस्ट सुभाव ५८, इन्द्री उत्पन्न इस्ट विषय ५९, इस्ट विषय उत्पन्न इस्ट मिथ्या राग दोष कषाय आवरण न्यान दर्सन मोहंध संक सल्य भय सहित भयभीत इन्द्री सुभाव दिस्टते ६०, इंद्रिय निरोध विरोध ६१, अन्मोद इन्द्रिय विषय सहकार ६२, इन्द्री सुभाव अन्यान वय तव क्रिया ससंक भय इन्द्री सुभाव अन्मोद इंद्रिय प्रभाव अनन्त सुभाव इन्द्री अन्मोद अतिन्द्री भाव न दिस्टते इन्द्री सुभाव अन्मोद पंचेन्द्रिय सुभाव जीव उत्पन्न भ्रमणं करोति ॥ ६३ ॥

अर्थ—जिनेन्द्र कथित तत्त्व ॥ १ ॥ व जिनवाणीमे हित जब होता है ॥२॥ तब वीतराग सम्यग्दर्शन पैदा होता है ॥ ३ ॥ वीतरागतासे प्रेम हो जाता है ॥४॥ वीतरागताका स्वाद आता है ॥ ५ ॥ वीतरागताकी खड्ग कर्म काटनेको तैयार हो जाती है ॥ ६ ॥ वीतराग आत्मा उपादेय भासता हे ॥ ७ ॥ वीतरागतासे इष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥ वीतराग भावसे हित बढ़ता जाता है ॥ ९ ॥ वीतरागता सहित

सम्यग्दर्शन शोभता है ।। १० ।। वीतरागतामें प्रवेश इष्ट भासता है ।। ११ ।। वीतरागता सहित आनन्द व ज्ञान व सम्यग्दर्शन झलकता है ।। १२ ।। वीतराग क्षायिक सम्यग्दर्शन हो जाता है ।। १३ ।। वीतराग स्वभाव मुक्तिमें उपादेयपना दिखता है ।। १४ ।। वीतरागतासे इष्ट भाव बढता जाता है ।। १४ ।। वीतरागता सहित उपादेय तत्त्वपर दृष्टि रखता है ।। १६ ।। वीतरागतासे आत्मदर्शनमें स्थिति बढ़ती जाती है ।। १७ ।। वीतरागतासे अनुभवने योग्य तत्त्व इष्ट भासता है ।। १८ ।। वीतरागतासे लक्ष्यका प्रकाश होता जाता है ।। १९ ।। वीतरागतासे आत्मरमण बढता जाता है ।।२०।। वीतरागतासे इष्ट तत्त्वमें रमण होता है ।।२१।। तब वीतराग आत्माका प्रकाश हो जाता है ।। २२ ।। वीतराग क्षायिक भावधारी जिन होता है ।। २३ ।। अविनाशी आत्मरमी जिन हो जाता है ।। २४ ।। वीतराग इष्ट तत्त्वके द्वारा स्वय आत्माकी लब्धियाँ प्रगट हो जाती है ।।२५।। वीतरागतासे इष्ट लब्धियाँ प्रगट होती हैं ।। २६ ।। तब आत्मा स्वयं हितकारी अरहन्त हो जाता है ।। २७ ।। स्वयं इष्ट भावको प्राप्त किये हुए हितकारी जिनेन्द्र हो जाता है ।। २८ ।। तब उपादेयके प्रकाशसे स्वय वे जिनराज अपने स्वभावमे रमण किया करते हैं ।।२९।। सोलह प्रकारसे मन, वचन, कायको निरोध कर रहे हैं अर्थात् काय पद्मासन है या कायोत्सर्ग है, स्पर्शसे कठोर है या कोमल है, रूप सुन्दर, असुन्दर, दीर्घ या लघु है, वचन सत्य, असत्य, उभय, अनुभय या मनके सत्यादि चार तरहके विचारसे १६ विकल्प नही हैं ।। ३० ।। स्वय क्षायिक लब्धियोके धारी होते हैं ।। ३१ ।। इष्ट क्षायिक भाव सहित अपने इष्ट तत्त्वमें रमण करनेवाले सूर्य समान तेजस्वी जिन हो जाते है ।।३२।। वे ही उपादेय वीतराग भावके द्वारा उत्पन्न स्वयं आत्माका प्रकाश उसमे रमण करनेवाले स्वभावमयी जिनेन्द्र हैं ।। ३३ ।। जो कोई जिन कथित वीतराग सम्यग्दर्शनमे जिनवाणीके अनुसार रमण करते हैं ।।३४।। वे अतीन्द्रिय स्वभाव हो जाते हैं ।। ३५ ।। इद्रियोके द्वारा विषयोका ग्रहण बन्द हो जाता है ।। ३६ ।। इंद्रियोके विषयोमे राग दूर हो जाता है ।। ३७ ।। लोगोंके रंजायमान करनेका रागभाव नहीं रहता है ।। ३८ ।। अहकारके दोषसे पूर्ण दर्शन मोहका अन्धपना क्षय हो गया है ।। ३९ ।। कर्मोका आवरण दूर हो गया है ।। ४० ।। मिथ्यात्वका क्षय हो गया है ।। ४१ ।। कषायोका क्षय हो गया है ।। ४२ ।। अज्ञानपूर्वक तप, व्रत, क्रियाकांडका कष्ट मिट गया है ।।४३।। जिनेन्द्र कथित केवलीका स्वभाव प्रगट हो गया

है ।।४४।। जिन कथित शुद्ध ज्ञान स्वाभाविक ज्ञान, केवलज्ञान प्रकाशित है ।।४५।। अनुपम वीर्यवान आनन्दमय अतींद्रिय स्वभाव प्रगट है ।। ४६ ।। तत्त्वमें भय, भय कर्मका आस्रव सब क्षय हो गया है ।। ४७ ।। भयोंका नाश होकर निर्भय पद प्रगट हो गया है ।। ४८ ।। आप ही ज्ञान दाता हैं, आप ही ज्ञानके लेनेवाले पात्र हैं। आपसे आपके ज्ञानमें रमण करते हैं ।। ४९ ।। ज्ञानमें रमणशील हैं ।।५०।। उपादेय शुद्ध ज्ञानमें रम रहे हैं ।। ५१ ।। ज्ञानसे प्रगट ज्ञानके अनुभवमें रमण कर रहे हैं ।। ५२ ।। उपादेय व ज्ञानगम्य आत्मामें रमण कर रहे हैं ।।५३।। अतीन्द्रिय आत्मामें रमण कर रहे हैं ।। ५४ ।। वे आनन्दमें रमण कर रहे हैं ।। ५५ ।। परमानन्दमे रमण कर रहे हैं ।। ५६ ।। परन्तु जहाँ अतीन्द्रिय अनुभव जैसा जिनेन्द्रने कहा है ।।५७।। नही दिखलाई पडता है, क्यों नहीं दिखलाई पड़ता है ? इंद्रियोका व्यापार है व वही व्यापार उपादेय भास रहा है ।। ४८ ।। इंद्रियोंके भोगके लिये विषयोको एकत्र करता है ।। ५९ ।। इष्ट विषयोमें रमण करनेसे मिथ्यात्वभाव, राग-द्वेष भाव, कषाय भाव, कर्मका आवरण, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, शङ्का, शल्य, भय सहित इंद्रियोका व्यापार ही देखा जाता है ।। ६० ।। वहाँ इंद्रियोके रोकनेका अभाव है ।। ६१ ।। जिनसे इन्द्रियोके विषय भोगनेमें सहायता मिलती है उनमें आनन्द होता है ।। ६२ ।। इन्द्रियोंके विषयभोगके लिये अज्ञानमय व्रत, तप क्रियामें लीन रहता है, विषयोमें जानेकी शङ्का रखता है, भयवान रहता है, इन्द्रियोके विषयोमें रजायमान होनेके प्रभावसे अनन्त स्वभाव इन्द्रियोंके विषयानन्दके दिखते हैं, परन्तु अतीन्द्रिय स्वभावका रमण नहीं दीखता है, इन्द्रियोके विषयोमें मगन होनेसे वह जीव पञ्चेंद्रिय जाति कर्मको बाँधकर पञ्चेंद्रिय हो होकर भ्रमण करता है ।। ६३ ।।

अतीन्द्रिय सुभाव न्यान अन्मोद् विन्यान न्यान अन्मोद् न दृष्टते। अन्यान अन्मोद् इन्द्री सुभाव–पंचेन्द्री सुभाव संसार सरणि भ्रमणं करोति १, जदि कदि कालांतर सुकीय सुभाव न्यान अन्मोद् २, अतीन्द्रिय सुभाव अतीन्द्रिय सहकार ३, अतीन्द्रिय इस्ट ४, अतीन्द्रिय उत्पन्न न्यान ५, इस्ट न्यान ६, इस्टि न्यान ७, त्रयण आताप न्यान ८, परिणै न्यान ९, समय न्यान १०, द्रस न्यान ११, ओकास न्यान १२, अन्मोद् अतीन्द्रिय सुभाव न्यान अन्मोद् कम्म

षिपति १३, इन्द्री विषय विलय १४, रंज रमण आनन्द अतीन्द्रिय न्यान अन्मोद १५, राग दोष गारव दर्सन मोहंध न्यान आवरण घाति कम्म, मिथ्या कषाय, संक सल्य, संक भय विलयंति १६, न्यान विन्यान अतीन्द्रिय सुभाव न्यान अन्मोद कम्म विपति १७, अनन्त चतुस्टय परमेस्टि रयणत्तय सुयं लब्धि १८, रमण हितकार सहकार अनन्त विसेष न्यान अन्मोद जिन न्यान सुद्ध बुद्ध केवल सुभाव, न्यान आचरण, सम्यक्त्व, वीर्य, अनन्त क्षय, उपशम गुप्ति रमण १९, न्यान गुण व्रत तव दान व्रत रयण तव सिद्धि सुयं लब्धि २०, द्रस लष्य रमण तव परमेस्टि २१, न योग श्री रयण तप श्री सुभाव चतुस्टय रमण २२, जिननाथ सुभाव विमल २३, कलय विकलय विलय २४, अतीन्द्रिय सुभाव न्यान अन्मोद २५, कम्म विलय मुक्तं गता सिद्धं सुवं ध्रुवं सिद्धि भवतु ॥ २६ ॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टी पंचेंद्रिय जीवके भीतर अतीन्द्रिय स्वभावका व ज्ञानानन्दका अनुभव नहीं दिखलाई पड़ता है, वह अज्ञानमें मगन हैं, इन्द्रियोके स्वभावमें, पाँचो इन्द्रियोके विषयमें लीन होकर संसार वनमें भ्रमण करता है ॥१॥ यदि कभी काल आ जावे तो उसे अपने स्वभावका ज्ञान हो व उसीमें आनन्द माने ॥ २ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावमें रमण अतीन्द्रिय स्वभावके प्रकाशका कारण है ॥ ३ ॥ ऐसा समझकर अतीन्द्रिय भाव उपादेय भासे ॥ ४ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावके रमणसे ज्ञान प्रगट हो ॥ ५ ॥ ज्ञान ही उपादेय भासे ॥ ६ ॥ ज्ञानमें ही स्वाद ले ॥७॥ आत्मज्ञानका कथन करे व आत्मज्ञानकी चर्चा करे ॥ ८ ॥ ज्ञानमें परिणमन करे ॥ ९ ॥ ज्ञानमय आत्मा हो जावे ॥ १० ॥ दर्शनज्ञानमें रमण करे ॥ ११ ॥ ज्ञानमें ही प्रवेश करे ॥ १२ ॥ अतीन्द्रिय स्वभाव व ज्ञानानन्दमें मगन होनेसे कर्मोंका क्षय होता है ॥१३॥ इन्द्रियोके विषयकी चाह गल जाती है ॥ १४ ॥ अतीन्द्रिय ज्ञान व आनन्दमें मगन होनेसे व रमण करनेसे ॥ १५ ॥ राग, द्वेष, अभिमान, दर्शन मोह, ज्ञानावरण आदि घातिकर्म, मिथ्यात्व, कषाय, शङ्का शल्य भय आदि सब विभाव क्षय हो जाते है ॥ १६ ॥ ज्ञानमय अतीन्द्रिय स्वभावमें ज्ञान सहित आनन्द लाभ होनेसे कर्मोंका क्षय हो जाता है ॥१७॥ स्वयं अनन्त चतुष्टय सहित व रत्नत्रयमयी अरहन्त

परमेष्ठी पदका लाभ हो जाता है ।।१८।। तब वे हितकारी व साथ रहनेवाले अनन्त गुणोंमें रमण करते हैं । ज्ञानमय, आनन्दमय जिनेन्द्र, शुद्ध, बुद्ध केवल स्वभावी ज्ञानमें आचरण करनेवाले, क्षायिक सम्यग्दृष्टी, अनन्त वीर्यवान, अनन्त काल तक क्षायिक व शांत भावमें गुप्त होकर रमण करते हैं ।। १९ ।। उन्होने आत्मज्ञानसे, मूलगुणोसे, व्रतोके पालनेसे, तप करनेसे व रत्नत्रय स्वभावमें लीन होनेसे स्वय सिद्धिको प्राप्त किया है ।। २० ।। अपने लक्ष्यका दर्शन कर लिया है । वे रत्नत्रयके स्वामी परमेष्ठी हैं ।।२१।। और चौदहवें गुणस्थानमें योगोका होना बन्द हो गया । केवल रत्नत्रय स्वभावमें या अनन्तज्ञानादि चतुष्टयमें रमणशील एकाग्र है ।। २२ ।। वे जिनेन्द्र स्वभावसे निर्मल है ।। २३ ।। सकल्प विकल्प आदिका क्षय है ।। २४ ।। वे अतीन्द्रिय स्वभावधारी ज्ञानमें मगन है ।।२५।। वे ही अघातीय चार कर्मोंके क्षय-से मोक्षपद पाते है । स्वय सिद्ध ध्रुव अविनाशी सिद्ध हो जाते हैं ।। २६ ।।

खरभाग पृथ्वी निरूपण—पहली रत्नप्रभा पृथ्वीके तीन भाग हैं–खरभाग, पक भाग, अब्बहुल भाग । पहली दोमें भवनवासी देव व व्यतरोका स्थान है । अब्ब-हुलमें पहला नर्क है । उसको लक्ष्यमें लेकर तारणस्वामी कहते हैं—

जिन उक्तं जिन वयणं जिन द्रस, द्सयंति जिन समय ।
जिन सुभाव जिन गमनं, जिन अन्मोय न्यान विन्यानं ।। १ ।।

जिन रहनं जिन गहनं, जिन उवनं जिन हिययार सुद्ध सुइ मिलनं ।
जिन सहयार सु रमनं, जिन विन्यान न्यान सुइ सुवनं ।। २ ।।

जिन अषयं जिन सुरयं, जिन वइ जिन समय जिनय जिन जिनयं ।
जिन सहकार सु ममलं, जिन अवयास नन्त जिन वयनं ।। ३ ।।

जिन कमलं जिन ममलं, जिन उत्तं जिन अर्थ ती अर्थं ।
जिन समय अर्थ सद्र्थं, जिन सहकार नंत सु ममलं ।। ४ ।।

जिन परिणै जिन प्रमाणं, जिन उवएस नन्त नन्ताए ।
जिन अन्मोद सु समयं, जिन षिपनं जिनयति, जिनन्द विंदानं ।। ५ ।।

जिन परमेस्टि सु चरणं, जिन सम्मएव अवगाहणं ।
जिन लंकृत जिन विन्यानं, जिन जिनयति अनंत कम्म बंधानं ।। ६ ।।

जिन तत्व दव्वपय अर्थं, जिन दिट्ठं दव्व दिस्टि इष्टं च ।
जिन काया क्रांति जिन उवनं, जिन कम्मोद् न्यान विन्यानं ॥ ७ ॥
जिन उत्त नन्तानन्तं, नन्त सुभावेन कम्म विलयंती ।
जिन नन्तानन्त सु दिट्ठं, जिन उत्तं नन्तानन्त सिद्धि सिद्धानं ॥ ८ ॥

आठ गाथाओ का अर्थ—जो कोई जिनेन्द्र कथितको, जिनवाणीको देखते हैं, जिन वचन पर श्रद्धान लाते हैं, वे वीतराग आत्माका अनुभव करते है । वे वीतराग स्वभावी होकर वीतराग भावमें परिणमन करते हैं, वे वीतरागमय आनन्द व ज्ञानका स्वाद लते हैं ॥ १ ॥

जो वीतराग भावमें गुप्त होते हैं, वीतरागताको ग्रहण करते हैं, वीतराग भावको बढ़ाते है, वीतराग भावसे शुद्ध स्वभावी आत्मासे मिलते है, वीतराग भावमें रमण करते है, वे ही वीतराग विज्ञानमें लीन होते हैं ॥ २ ॥

श्री जिनेन्द्र भगवान् अविनाशी हैं, जिनेन्द्र सूर्य समान तेजस्वी हैं, वे वीतराग पदमें है, वे ही वीतराग आत्मा हैं, वे ही कर्मविजयी जिन है, वीतराग भावके कारण निर्मल हैं । श्री जिनेन्द्रमें अनन्त ज्ञान हे, उनके ही वीतरागतापूर्ण वाणीका प्रकाश होता है ॥ ३ ॥

श्री जिनेन्द्र कमलके समान प्रफुल्लित हैं, श्री जिनेन्द्र शुद्ध है, उनका कथन वीतराग है, वे ही वीतरागी आत्मा पदार्थ है, वे ही रत्नत्रय स्वरूप है, वे ही वीतराग समयसार है, वे ही सत्य पदार्थ हैं, वीतरागताके साथ ये अनन्त काल तक निर्मल बने रहते है ॥ ४ ॥

वे वीतरागभावमें परिणमन करते हैं, वे ही जिनेन्द्र प्रमाण है, मानने योग्य है, जिनेन्द्रने अनन्तानन्त गुण पर्याय सहित द्रव्योका उपदेश किया है, वे वीतराग आत्मामें मगन है, वे क्षायिकभाव धारी हैं, वे जिनेन्द्र ज्ञानानुभवी सच्चे कर्मविजयी हैं ॥ ५ ॥

वे परमेष्ठी जिनेन्द्र आपमें आचरण कर रहे हैं, वे जिनेन्द्र वीतराग सम्यग्दर्शनमें लीन हैं, वे वीतरागतासे शोभित हैं, वे वीतरागमय ज्ञानी हैं, श्री जिनेन्द्रने अनन्त कर्म बन्धको जीत लिया है ॥ ६ ॥

श्री जिनेन्द्र ही सच्चे तत्त्व हैं, सत्य आत्मा द्रव्य है, सत्य आत्मा पदार्थ है, जिनेन्द्रने इष्ट व द्रव्यार्थिक दृष्टिसे सर्व द्रव्योको यथार्थ देख लिया है । श्री जिनेन्द्र-

का शरीर परमौदारिक शोभायमान है, वे प्रगट जिनेन्द्र हैं, जिनेन्द्रके ज्ञान व आनन्द पूर्ण है ॥ ७ ॥

जिनेन्द्रने अनन्त पदार्थोंको बताया है, उनका अनन्त स्वभाव प्रगट है, उनके कर्म क्षय हो गये हैं, जिनेन्द्रने अनन्तानन्त द्रव्यगुण पर्यायोको देखा हे । जिनेन्द्रने कहा है कि अनन्तानन्त जीव सिद्धिको पाकर सिद्ध हो चुके है ॥ ८ ॥

तस्य जिनय जिन वयणं, षल सुभावेन किं सहकारेण किं करि जानंति १, षल सुभाव २, षल प्रियो ३, षल वास स्थितं ४, षल सुभाव जिन वयणं किं कारणं, किं विशेषनं रमणं ५, षल पृथ्वी सुभाव उत्पन्न किंनर किं पुरिसा सुभाव, जिन उक्तं जिन रमणं किं किरिया जानंति ६, षल सुभाव जिन रंजन राग ७, जिन सुभाव जिन वयणं न रमंति ८, तं सुभावेन किंनर किंपुरिस उत्पन्नं भवति ९, जदि कदि कालंतर अनन्त काल भ्रमण भरत सुद्ध बुद्ध सुभावेन जैनोक्त जिन न्यान अन्मोद न्यान रमण न्यान विन्यान रमण ॥१०॥

सुयं लब्धि सोल ही सुभाव ११, जन रंजन राग विलयं गता संक सत्रह विलयं गता १२, निसंक रूव भय सल्य संक विलयं १३, निसंक सुभाव १४, जिन अन्मोद १५, जिन रमण प्रतिपाद्य १६, सूक्ष्म क्रिया सूक्ष्म प्रतिवाद १७, जदि काल सुभाव गहणं तदि काल उत्पन्न मनुष्य फल १८, जिन उक्त कलण १९, जिन उक्त ग्रहण अन्मोद न्यान उत्पन्न २०, वज्रनाराच रमण सुभाव २१, न्यान सुभाव २२, न्यान विन्यान मुक्त सुभाव मुक्ति गनं २३ ।

अर्थ—खरभागमें किंनर किंपुरुष व्यंतर रहते है उनमें जो उत्पन्न होते हैं उनको लक्ष्य में लेकर कहते है कि जो कोई दुष्ट स्वभावसे जिन भगवान्‌को व जिनेन्द्रके वचनको क्या है, क्या नही है ऐसा शकाशील हो, विना समझे जानते हैं ॥ १ ॥ दुष्ट स्वभाव रखनेसे ॥ २ ॥ उनको दुष्टताकी बात ही अच्छी लगती है, विषयभोगकी बात सुहाती है ॥३॥ दुष्टोके व नीचोके स्थानोमें जा रहते हैं, कुसङ्गति रखते हैं ॥४॥ दुष्ट स्वभाव या मूर्ख स्वभावसे वे जिनवाणीमें रमण नहीं करते हैं

॥ ५ ॥ उनका स्वभाव ऐसा बन जाता है जिससे वे खरभाग पृथ्वीमें उत्पन्न होते हैं। किन्नर व किंपुरुष व व्यंतर होते हैं, वे जिन कथनमें रमण नहीं करते हैं, केवल क्रियाकाण्डमें मिथ्यात्व भावसे लगे रहते है ॥६॥ खल सुभावसे जनोको राजी रखनेके रागमें लगे रहते हैं, खोटा तप कहते है, पुजवाते है ॥ ७ ॥ वीतराग भगवान्के स्वभावमें व जिनवाणीमें रमण नहीं करते हैं ॥ ८ ॥ ऐसे स्वभावसे खोटा तप करके किन्नर किंपुरुष पैदा होते हैं ॥ ९ ॥ इस तरह अनन्त काल मिथ्यात्व भावके कारण अनेक पर्यायोमें भ्रमण करते रहते हैं। कालांतरमें समय आ जाता है, तब वे मनुष्य होकर शुद्ध बुद्ध स्वभाव आत्माको पहचानते हैं। श्री जिनेन्द्र कथित तत्त्वोंमें, वीतराग विज्ञानमे रमण करते हैं, ज्ञानानन्दमें मगन होते हैं ॥१०॥ स्वयं सोलहकारण भावनाको भाकर तीर्थंकर कर्म बाँधते है ॥११॥ तब जनरंजन राग दूर हो जाता है, सत्रह प्रकारकी शकाएँ मिट जाती हैं अर्थात् सात तत्त्वोमें शका नहीं रहती है, सात प्रकारका भय नही रहता है व तीन शल्य नही रहती हैं ॥ १२ ॥ निःशक स्वभाव हो जाते हैं, सर्व भय व शका व शल्य मिट जाती है ॥ १३ ॥ निःशंक स्वभावमे ॥ १४ ॥ वीतराग भावमें आनन्द मानते हैं ॥ १५ ॥ वीतराग भावमे रमण करते हुए केवली हो जाते हैं ॥१६॥ फिर तेरहवें गुणस्थानके अन्तमें सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति तीसरे शुक्लध्यानको पाते हैं ॥ १७ ॥ फिर चौदहवें गुणस्थानमें जाकर योग रहित स्वभावमें लीन रहते हैं तब मनुष्य भव पानेका सच्चा फल पाते हैं ॥ १८ ॥ जैसा जिनेन्द्रने कहा है उसी शुद्ध आत्मतत्त्वमें मगन रहते हैं ॥ १९ ॥ जिन कथित तत्त्वमें आनन्द पाते है, केवलज्ञानसे प्रकाशित रहते है ॥ २० ॥ जैसा उनका शरीर वज्रवृषभनाराचसहननका होता है, वैसा आत्मा भी वज्र समान थिर आस्रव रहित हो जाता है ॥२१॥ वे ज्ञान स्वभावी होते हैं ॥२२॥ ज्ञान स्वभावको लिये हुए ज्ञानाकार सर्व कर्मोसे व शरीरोसे छूटकर मोक्षको प्राप्त हो जाते हैं ॥ २३ ॥

पंक पृथ्वी निरूपणं

गाथा—जिन उत्तं सु विमलं, जिन सहकारेण न्यान अन्मोयं।
भय सल्य संक विलयं, अन्मोद सहावेन सिद्धि संपन्नं ॥ १ ॥

अर्थ—जिनेन्द्रका कथन दोष रहित शुद्ध है। वीतराग भावकी सहायतासे

ज्ञानमें आनन्द आता है। सर्व भय, शल्य, शकाएं नाश हो जाती हैं। जिसका स्वभाव अभय आत्मानुभवरूप हो जाता है वही सिद्धिको पाता है।

जिन उक्त १, जिनपद २, जिन अष्यर ३, जिन सुर ४, जिन रमण ५, जिन विन्यान ६, जिनपद जिन सब्दं ७, जिन दिस्टि ८, जिन उक्त जिन ममय ६, जिन परिण १०, जिन प्रमाण ११, जिन उक्त जिन सहकार १२, जिन औकास १३, जिन अनन्त चतुस्टय १४, जिन अन्मोद १५, जिन षिपक १६, जिन मुक्ति १७, जिन उक्ति जिन वयण १८, जिन दरस १६, जिन लष्य २०, जिन अलष्य २१, जिन गम्य २२, जिन अगम्य २३, जिन जिनयति जिनपद न दिस्टते २४, अपद पद अनिस्ट अपद करण अपद अनिप्ट पद, अनिस्ट व्रत तव क्रिया अनिस्ट व्रत राग बन्ध २५, न्यान रमण न दिस्टते न सार्धं करोति २६, मिश्र राग बन्ध, राग सुभाव पंक प्रियो पंक पृथ्वी, महोरग गन्धर्व जष्य जष्यी पंक सुभाव २७, जष्य व्रति उत्पन्न अजय ग्रहण जय विलयं २८, जष्य सब्द, जष्यपति, जष्य त्रिजाति उत्पति, अनंत संसार भ्रमण भवनवासिनो उत्पत्ति अस्तीति भवति २६, जदि कदि अनन्त काल भ्रमण जदि न्यान उत्पन्न, न्यान सहकार, उत्पन्न न्यान रमण ३०, न्यान अन्मोद जीव मनुष्य काल लब्धि प्राप्ति भवति ३१, मनुष्य पंकज माल विधि ३२, मनस्य उववन्नं सहाइ विलयन्ति ३३, विलय कम्म बन्धं ३४, न्यान अन्मोय सिद्धि संपत्तं ३५।

अर्थ—जिसको जिनेन्द्र कथित सुहाता नही ॥१॥ जिन पद भाता नही ॥२॥ अविनाशी वीतराग भावका बोध नही ॥३॥ जिन सूर्य दिखता नही ॥ ४ ॥ वीतराग भावमें रमण होता नही ॥५॥ वीतराग ज्ञानका बोध नहीं ॥६॥ जिन पद व जिन शब्दका भाव भासा नहीं ॥७॥ वीतराग सम्यक्त्व हुआ नही ॥ ८ ॥ जिनेन्द्र कथित वीतरागी आत्माका बोध नही ॥९॥ वीतराग भावमें परिणमन नही ॥ १० ॥ जिन स्वरूप सच्चा भासता नही ॥११॥ जिन कथनसे वीतरागको सहाय लेता नही ॥१२॥

वीतराग भावमें प्रवेश होता नही ।। १३ ।। अनन्तज्ञानादि चतुष्टयधारी जिनको जो पहचानता नही ।।१४।। वीतरागतामें आनन्द आता नहीं ।।१५।। क्षायिक वीतराग भाव भासता नही ।।१६।। जिनेन्द्र कथित मुक्तिकी पहचान नहीं ।।१७।। जिन कथित जिन-वाणीका मनन नही ।।१८।। जिनराजके धर्मपर दृष्टि नही ।। १९ ।। अनुभवने योग्य वीतराग भावको जानता नही ।।२०।। अतीन्द्रिय गोचर वीतराग भावको पहचानता नही ।।२१।। श्री जिनराज ध्यान योग्य हैं ऐसा श्रद्धान नही ।।२२।। जिनराज अती-न्द्रिय है ऐसा लक्ष्य नहीं ।।२३।। जिसको जिनपद वीतराग पदपर श्रद्धान नहीं ।।२४।। परपद, अनिष्ट पद, जो दुःखका कारण है वह अच्छा लगता है । हानिकारक मिथ्या-त्व सहित व्रत करता है, तप तपता है, क्रियाकाण्ड करता है । हानिकारक, मोक्षमार्ग विरोधी व्रतोमें रागका बन्धन है ।। २५ ।। उसके भीतर आत्मज्ञानमें रमणता नहीं दिखलाई पडती ह, न वह ज्ञानीकी सगति करता है ।।२६।। मिश्र राग रहता है, धर्म अधर्मका मिश्रित राग होता है, राग स्वभावकी कीच प्रिय भासती है । इससे पक पृथ्वीमे जाकर महोरग, गन्धर्व, जक्ष जक्षी जन्मता है ।। २७ ।। यक्षदेवका स्व-भाव प्रगट होता है, ससार भाव ग्रहण करता है, जयपना या सम्यक्त्व विला रहा है ।। २८ ।। यक्षोका पति होता है, यक्षोकी तीन प्रकार जातियोमें उत्पन्न होता है । मिथ्यात्वके कारण अनन्त ससारमे हो भ्रमण करता है । बार-बार भवनवासी देव हो जाता है ।। २९ ।।

अनन्त काल भ्रमण करते-करते जब कभी सम्यग्ज्ञान पैदा होता है, तब ज्ञानकी मददसे ज्ञानमें रमण करता है ।।३०।। ज्ञानमे आनन्द मानता है । ऐसे मनुष्य जीव की काललब्धि आ जाती है ।। ३१ ।। तब मनुष्य आत्माके गुणरूपी कमलोकी माला पहनता है, ऐसा आत्मरमी हो जाता है ।। ३२ ।। कि मनकी सहायता नहीं रहती है ।।३३।। सर्व कर्म बन्ध क्षय हो जाता है ।।३४।। ज्ञानानन्दके साथ सिद्धिको पा लेता है, मुक्त हो जाता ह ।। ३५ ।।

भावार्थ—यहाँ सामान्य कथन है—यद्यपि पंक पृथ्वीमें असुरकुमार भवनवासी व राक्षस जातिके व्यतर रहते है शेष भवनवासी व व्यतर खर भागमें रहते है । यहाँ यक्षादिको पक पृथ्वीमें कहा है, यहाँ दृष्टि मात्र रत्नप्रभा पृथ्वीमें खर व पंक भागमें थी । इसमे कोई विवादकी बात नहीं, प्रयोजन मिथ्यात्वके फलका बताया है । मिथ्यात्वी जीव हो भवनवासी व व्यतर जन्मता है ।

गाथा—अनिष्ट इष्ट नहु पिच्छे, इष्ट अन्मोय उवन सोइ रमणं।
इस्टं इस्टंति न्यानं, उत्पन्न अन्मोय सिद्धि संपत्तं ॥२॥

उवनं उवन सहावं, उवन हियियार न्यान विन्यानं।
अर्क विंद हिय हुवयं, आगन्तु रमण हियियार सिद्धिं च ॥३॥

उवन हियियार संजुत्तं, उवनं सहकार रमण विन्यानं।
भय सल्य संक विलयं, परजय भय विलय न्यान उववन्नं ॥४॥

परजय सुभाव विलयं, न्यान अन्मोय नन्द जिन नन्दं।
न्यानं न्यान सु उवनं, उववन अन्मोय सिद्धि संपत्तं ॥५॥

॥ इति चौवीस ठाणो ग्रन्थ जिन तारणतरण विरचित सम उत्पन्निता ॥

अर्थ—जहाँ शुभ व अशुभ भावोंपर प्रेम नहीं होता है, उपादेय शुद्ध आत्मीक तत्त्वमें आनन्द पैदा हो जाता है, उसी शुद्धोपयोगमें रमण होता है। ज्ञान ज्ञानको ही चाहता है। इसीसे केवलज्ञानके साथ अनन्त सुख झलकता है और आत्मा सिद्ध गतिको प्राप्त कर लेता है ॥ २ ॥

जब आत्मामें सम्यग्दर्शनका स्वाभाविक गुण प्रगट हो जाता है और इस सम्यक्त्वके साथ ज्ञान सम्यग्ज्ञान हो जाता है और वह ज्ञानी ज्ञान सूर्यसम आत्मा पर अनुभव करता है, ध्यानकी आग जलाता है और मोक्ष भावमें रमण करता है तब कर्मोंका नाश करके हितकारी सिद्धगतिको पा लेता है ॥ ३ ॥

सम्यग्दर्शन हितकारी है, उसीके साथ ज्ञानमें रमण होता है, तब सब भय, शल्य व शङ्काएं दूर हो जाती हैं। शरीरके छूटनेका व जन्म मरणका भय नहीं रहता है तब केवलज्ञान जाग जाता है ॥ ४ ॥

शरीरमें रमणका भाव दूर हो जाता है। ज्ञान आत्मीक आनन्दमें मगन हो जाता है तब आत्मानुभव रूपी ज्ञानसे केवलज्ञान पैदा हो जाता है और अनन्त सुख झलक जाता है तब आत्मा सिद्धगतिको पा लेता है ॥ ५ ॥

इस तरह श्री तारणतरणस्वामी रचित चौवीस ठाणाकी भाषा पूर्ण हुई।

ग्रन्थ सारांश

इस ग्रन्थमें श्री तारणस्वामीने चौबीस स्थान संसारी जीवोंके दिखलाये हैं। ये सब स्थान भेदरूपसे संसारी जीवोंके पाये जाते हैं। जब ससारी जीवोंको कर्मबन्धकी दृष्टिसे देखा जावे तो उनमें चार गतियाँ, पाँच इन्द्रियाँ, छः काय, तीन योग, तीन वेद, पच्चीस कषाय, आठ ज्ञान, सात संयम, चार दर्शन, छः लेश्या, दो भय, छः सम्यक्त्व, दो सैनी, दो आहारक, चौदह गुणस्थान, जीव समास १९, छः पर्याप्त, दस प्राण, चार सज्ञा, बारह उपयोग, सोलह ध्यान, सत्तावन आस्रव, चौरासी लाख योनि, कुल कोडि १९७॥ लाख, ऐसे चौबीस स्थान पाये जाते है। परन्तु उन संसारी जीवोंको शुद्ध निश्चयनयसे देख जावे तो वे इन २४ अवस्थाओंसे रहित, परम शुद्ध अतीन्द्रिय, शुद्ध ज्ञानदर्शन स्वरूप, परमानन्दमय, निराकुल ध्यानकी कल्पनासे रहित, जन्म, मरणके दोषसे शून्य नित्य अविनाशी दीखते है। यहाँ लिखित चौबीस ठाणकी प्रतिमें कुल कोडि १९९॥ लाख है जब कि श्री गोम्मटसारमें १९७॥ लाख हैं। मनुष्यके कुल कोड़ि १२ लाख गिने हैं, १४ लाख लेनेसे १९९॥ लाख होते हैं।

गोमट्टसार गाथा—एया य कोडिकोडी सत्ताणउदीय सदसहस्साइं।
पण्णं कोडिसहस्सा सव्वंगीणं कुलाणं य ॥११७

भावार्थ—सर्व जीवोंके समस्त कुलोंकी सख्या एक कोड़ाकोडी सत्ताणवे लाख तथा पचास हजार कोडि है। १९७५०००००००००००

शायद किसी और ग्रन्थके आधारसे श्री तारणस्वामीने १९९॥ लाख कोडि कुल लिखे हैं।

नर्ककी दशा बताकर व पाँच स्थावरोंकी व खासकर निगोदकी दशा बताकर स्वामीने बताया है। मिथ्यात्वके अन्धकारसे ग्रसित प्राणी अपने आत्माके महत्त्वको न पहचानकर इन्द्रिय विषय व कषायोंकी तीव्रतासे दुर्गतिमें चला जाता है तथा अनन्त काल भ्रमण करता है। कभी क्षुद्र भव भी धार लेता है। एक श्वासमे अठारह दफे जन्म, मरण करता है, ऐसी दुर्गतिमें पड़े हुए जीव भी भावोंकी पलटनसे उन्नति करते-करते मानव गतिमें आ जाते हैं और यहाँ सम्यग्दर्शनको पाकर आत्मज्ञानी हो जाते हैं। फिर उन्नति करते-करते इसी भवसे या अन्य भवोंसे चार घातीय कर्म नाश कर अरहन्त हो जाते हैं फिर शीघ्र हो सर्व कर्मसे मुक्त होकर सिद्ध हो

जाते हैं। सम्यक्त्वकी उत्पत्तिसे ही ज्ञानानन्दमें रमण हो जाता है, विषय रमण घटता जाता है। जैसा-जैसा आत्म रमण बढ़ता है, विषय रमण घटता जाता है वैसा-वैसा मोक्षमार्ग तय होता जाता है। मोक्षका उपाय एक परमानन्द भोगते हुए आत्माका ध्यान है या स्वानुभव है। श्री पूज्यपादस्वामी इष्टोपदेशमें कहते हैं—

यथा यथा समायाति, संवित्तौ तत्वमुत्तमम्। तथा तथा न रोचते, विषया सुलभा अपि ॥ ३७॥
यथा यथा न रोचंते, विषयाः सुलभा अपि। तथा तथा समायाति, संवित्तौ तत्वमुत्तमम् ॥ ३८॥
आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य, व्यवहारर्बाहःस्थित। जायते परमानन्द, कश्चिद्योगेन योगिन ॥ ४७॥
आनन्दो निर्दहत्युद्ध, कर्मन्धनमनारतम्। न चासौ खिद्यते योगीबहिर्दु खेष्वचेतन ॥ ४८॥

भावार्थ—जैसे-जैसे उत्तम आत्मतत्व अपने अनुभवमें आता जायगा वैसे-वैसे सुगमतासे प्राप्त विषय भी नहीं सुहाएँगे। जैसे-जैसे सुलभ भी विषय नही सुहाएँगे वैसे-वैसे अपने अनुभवमें उत्तम तत्त्व विशेष आता जायगा। जो व्यवहारसे बाहर होकर आत्माके ध्यानमे लीन हो जाते हैं उनको इस योगाभ्याससे अद्भुत आनन्द होता है। यही परमानन्द निरन्तर विशेष कर्मरूपी ईंधनको जलाता है। स्वानुभवके समय बाहरी कष्टोको लक्ष्यमें नहीं लेता हुआ कुछ भी खेदित नही होता है।

श्री तारणस्वामीने इस करणानुयोग ग्रन्थमें भी अध्यात्मभावकी वर्षा-वर्षा दी है। शब्दोसे पुनः-पुनः अपने आत्मीक तत्त्वका मनन होता है।

मिथ्यात्वसे ही यह जीव भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देव जन्मता है। यह बात भी स्वामीने बता दी है। जितनी दुर्गतियोके स्थान यहाँ बताए हैं, नर्क गति व एकेन्द्रियादि पंचेन्द्रिय पर्यंत तिर्यंच गति व कुदेव गति इन सबको वही जीव पाता है जो अपने आत्माके ज्ञानसे बाहर है। इसलिये यही बात झलकाई है कि मानवको परम हितकारी आत्मज्ञानका लाभ करना चाहिये जिससे यह जीव सिद्धगति पाकर सदाके लिये सुखी हो जावे।

अध्यात्म चर्चा हर दशामे सुखदाई है। आत्माके गुणोके विचारसे यह भाव राग द्वेषकी कालिमासे मुक्त होता है तब निराकुलता आती है, समता प्राप्त होती है, समतामें सदा आनन्दका लाभ होता है। जीवनको सुखदाई बनानेवाली अध्यात्म चर्चा है, हर समय इसीपर लक्ष्य रखना चाहिये।

मुलतान शहर
भादो वदी २ वीं०सं० २४६४
ता० २७-८ १९३८

ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद

टीकाकारकी प्रशस्ति

अवध लक्ष्मणपुर बसै, अग्रवाल कुल सार ।
विद्वन् मगलसेनजी, ज्ञानी जिन वृष धार ॥ १ ॥
तिन सुत मक्खनलालजी, पुत्र चार तिन जान ।
प्रथम बड़े संतलालजी, तृतीय सु सीतल मान ॥ २ ॥
बत्तिस वय अनुमानमें, घर त्यागा हितकाज ।
इत उत भ्रमत स्वधर्म हित, लिखत पढ़त दिन जात ॥ ३ ॥
साठ वर्ष अनुमान वय, वर्षाकाल मंझार ।
पुर मुलताने बिराजिया, होवे धर्म विचार ॥ ४ ॥
सुखानन्द जैनी रचित, उपवन शांत महान् ।
धर्मध्यान सहकार है, रहो चित्त उमगान ॥ ५ ॥
जैनी दिग् अम्बर बसे, घर पचास सुख लीन ।
मन्दिर बडा, शिखर सहित, विद्याशाला कीन ॥ ६ ॥
पण्डित अजितकुमारजी, चौथमल्ल वृष लीन ।
रामजीदास सभापती, परमानन्द प्रवीण ॥ ७ ॥
दासूराम सुखानन्द, भोलाराम जिनदास ।
गुमानचन्द्र शिवनाथजी, आशानन्द प्रकाश ॥ ८ ॥
रंगूराम सु बिहारी, लाल सुधर्मी जान ।
संगति वृष धारीनकी, करत बुद्धि अमलान ॥ ९ ॥
श्री तारणस्वामी रचित, चौवीस ठाणा जान ।
भाषा टीका लिख दई, होवे जग कल्याण ॥१०॥
भादों सुदी द्वितीया दिना, वार शनीश्चर जान ।
वीर मुकत चौविस शतक, चौसठ संवत् मान ॥११॥
सत्ताईस अगस्ट है, सन् उन्निस अड़तीस ।
ग्रन्थ पूर्ण सुखसे किया, नमहु वीर गुण ईश ॥१२॥
अध्यातमके मननको, यह दर्पण अविकार ।
जो देखें रुचि लायके, पावें सुख शुचिकार ॥१३॥
मगल श्री अरहन्त है, मगल सिद्ध महान् ।
मगल श्री मुनिराज हैं, करहु कर्मकी हान ॥१४॥